एमएपीएस-614

(MAPS-614)

भारतीय प्रशासन

(Indian Administration)

राजनीति विज्ञान विभाग

(समाज विज्ञान विद्याशाखा)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

एमएपीएस-614

(MAPS-614)

भारतीय प्रशासन

(Indian Administration)

समाज विज्ञान विद्या शाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक –समाज विज्ञान विद्या शाखा,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**प्रो. मदन मोहन जोशी** **निदेशक (कार्यवाहक) – समाज विज्ञान विद्या शाखा,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल
प्रो.एम.एम सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग हेमवती नंदन बहुगुणा केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर, गढ़वाल	**प्रो.दुर्गाकान्त चौधरी** राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश
प्रो. सतीश कुमार राजनीति विज्ञान विभाग, इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	**डॉ. घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, लोक प्रशासन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ. लता जोशी असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**डॉ. आरूशी** असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

नियति रावत , असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), राजनीति विज्ञान , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. सूर्य भान सिंह, असोसिएट प्रोफेसर, राजनीवत विज्ञान विभाग, इलाहबाद विश्वविद्यालय	1,2,3,4,8
डॉ. मनीषा माथुर, लोक प्रशासन विभाग, कनोरिया पी.जी. महिला महाविद्यलय	5
सुमित सिंह, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), लोक प्रशासन विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	6
डॉ. नंदिता कौशल, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	7
डॉ.सुशील सिंह चौहान	9
डॉ0 डा0 घनश्याम जोशी, लोक प्रशासन विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी	10,11
प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी, राजनीति विज्ञान विभाग, एस0बी0एस0 पी0जी0 कालेज, रूद्रपुर	12
ऋतंभरा नैनवाल, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), लोक प्रशासन विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	13,14

आई.एस.बी.एन. -----------

कापीराइट @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,प्रकाशन वर्ष -2026

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :-----------------------------------

संस्करण:2026, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

मुद्रित प्रतिया

MAPS-614

भारतीय प्रशासन		
इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड 1 परिचय		
1.	ब्रिटिश प्रशासन एवं प्रशासनिक व्यवस्था	1-21
2.	भारतीय प्रशासन की विशेषताएं	22-31
3.	भारतीय प्रशासन: सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व संवैधानिक पर्यावरण	32-44
4.	भारतीय संविधान की विशेषताएं	45-55
खण्ड 2 भारत में वित्तीय प्रशासन		
5.	बजट: धारणा और स्वरुप	56-70
6.	वित्त आयोग	71-86
7.	नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक	87-102
8.	मंत्रिमंडलीय सचिवालय, केन्द्रीय सचिवालय, प्रधानमंत्री सचिवालय	103-118
9.	राजनीति और प्रशासन में सम्बन्ध	119-128
खण्ड 4 स्थानीय स्वशासन		
10	पंचायती राज: 73वाँ संवैधानिक संशोधन	129-141
11.	नगरीय स्थानीय सरकार: 74वाँ संवैधानिक संशोधन	142-156
खण्ड 4 संवैधानिक-गैर संवैधानिक निकाय		
12.	संघ लोक सेवा आयोग	157-177
13.	भारत के महान्यायवादी, राज्य के महाधिवक्ता	178-196
14.	सूचना आयोग, सतर्कता आयोग	197-226

इकाई - 1 ब्रिटिश प्रशासन एवं प्रशासनिक व्यवस्था

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारतीय प्रशासन: विकास
    1.3.1 मौर्य प्रशासन
    1.3.2 मुगल प्रशासन
1.4 ब्रिटिश प्रशासन
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

यद्यपि लोक प्रशासन एक अध्ययन के विषय के रूप में नवीन विषय है जिसका जन्म 1887 में वुडरो विल्सन की राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा के प्रतिपादन के परिणामस्वरूप हुआ, तथापि लोक प्रशासन एक कार्य या प्रक्रिया के रूप में सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही दिखाई देता है। जब से सभ्यता का अस्तित्व के साथ ही दिखाई देता। जब से सभ्यता का अस्तित्व है तब से मानव के विकास हेतु निरंतर संगठित प्रयास होते रहै और सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही प्रशासन का अस्तित्व भी देखने को मिलता है।

भारतीय परिवेश में भी प्रशासन का विकास प्राचीन काल से ही देखा जा सकता है। हड़प्पा सभ्यता से लेकर आज तक भारतीय प्रशासन अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरा है। भारतीय प्रशासन अपने वर्तमान रूप में विरासत और निरंतरता का परिणाम है जिसके विकास की कड़ियां किसी न किसी रूप में अतीत से जुड़ी हुई है। हालांकि वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली मूल रूप से ब्रिटिश काल की देन मानी जाती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम -

1. भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे ।
2. मौर्यकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।
3. मुगलकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे ।
4. ब्रिटिश शासन में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।

1.3 भारतीय प्रशासन विकास

वी. सुब्रह्मण्यम के अनुसार वर्तमान प्रशासनिक प्रक्रिया का सिलसिला सदियों तक विचारों का रहा, न कि संस्थाओं का। संस्थागत सिलसिला अंग्रेजों के शासनकाल की देन है। भारतीय प्रशासन के विकास में मौर्यकाल, मुगलकाल तथा ब्रिटिशकाल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.3.1 मौर्य प्रशासन

मौर्य प्रशासन का अथवा भारतीय इतिहास में दिलचस्पी का विषय है। मौर्य प्रशासन का अध्ययन पूर्ववर्ती प्रक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है, अर्थात इसकी स्थिति वैदिक कबायली संरचना और सामंतवादी युग के बीच की है।मौर्यकालमें भारत ने पहली बार राजनीतिक एकता प्राप्त की तथा एक विशाल साम्राज्य पर मौर्य शासकों ने शासन किया। इस विशाल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले अनेक ऐतिहासिक स्रोत उपलब्ध है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की इंडिका,, अशोक के शिलालेख व अनेक यूनानी रचनाओं से मौर्य शासन प्रणाली के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा अपने गुरू और प्रधानमंत्री चाणक्य की सहायता से जिस शासन प्रणाली का प्रारंभ किया गया, उसके अनेक तत्व वर्तमान प्रशासन में भी दृष्टिगोचर होते है।

मौर्य प्रशासन के दौरान निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है-

1. यह एक अति केन्द्रीकृत प्रशासन था जिसकी पहुँच नागरिक जीवन के सभी क्षेत्रों में थी। इसकी चिंता बाजार-व्यवस्था के नियंत्रण से लेकर नागरिक जीवन में नैतिक मूल्यों की सुरक्षा तक थी।

2. यह एक नौकरशाही पर आधारित प्रशासन था जिसमें सबल एवं निर्बल दोनों पक्ष थे।

3. वस्तुतः मौर्य प्रशासन कोई नवीन प्रशासन नहीं था वरन नंद शासकों की पद्धति का ही एक विकसित रूप था अर्थात् केंन्द्रीकरण की प्रक्रिया नंद शासकों के समय ही शुरू हो गई थी।

केन्द्रीय प्रशासन:-

मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। अतः शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद हो गया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गए। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां भी थी। राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का संपादन ही राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था।

राजा अब केवल दूरस्थ संरक्षक नहीं वरन जनता का एक निकट संरक्षक बन गया। राजशक्ति निंरकुश पितृसत्तावाद पर आधारित थी। अशोक ने स्पष्ट रूप से अपने धौली शिलालेख में घोषणा की कि “सारी प्रजा मेरी संतान है”। अर्थात मौर्य शासक जनता के व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप करने लगे थे। राजा अब न केवल धर्मशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। बल्कि अर्थशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। अर्थशास्त्र में राजा की विवेकशीलता पर बल दिया गया, अर्थात् राजा न केवल पुराने कानूनों का पालन करवा सकता था वरन प्रशासनिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर नए कानूनों कानिर्माणभी कर सकता था और फिर परंपरागत कानून तथा राजा के कानून में किसी प्रकार का विरोधाभास उत्पन्न होने की दशा में राजा का कानून ही ज्यादा मान्य होता था। अर्थशास्त्र के अनुसार प्रशासन के प्रत्येक पहलू में राजा का आदेश या विचार ही सर्वोपरि है।

अर्थशास्त्र में राजा के कर्त्तव्यों का भी निर्धारण किया गया। अर्थशास्त्र ने इस बात पर बल दिया, कि राजा को किसी भी समय कर्मचारियों एवं जनता की पहुंच से परे नहीं होना चाहिए । ऐसा होने पर गड़बड़ी एवं अशांति फैलेगा और राजा शत्रुओं का शिकार हो जाएगा। मेगस्थनीज का भी कहना है कि मालिश करवाते समय राजा से विचार विमर्श के लिए मिला जा सकता है। अशोक के शिलालेख भी इस बात की पुष्टि करते है। अर्थशास्त्र में राजा के कुछ आवश्यक गुण भी निर्धारित किए गये, जिसके अनुसार जनसाधारण, राजा नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त राजा को दैवीय बुद्धि व शक्ति वाला, वृद्धजनों की बात सुनने वाला, धार्मिक व सत्यवादी होना आवश्यक है।

मंत्रिपरिषद:-

सिंद्धात के रूप में मौर्य काल में राज्य की संपूर्ण शक्ति राजा के हाथों में ही केंद्रित थी, किंतु व्यवहार में अनेक प्रतिबंधों के कारण राजा की शक्ति की निरंकुशता सीमित थी विशाल मंत्रिपरिषद व प्राचीन परंपराओं के पालन ने मौर्य शासकों की निरंकुशता पर सदैव अंकुश लगाए रखा। राजा को अपने कर्त्तव्यों के निवर्हन में सहायता हेतु एक मंत्रिपरिषद होती थी। अर्थशास्त्र एवं अशोक के अभिलेखों में मंत्रिपरिषद का जिक्र है। अर्थशास्त्र के अनुसार राज्यरूपी रथ केवल एक पहिए (राजा) के द्वारा नहीं चल सकता। अतएव दूसरे पहिए के रूप में उसे मंत्रिपरिषद की आवश्यकता होती है।

मंत्रिपरिषद एक परामर्शदात्री निकाय थी जिसकी शक्ति राजा एवं मंत्रियों की परस्पर स्थिति पर निर्भर करती थी। सामान्यतः राजा के समानांतर मंत्रिपिरषद् की शक्ति कमजोर थी और राजा मंत्रिपरिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं था। राजा के समानांतर मंत्रियों की स्थिति का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि राजा अपने मंत्री को स्वयं नियुक्त करता था। मेगस्थनीज के अनुसार राजा के सलाहकार एक विशेष जाति से नियुक्त होते थे। राजा द्वारा मुख्यमंत्री तथा पुरोहित का चुनाव उनके चरित्र की भली भांति जांच के बाद किया जाता था।

अर्थशास्त्र में मंत्रियो के कुछ गुण निर्धारित किए गये अर्थात उनमें उच्चकुल में जन्म, वीर, बुद्धिमान, ईमानदारी जैसे गुण होने चाहिए। मंत्रिपरिषद से 3-4 मंत्रियों की एक छोटी उपसमिति भी बनती थी जो राजा को कुछ विशिष्ट बातों में परामर्श देती थी। कौटिल्य ने नीति निर्धारण की गोपनीयता पर बल दिया है। मंत्रिपरिषद का अपना सचिव होता था, जिस पर उसके कार्यालय की देखभाल का भार था। कौटिल्य ने उसे मंत्रिपरिषद अध्यक्ष कहा है। डॉ. आर. सी. मजूमदार ने मौर्यकालीन मंत्रिपरिषद की तुलना इंग्लैण की प्रिवि-कौंसिल से की है।

नौकरशाही:-

मंत्रिपरिषद व राजा के द्वारा मुख्यतः नीति निर्धारण का कार्य किया जाता था। तत्पश्चात् उन नीतियों को कार्यान्वित करने का प्रमुख कार्य नौकरशाही के द्वारा किया जाता था। मौर्यकालीन नौकरशाही अत्यधिक सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित थी। प्रशासन के संचालन में कौटिल्य ने 18 तीर्थो (अधिकारियों का नाम) एवं 27 अध्यक्षों की भूमिका पर बल दिया है। मौर्यकाल में प्रशासन की सुविधा के लिए 18 विभागों की स्थापना की गई थी जिन्हें तीर्थ कहते थे। प्रत्येक विभाग के संचालन व निरीक्षण के लिए अध्यक्ष होता था। एक महत्वपूर्ण केंद्रीय अधिकारी सन्निधाता अर्थात् कोषाध्यक्ष होता था। वह केन्द्रीय खजाने का प्रभारी होता था। वह एक दूसरे महत्वपूर्ण अधिकारी समाहर्त्ता से मिलकर कार्य करता था। समाहर्त्ता भू-राजस्व की वसूली से जुड़ा हुआ था। युवराज, राजा का उत्तराधिकारी होता था। मंत्री सर्वोच्च सलाहकार था। पुरोहित शासकीय तथा धार्मिक मामलों में राजा का परमर्शदाता था।

अर्थशास्त्र में राजस्व के महत्वपूर्ण स्रोतों की चर्चा की गई है, जैसे भूमि, खन, जंगल, सड़क आदि। महत्वपूर्ण राजकीय खर्च वेतन, सार्वजनिक कार्य निमार्ण, सड़क एवं कुएं, विश्रामगृह, सिचांई से संबंधित कार्यो में होता था। अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय कोष एवं राजा के व्यक्तिगत कोष में कोई अंतर नहीं किया गया था।

राज्य का सप्तांग सिंद्धात:-

कौटिल्य के अनुसार राज्य एक आवश्यक और अनिवार्य संस्था है। राज्य की स्थापना के बिना समाज में अराजकता तथा मत्स्य न्याय की स्थापना हो जाएगी तथा शक्तिशाली, दुर्बल को अपने हित का साधन बना लेगा। कौटिल्य राज्य की उत्पत्ति के संदर्भ में सामाजिक समझौते के सिंद्धात में विश्वास करता है। राजा व प्रजा के बीच समझौते के परिणामस्वरूप राज्य अस्तित्व में आया। चूकिं राज्य, व्यक्ति के लिए हितकारी संस्था है। अतः व्यक्ति की निष्ठा एवं आस्था राज्य में होती है। कौटिल्य के अनुसार राज्य के 7 अंग हैं जिन पर राज्य की व्यवस्था, स्थिरता और अस्तित्व निर्भर करता है। ये 7 अंग हैं- राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोषालय, सशस्त्र सेना तथा मित्र। राज्य के इन

भागों में सावयव एकता होती है। राजा राज्य का प्राण है। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा धर्म का रक्षक होता है। उसमें निर्भयता, आत्मनियंत्रण, निणर्य लेने की क्षमता तथा विचार करने की शक्ति होनी चाहिए। यदि राजा अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार नहीं करता, तो वह आदर योग्य नहीं है। अयोग्य राजा को पद से हटा देना चाहिए।

राजा के बाद पद्सोपान में दूसरा स्थान अमात्म का आता हैं। वह आजकल के मंत्रिमंडलीय सचिव के समान शासकीय अधिकारियों में सबसे उच्चअधिकारी होता था। अमात्य प्रशासन संबंधी बातों को देखता था। राजा कुशल, बुद्धिवान तथा निर्णय लेने की क्षमता वाले व्यक्ति को अमात्य पद के लए चयन करता था।

जनपद, राज्य का तीसरा अंग था। इसमें भूमि-भाग के साथ साथ क्षेत्र में रहने वाले लोग सम्मिलित होते थे। कौटिल्य के आनुसार श्रेष्ठ जनपद वह है जो प्राकृतिक सीमाओं जैसे नदी, पहाड़, जंगल में बसा हो। जनपद की भूमि उपजाऊ होनी चाहिए तथा रहने वाले लोग मेहनती, बुद्धिमान, वफादार होने चाहिए।

दुर्ग भी राज्य का एक अनिवार्य अंग था। राज्य की स्थिरता और युद्धों में सुरक्षा के लिए दुर्ग की भूमिका अहम होती थी। दुर्ग में पर्याप्त खाद्य सामग्री, अस्त्र-शस्त्र, पानी, दवाईयां आदि का रहना आवश्यक था जो समय पर काम आ सके।

कोष व कोषालय भी राज्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य था। मौर्यकाल में वित्त की व्यवस्था बेहतर थी। विभिन्न प्रकार के करों से प्राप्त राशि कोषालय में एकत्रित होती थी। विभिन्न खर्चों के लिए बजट में व्यवस्था होती थी। आपात स्थितियों से निपटने के लिए आपात निधि की आवश्यकता थी।सेना की राज्य में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। कौटिल्य ने मोर्य सेना के संगठन तथा सैन्यशास्त्र का व्यापक चित्रण किया है। सैनिको से राज भक्ति, साहस, बहादुरी की अपेक्षा की जाती थी। सीमा विस्तार पर विशेष ध्यान होने की वजह से सेना राज्य का आवश्यक अंग थी।

मित्र से तात्पर्य मित्र राज्यों से था। राज्य की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि पड़ोसी राज्यों के साथ उसके संबंध मैत्रीपूर्ण हैं या नहीं ।
इस प्रकार कौटिल्य ने राज्य के अस्तित्व एवं स्थिरता हेतु राज्य के सात अंगों पर आधारित होने की बात कही ।इन अंगों के बीच उचित संतुलन अनिवार्य था।

प्रांतीय प्रशासन:-

मौर्यकाल में संपूर्ण साम्राज्य का विभाजन प्रांतों में किया गया था। पाँच प्रांतीय राजधानियां प्रमुख थी। उत्तरापथ की राजधानी तक्षशिला, अवंति राज्य की राजधानी उज्जैन, कलिंग प्रांत की राजधानी तोसली, दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि और पूर्वी प्रांत की राजधानी पाटलिपुत्र। ये पाँच महत्वपूर्ण एवं बड़े प्रांत थे तथा इनके अधीन छोटे छोटे प्रांत भी थे। बड़े प्रांतों का प्रशासक राजकुल का होता था। अशोक के फरमानों में उन्हें कुमार या आर्यपुत्र कहा गया है। अर्थशास्त्र में इस बात की चेतावनी दी गई कि कुमार या आर्यपुत्र खतरे का कारण हो सकता है। इसलिए उसे राज्य पर संपूर्ण नियंत्रण नहीं होना चाहिए। प्रांतीय प्रशासन में केंद्रीकरण की प्रकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है क्योंकि प्रांतीय मंत्रिपरिषदों को यह स्वतन्त्रता थी कि वह प्रांतीय प्रशासक को सूचित किए बिना राजा को महत्वपूर्ण सूचना प्रेषित कर सकती है। इस बात की पुष्टि दिव्यावदान से भी होती है।

किंतु क्षेत्रीय स्तर पर मौर्य प्रशासन में कुछ स्वायत्तता प्रदान की गई थी अर्थात संबंधित क्षेत्र के व्यक्ति को ही उस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया जाता था। उदाहरण के लिए रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि काठियावाड़ का शासक यौनराज तुशाष्क था ।

स्थानीय प्रशासन:-

प्रांतों का विभाजन विभिन्न जिलों में किया गया था। जिले को विषय या आहार कहा जाता था। जिला प्रशासन से जुड़े तीन पदाधिकारी थे- प्रादेशिक, रज्जुक और युक्त। प्रादेशिक नामक अधिकारी कानून एवं व्यवस्था को बनाऐ रखने और भू-राजस्व की वसूली से जुड़े हुए थे जबकि रज्जुक नामक अधिकारी विशेष रूप से न्यायिक कार्यो से जुड़े हुए थे। रज्जुक की नियुक्ति ग्रामीण जन कल्याण के उद्देश्य से की जाती थी। उसके अतिरिक्त युक्त का कर्त्तव्य सचिव एवं लेखा संबधी काम देखना था। अशोक के अभिलेखों में इन अधिकारियों की चर्चा की गई है।

जिला एवं ग्रामीण प्रशासन के बीच एक और प्रशासनिक इकाई थी। जो संभवतः 5 या 10 गांवों का समूह होती थी। इसका महत्वपूर्ण अधिकारी गोप होता था जिसका काम सामान्य प्रशासन की देख - रेख करना था। गोप के अतिरिक्त स्थानिका नामक अधिकारी भी होता था जिसका मुख्य कार्य कर की वसूली था। वह सीधे प्रादेशिक के अधीन था। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानिका आधुनिक सहायक कलेक्टर और प्रादेशिका जिला कलेक्टर के समान थे और ये दोनों अधिकारी समाहर्त्ता या चीफ कलेटर के अधीन होते थे।

सबसे निचले स्तर पर ग्रामीण प्रशासन था जिसका प्रधान मुखिया होता था। वह ग्रामीण वृद्धजनों में से निर्वाचित होता था। छोटे गांवों में मुखिया ही एक मात्र अधिकारी होता था किंतु बड़े गावों में

मुखिया की सहायता के लिए लेखपाल एवं लिपिकों की नियुक्ति की जाती थी और अधिकारियों का वेतन या तो भू- राजस्व से या फिर भूमि प्रदान करके पूरा किया जाता था।

नगर प्रशासन:-

मौर्यकाल में नगर प्रशासन का अपना श्रेणीबद्ध संगठन था। नगर प्रशासन का प्रधान नगरक नामक अधिकारी होता था। अशोक के एक अभिलेख में नगर-व्यवहारिक की चर्चा की गई है। नगरक या नगर निरीक्षक का काम नगर कानून व्यवस्था बनाए रखना था। अकाल पड़ने पर गोदामों से अनाज बंटवाने का काम भी नगरक करता था। इस नगरक नामक अधिकारी की सहायता एवं मंत्रणा के लिए समाहर्त्ता एवं प्रादेशिका नामक अधिकारी होते थे। मेगस्थनीज के इंडिका में विस्तार से पाटलिपुत्र के नगर प्रशासन की चर्चा की गई है। मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र के प्रशासक के लिए पांच-पांच सदस्यों की 6 समितियां होती थी जिनके कार्य एवं कार्त्तव्य निम्नलिखित थे।

1. उद्योगों व शिल्पों का निरीक्षण 2. विदेशियों की देखभाल 3. जन्म मरण का पंजीकरण 4. वाणिज्य व्यापार की देखभाल 5. सार्वजनिक बिक्री का निरीक्षण 6. बिक्री कर संग्रह

कौटिल्य के अर्थशास्त्र की प्रांसगिकता:-

कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारत में लोक प्रशासन पर किया गया सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। यद्यपि अर्थशास्त्र में स्पष्ट रूप से लोक प्रशासन के सिद्धांत नहीं रखे गए हैं लेकिन इसमें वर्णित सरकारी कार्यप्रणाली महत्वपूर्ण है। कौटिल्य ने एक कल्याणकारी प्रशासन की बात की थी। राजा को प्रजा के हित के लिए कार्य करना चाहिए। उसे प्रजा को पुत्र की भांति पालना चाहिए, क्योंकि 'प्रजा हिते, हिते राज्ये, प्रजानाम च सुखे सुखम्'। अर्थात प्रजा के हित में ही राज्य का हित है और प्रजा के सुख से ही राज्य सुखी है। कल्याणकारी प्रशासन के साथ ही कौटिल्य ने सुशासन की बात की है अर्थात जनता की सारी सुविधाओं को सरकार द्वारा मुहैया कराया जाना चाहिए। क्षेत्रों की आवश्यकतानुसार उन्हें संसाधन उपलब्ध कराना राष्ट्र का दायित्व है।

कौटिल्य ने राजस्व संग्रहण के संदर्भ में उचित करारोपण को महत्व दिया है। करारोपण राज्य की आवश्यकता व प्रजा की स्थिति के अनुरूप होना चाहिए, उसके अनुसार उचित करारोपण की व्यवस्था वैसी ही होनी चाहिए, जैसे वृक्ष से फल गिरते हैं। कौटिल्य ने जट को जनता को खुशहाली की गारंटी देती है। कौटिल्य का कथन है कि सभी उद्यम वित्त पर निर्भर है अतः कोषागार पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

कौटिल्य का विचार है कि राजा का लोकसेवक कोषागार रक्षक मात्र होना चाहिए। प्रशासन के नियमों का उल्लंघन करने पर न्यायपालिका के दायरे में नहीं आते, किंतु निजी गुप्तचर व्यवस्था तथा

विदेश संबंधी आदि विषयों पर कौटिल्य के द्वारा दिए गए विचार वर्तमान भारतीय प्रशासन के संदर्भ में पर्याप्त रूप से प्रासंगिक है।

1.3.2 मुगल प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन: प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता है था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था । बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह संपूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है।

मुगल बादशाह बहुत शान शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। उनको बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त थे और उनकी इच्छा ही कानून थी। तुर्की मंगोल परंपरा से ही मुगल प्रशासन को केन्द्रीकृत प्रशासन की अवधारणा विरासत में प्राप्त हुई थी। वैसे कुछ विद्वानों का मानना है कि अकबर के समय केन्द्रीकृत तुर्की मंगोल परंपरा में संशोधन किया गया।इन सबके उपरांत भी राजा का जीवन नियमों से बंधा हुआ था और यह माना जाता था कि जनता की भलाई में ही राजा की भलाई है। कुरान में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि प्रजा के कल्याण का पूरा उत्तरदायित्व राजा के कंधों पर है। केन्द्रीय प्रशासन के संचालन हेतु राजा के द्वारा निम्नांकित पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी।

1. वकील या वजीर -

वकील संपूर्ण प्रशासन का पर्यवेक्षण करता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था। यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जांच भी करता था।

2. दीवाने-आला या दीवने-कुल:-

दीवाने आला वित्तीय शक्तियां रखता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था। यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जांच भी करता था।

3. मीर बख्शी:-

यह साम्राज्य का सर्वोच्च भुगतान अधिकारी होता था क्योंकि मुगलकाल में मनसबदारी प्रथा प्रचलित थी तथा सैनिक एवं असैनिक सेवाओं का एकीकरण किया गया था। इसलिए यह साम्राज्य के सभी अधिकारियों को भुगतान करता था। यह मनसबदारों की नियुक्ति की सिफारिश करता था और उनके लिए जागीर की अनुशंसा करता था।

4. दीवाने-शामा/खान-ए-शामा:-

यह राजकीय कारखनों का निरीक्षण करता था तथा राजकीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन कारखानों के उत्पादन को नियंत्रित करता था।

5. सद्र-उस-सूद्र:-

यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकदमें भी देखता था।

6. मुख्य काजी:-

यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।

7. मुहतसिब:-

यह जनता के नैतिक आचरण का निरीक्षण करता था और देखता था कि शरीयत के अनुसार कार्य हो रहा है या नहीं साथ ही यह माप तौल का निरीक्षण भी करता था।

उपरोक्त 7 अधिकारियों के अतिरिक्त केन्द्रीय प्रशासन में कुछ छोटे छोटे पद भी होते थे, जैसे- दरोगा-ए-तोपखाना, दरोगा-ए-डाकचौकी, मीर -माल (टकसाल प्रधान), मीर-बर्र (वन अधीक्षक) आदि।

प्रांतीय प्रशासन

मुगल सम्राट बाबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन जागीरों में किया था तथा उसके समय किसी प्रकार की प्रांतीय प्रशासनिक व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। सबसे पहले एकरूप प्रातों का निर्माण अकबर के शासनकाल में हुआ। सन् 1580 में अकबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन 12 प्रातों में किया, जिसकी संख्या शाहजहाँ के काल तक 22 हो गई। अकबर की प्रशासनिक नीति प्रशासनिक एकरूपता तथा रोक और संतुलन के सिद्धांतों पर आधारित थी परिणामस्वरूप प्रांतीय प्रशासन का ही प्रतिरूप था।

प्रांतीय प्रशासन का प्रमुख सूबेदार/नजीम कहलाता था जिसकी नियुक्ति बादशाह करता था। आमतौर पर सूबेदार का कार्यकाल 3 वर्ष का होता था। नजीम की सहायता हेतु कुछ अन्य अधिकारी भी होते थे। प्रांतीय दीवान की नियुक्ति केंद्रीय दीवान की अनुसशंसा पर बादशाह करता था। प्रांतीय दीवान, नजीम के बराबर का अधिकारी होता था और कभी-कभी श्रेष्ठ अमीर को भी दीवान का पद दे दिया जाता था। इसी तरह प्रांतीय बख्शी की नियुक्ति केंद्रीय बख्शी की अनुशंसा पर होती थी और प्रांतीय बख्शी सुरक्षा से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बातें नजीम को बताए बिना केन्द्रीय बख्शी तक प्रेषित कर देता था। अकबर ने केंन्द्रीय सद्र शक्ति को कम करने के लिए प्रांतीय सद्र को नियुक्त करना शुरू किया। अब प्रांतीय सद्र के परामर्श से भी धार्मिक बातों का निर्णय लिया जा सकता था। इनके अतिरिक्त प्रांतीय स्तर पर काजी भी होता था।

स्थानीय प्रशासन

प्रांतों के विभाजन सरकार में होता था। सरकार से जुड़े हुए अधिकारी थे फौजदार, अमालगुजार, खजानदार आदि। फौजदार शांति व्यवस्था की देखरेख करता था और अमालगुजार भू-राजस्व से जुड़ा अधिकारी था। खजानदार सरकार के खजाने का संरक्षक होता था। कभी-कभी एक सरकार में कई फौजदार होते थे और कभी-कभी दो सरकारों पर एक फौजदार भी होता था। सरकार का विभाजन परगनों में होता था। परगनों से जुड़े अधिकारी सिकदार, आमिल, पोतदार, कानूनगों आदि थे। सिकदार शान्ति व्यवस्था का संरक्षक होता था और भू-राजस्व संग्रह में आमिल की सहायता करता था। आमिल भू-राजस्व प्रशासन से जुड़ा अधिकारी था। पोतदार, खजांची को कहा जाता था तथा कानूनगों गांव के पटवारियों का मुखिया होता था और स्वयं कृष्य भूमि का पर्यवेक्षण करता था। सबसे नीचे ग्राम होता था जिससे जुडे अधिकारी मुकद्दम और पटवारी थे। मुगलकाल में ग्राम पंचायत की व्यवस्था थी। इस विभाजन के अतिरिक्त नगरों में कानून व्यवस्था की देखरेख के लिए कोतवाल की नियुक्ति होती थी। अबुल फजल के आइने-अकबरी में कोतवाल के कार्यो का विवरण दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक किले पर किलेदार की नियुक्ति होती थी।

इस प्रकार मुगल प्रशासन केंद्रीय प्रशासन से लेकर गांव तक श्रृंखलाबद्ध था लेकिन कुछ इतिहासकार जिनमें इरफान हबीब और आर्थर अली महत्वपूर्ण हैं मुगल प्रशासनिक ढांचे को अतिकेन्द्रीकृत मानते हैं।

मनसबदारी व्यवस्थाः-

अकबर के द्वारा स्थापित की गई मनसबदारी पद्धति मौलिक रूप से एक प्रशासनिक सामरिक उपकरण थी जिनका उद्देश्य अमीरों एवं सेना का एक सक्षम संगठन स्थापित करता था। वस्तुतः मनसबदारी पद्धति की व्याख्या केंद्रीकृत रातनैतिक ढांचे के परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है। इसके साथ साम्राज्य की शक्ति को एक चैनल में बांध दिया गया और अमीर वर्ग सेना तथा नोकरशाही तीनों को जोड़ दिया गया।

मुगल साम्राज्य के सभी पंजीकृत अधिकारियों को एक मनसब प्रदान किया गया, जो जोडे के अंक में प्रस्तुत किया जाता था। प्रथम, संबधित अधिकारी के जात रैंक का बोध होता था तथा दूसरे उसके सवार रैंक का बोध कराता था। जात रैंक किसी भी अधिकारी काविभिन्नअधिकारियों के पदानुक्रम में पद और स्थान को निर्धारित करता था। दूसरी तरफ सवार रैंक उसके सैनिक उत्तरदायित्व को रेखांकित करता था। सैद्धांतिक रूप से मनसब के कुल 66 ग्रेड होते थे। निम्नतम 10 और उच्चतम 10 हजार होता था किन्तुव्यावहारिकरूप में केवल 33 ग्रेड ही प्रचलित थे। पांच हजार से अधिक रैंक सामान्यतः राजकीय व्यक्ति को ही प्रदान किए जाते थे किंतु यह प्रतिष्ठा कुछ राजपूत योद्धाओं को भी प्राप्त हुई।

जगीरदारी प्रथा:-

वस्तुतः जागीरदारी पद्धति की स्थापना के पीछे साम्राज्य का एक व्यापक उद्देश्य था जिसके द्वारा उन राजपूत जमींदारों से भू- राजस्व संग्रह करना संभव हो गया, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था किन्तु उस समय के कुलीन वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इकतादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं ,जागीरदार को राजकीय नियमों के अनुरूप केवल प्राधिकृत राजस्व वसूलने का अधिकार था तथा प्रशासनिक कार्यो के लिए राज्य जिम्मेदार था। यदि भू-राजस्व की वसूली में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित होता, तो जागीरदार उस क्षेत्र के फौजदार से सैनिक सहायता भी प्राप्त कर सकता था। जागीरदारी व्यवस्था के द्वारा प्रशासनिक केन्द्रीकरण का प्रयास हुआ था और नौकरशाही को ग्रामीण समुदाय पर आरोपित कर दिया गया था।

1.4 ब्रिटिश प्रशासन

भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। प्रारंभ में कंपनी का उद्देश्य व्यापार करना था और बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास के बंदरगाहों से होकर शेष भारत से इसका संपर्क रहता था। धीरे धीरे कंपनी की प्रादेशिक महत्वकांक्षा प्रबल होती गई और शीघ्र ही वह भारत में एक प्रमुख यूरोपीय शक्ति बन गई। यही कंपनी आगे चलकर मुगल शासन की उत्तराधिकारी बनी। प्लासी और बक्सर के युद्ध के बाद भारत में कंपनी की साम्राज्यीय महत्वकांक्षाएं प्रबल हुई और 1765 की इलाहाबाद की संधि के द्वारा कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अधिकार प्राप्त हुए, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की शुरूआत हुई, जहां कि राजस्व संग्रहण का कार्य ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में था, लेकिन सामान्य प्रशासन की जिम्मेदारी संबंधित प्रांत में मुगल प्रशासन द्वारा नियुक्त नवाब के जिम्मे होती थी। इस प्रकार कर्त्तव्य नवाब के पास थे लेकिन शक्तियां कंपनी के पास। यद्यपि नवाब की नियुक्ति में भी कंपनी का हस्तक्षेप होता था और उप नवाब की नियुक्ति का अधिकार तो कंपनी के पास ही था। इस प्रकार सारी शक्तियां कंपनी के हाथ में

केन्द्रीत हो गई, लेकिन कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व नहीं, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की वजह से अकाल, अव्यवस्था जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा।

कंपनी के शासन की शुरूआत होने और उसकी शक्तियों में वृद्धि होने के साथ-साथ ब्रिटिश संसद का भी भारतीय प्रशासन संबंधी मामलों में कंपनी के माध्यम से अप्रत्यक्ष नियंत्रण प्रारम्भ हुआ, जो कि 1857 की क्रांति के बाद कंपनी शासन की समाप्ति और भारत में प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन की स्थापना में परिणत हो गया।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की स्थापना के बाद ब्रिटिश संसद ने समय समय पर विभिन्न अधिनियम पारित करके कंपनी के शासन पर नियंत्रण करने का प्रयास किया, जिनकी संक्षिप्त चर्चा निम्नांकित रूप में की जा सकती है-

केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद का विकास

1. 1773 से 1858 तक प्रशासनिक व्यवस्था - भारतीय संवैधानिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के विकास में 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट का विशेष महत्व है। सरकार ने कंपनी के आर्थिक, प्रशासनिक एवं सैनिक कार्यो पर संसद के आंशिक नियंत्रण के लिए यह अधिनियम पारित किया था। इस अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्ननर को कंपनी के भारतीय प्रदेशों का गर्वनर जनरल बनाया गया तथा इसकी सहायता के लिए 4 सदस्यों की एक परिषद की स्थापना की गई इस कानून में बंबई और मद्रास के प्रेसीडेंसी को कलकत्ता प्रेसीडेंसी बंगाल के अधीन कर दिया गया। साथ ही भारतीय मामलों में ससंद का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप आरंभ हुआ। परिणामस्वरूप इस कानून से भारत में प्रशासन के केन्द्रीकरण का कार्य शुरू हुआ।

1784 में पिट्स इंडिया एक्ट के माध्यम से गवर्नर जनरल की कौंसिल में सदस्यों की संख्या 4 से घटाकर 3 कर दी गई। साथ ही मद्रास तथा बंबई प्रेसीडेंसियों पर गवर्नर जनरल के निरीक्षण एवं नियंत्रण के अधिकार अधिक स्पष्ट कर दिए गए। इस अधिनियम का उद्देश्य कंपनी पर ब्रिटिश क्राउन का नियंत्रण बढ़ाना था। अतः ब्रिटेन में 6 सदस्यों के बोर्ड ऑफ कंट्रोल की स्थापना की गई। 1786 के अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को परिषद से अधिक शक्तियां प्रदान की गई और उसे मुख्य सेनापति बनाया गया।

1793 के अधिनियम से गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल की अनुशंसा को रद्द करने का अधिकार दिया गया। 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा भारत में ब्रिटिश कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया, लेकिन भू-राजस्व प्रशासन एवं भारतीय प्रशासन का कार्य कंपनी के अधीन रहने दिया गया। 1833 के चार्टर अधिनियम से बंगाल का गवर्नर भारत का गवर्नर जनरल कहलाने लगा। बंबई एवं मद्रास प्रेसीडेंसी को पूर्णतः बंगाल के अधीन कर दिया गया। संपूर्ण भारत के लिए विधि निर्माण

का एकाधिकार गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद को प्रदान किया गया तथा बंबई और मद्रास प्रेसीडेंसी से विधिनिर्माणके अधिकार छीन लिए गए। अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल की काउंसिल में एक चौथा सदस्य फिर से जोड़ा गया, जिसे विधि सदस्य का नाम दिया गया। इस प्रकार इस अधिनियम से भारत में केन्द्रीकृत प्रशासन की स्थापना हुई।

2. 1858 से 1919 तक-1858 के अधिनियम द्वारा भारत पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के स्थान पर ब्रिटिश संसद के शासन की स्थापना हुई। भारत सचिव के पद का सृजन किया गया। तथा समस्त संवैधानिक, प्रशासनिक तथा वित्तीय शक्तियां भारत सचिव तथा उसकी 15 सदस्यीय परिषद में केंद्रित हो गई। भारत में सत्ता का केंन्द्रीकरण गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद में निहित हो गया। गवर्नर जनरल को वायसराय कहा जाने लगा।

1861 के अधिनियम द्वारा भारतीय प्रशासन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। पहली बार प्रांतीय विधायिकाओं की स्थापना हुई। यद्यपि इनके कई अधिकार सीमित थे। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद तथा विधायिका का पुनर्गठन किया गया। अधिनियम की व्यवस्था द्वारा कार्यकारिणी के महत्व में कमी एवं गवर्नर जनरल के प्रभाव में वृद्धि हुई। गवर्नर जनरल को इस बात के लिए अधिकृत किया गया कि वह प्रशासनिक व्यवस्था हेतु विधि बनाए। कैनिंग के द्वारा **विभागीय व्यवस्था** की शुरूआत की गई। अधिनियम के द्वारा मद्रास और बंबई प्रेसीडेंसी को पुनः विधि निर्माण के अधिकार तथा अन्य प्रांतों में ऐसी ही विधायिकाओं की स्थापना की व्यवस्था करके विधि निर्माण में विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया की नींव पड़ी।

1892 के भारतीय परिषद अधिनियम के अंतर्गत विधायिकाओं की सदस्य संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई तथा प्रतिनिधि संस्थाओं की सिफारिशों पर मनोनीत किया जाने लगा। 1909 के मार्ले-मिन्टो सुधारों द्वारा विधायिकाओं की सदस्य संख्या में वृद्धि हुई परंतु बहुमत सरकारी सदस्यों का ही बना रहा। अधिनियम में अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को अपनाया गया अर्थात् केंद्रीय विधान परिषद में विभिन्न प्रांतों से सदस्य चुनकर आने थे। इस अधिनियम का सबसे बड़ा दोष पृथक निर्वाचन व्यवस्था थी।

1919 में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार द्वारा वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में भारतीयों को स्थान दिया गया। केन्द्रीय स्तर पर द्वि-संदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना हुई। अधिनियम के द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया। आरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर को अपने पार्षदों की सहायता से करना था तथा हस्तांतरित विषयों का प्रशासन निर्वाचित मंत्रियों की सहायता से किया जाना था।

3. सन् 1919 से स्वतंत्रता तक प्रशासनिक व्यवस्था 1935 के भारत सरकार अधिनियम का भारत के संवैधानिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस अधिनियम ने भारत में संघात्मक व्यवस्था का सूत्रपात किया। इस संघ का निर्माण ब्रिटिश भारत के प्रांतों, देशों राज्यों और कमिश्नरी के प्रशासनिक क्षेत्र को मिलाकर किया जाना था। संघ स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली को अपनाया गया और आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना करने का प्रावधान किया गया। संघीय कार्यपालिका, संघीय विधानमंडल तथा संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। प्रांतों में प्रांतीय सरकार तथा प्रांतीय सरकार की कार्यपालिका शक्ति समस्त प्रांतीय विषयों तक स्थापित हो गई। प्रांतों से द्वैध शासन प्रणाली का अतं कर दिया गया, किंतु व्यवहार में गवर्नर की शक्ति अब भी बनी रही। गवर्नर की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया गया-

1. स्वेच्छा से काम में आने वाली शक्तियां
2. व्यक्तिगत शक्तियां
3. विधायिका के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह से काम में आने वाली शक्तियां

इस अधिनियम का सबसे विवादास्पद पहलू धारा 93 थी जिसके अनुसार गवर्नर विशेष परिस्थितियों में प्रांतीय प्रशासन को अपने नियंत्रण में ले सकता था। इसी शक्तियों का प्रयोग कर 1939 में विभिन्न प्रांतों में गवर्नर ने शासन कार्य अपने हाथ में ले लिया। भारतीय स्वतंत्रता तक इसी अधिनियम के अनुसार भारतीय प्रशासन का संचालन किया जाता रहा। स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासन स्वतंत्र भारत के संविधान द्वारा प्रारंभ हुआ।

केन्द्रीय सचिवालय का विकास

स्वतंत्र भारत में केन्द्रीय सचिवालय औपचारिक रूप से 30 जनवरी, 1948 को स्थापित हुआ, लेकिन मूल रूप से केन्द्रीय सचिवालय अन्य प्रशासनिक संस्थाओं की भांति ब्रिटिश शासनकाल की देन है। ब्रिटिश काल में इसे "इंपीरियल सेक्रेटेरिएट" कहा जाता था। ब्रिटिश साम्राज्य के समय भारत में प्रशासनिक एकता स्थापित करने में केन्द्रीय सचिवालय की विशेष भूमिका थी। समय के परिवर्तन के साथ जैसे जैसे सरकार का कार्यभार बढ़ता गया, विभागों की संख्या भी बढ़ती गई। 1919 से 1947 तक का काल केन्द्रीय सचिवालय मेंविभिन्नसुधारों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा। सन् 1919 की लिविलियन स्मिथ कमेटी के सुझाव पर -

1. विभागीय विषयों को पुनर्गठित किया गया।
2. लिखित आलेखों की प्रथा प्रारंभ की गई।
3. केन्द्रीकृत भर्ती की व्यवस्था आरंभ हुई
4. सचिवालय में प्रतिनियुक्ति व्यवस्था को सुदृढ़ किया गया।

1919 में पुनर्गठित सचिवालय में कुल 11 विभाग थे।

सन् 1936-37 में नियुक्त होने वाली व्हीलर समिति और मैक्सवेल समिति (संगठन तथा प्रक्रिया समिति) ने केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्य पद्धति में सुधार हेतु और भी सुझाव प्रस्तुत किए। आजादी के उपरांत गठित सरकार को कुछ ऐसी विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनके परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार अत्यधिक हो गया। ये समस्याएं निम्नांकित थी -

1. देश का विभाजन होने के कारण पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को भारत में बसाना
2. जम्मू-कश्मीर में बाह्य आक्रमण की समस्या
3. रियासतों का भारतीय संघ में एकीकरण
4. आंतरिक सुरक्षा की समस्या
5. आवश्यक वस्तुओं के अभाव की समस्या
6. प्रशासनिक अधिकारियों की संख्या में भारी मात्रा में कमी

कल्याणकारी राज्य की स्थापना से प्रेरित होने के कारण भी सरकार के कार्यभार में अत्यधिक मात्रा में बढ़ोत्तरी हुई, परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार बढ़ा 15 अगस्त, 1947 को जब सत्ता का हस्तांतरण हुआ तो केन्द्रीय सचिवालय में 19 विभाग थे जिनका फिर से पुनर्गठन एवं सुधार करने के लिए स्वतंत्र भारत की सरकार ने सर गिरिजा शंकर बाजपेयी की अध्यक्षता में सचिवालय पुनर्गठन समिति की स्थापना की। कालांतर में विभागों की संख्या बढ़ी जैसे 1978 में 69 विभाग और 2001 में 81 विभाग।

वित्तीय प्रशासन का विकास

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासक स्थापित होने के बाद प्रांतों को वित्त के संबंध में बहुत अधिक सीमा तक स्वतंत्रता दी गई, किन्तु 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा वित्त का केन्द्रीकरण कर दिया गया। अधिनियम के द्वारा यह निश्चित किया गया कि किसी प्रांतीय सरकार को नए पद तथा नए वेतन भत्ते की स्वीकृति का अधिकार नहीं होगा, जब तक कि गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति न मिल जाए।

1833-1870 तक प्रांतीय सरकारें केन्द्र सरकार के अभिकर्त्ता के रूप में ही कार्य करती रहीं उन्हें कर लगाने अथवा उसे खर्च करने का कोई अधिकार नहीं था। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में लार्ड मेयो की सरकार द्वारा एक निश्चित योजना को अपनाया गया।

1. जिसके अंतर्गत जेलें, रजिस्ट्रेशन, पुलिस, शिक्षा, सड़कें, चिकित्सा सेवाए, छपाई आदि के व्यय की मदों तथा उनसे प्राप्त होने वाले राजस्व को प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दिया गया।

2. प्रांतों को कुछ निश्चित वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था की गई।
1877 में स्ट्रेची द्वारा प्रस्तावित नवीन योजना के अंतर्गत भूमि कर, स्थानीय चुंगी, स्टाम्प, स्टेशनरी, कानून व न्याय और सामान्य प्रशासन की कुछ व्यय मदें प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दी गई। वित्तीय विकेद्रीकरण की दिशा में 1882 में प्रस्तावित नई योजना के अनुसार राजस्व के समस्त साधनों को तीन भागों में विभक्त किया गया। केन्द्रीय, प्रांतीय व विभाजित
केन्द्रीय मदों से प्राप्त होने वाले राजस्व को केन्द्रीय नियंत्रण में तथा प्रांतीय राजस्व को प्रांतीय नियंत्रण में रखा गया। विभाजित मदों से प्राप्त होने वाली आय को केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के बीच बराबर बराबर बाटने का निश्चय किया गया। विकेन्द्रीकरण के संबधं में 1907 में चार्ल्स होब हाऊस की अध्यक्षता में एक शाही आयोग नियुक्त किया गया। आयोग ने सिफारिश की, कि गवर्नर जनरल को प्रांतीय राजस्व में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।1919 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय बजट केन्द्र सरकार से बिल्कुल पृथक कर दिए गए और प्रांतिय सरकारों को अपने बजट के निर्माण का पूर्ण अधिकार दिया गया। प्रांतों को पहली बार प्रांतीय या स्थानीय प्रकृति के कर लगाने का अधिकार मिला। 1935 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय स्वायत्तता की व्यवस्था की गई और संघीय सरकार तथा प्रांतों के बीच तीन सूचियों के आधार पर न केवल कार्यो का वर्गीकरण किया गया, बल्कि वित्तीय साधनों का भी विभाजन किया गया। संघ सरकार तथा राज्यों के पृथक पृथक आय साधन रखे गए। कुछ सीमा में प्रांतों को उधार लेने का अधिकार भी दिया गया। प्रांतों को अपना घाटा पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार की ओर से निमेयर रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय सहायता प्रदान की गई। निमेंयर रिपोर्ट की इस बात को स्वीकार कर लिया गया, कि आयकर की भी आधी धनराशि प्रांतों में बांट दी जाए।

पुलिस प्रशासन का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के उपरांत भारत में कानून-व्यवस्था की स्थिति बिगड़ती गई। पुलिस शक्ति क्षेत्रीय जमींदारों के हाथ आ गई। जब क्लाइव ने बंगाल की दीवानी प्राप्त की तो उसने प्रचलित प्रशासनिक व्यवस्था को बनाएं रखा। वारेन हेस्टिंग्स ने भी पुलिस व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। सर्वप्रथम कार्नवालिस ने एक संगठित पुलिस व्यवस्था की शुरुआत की। उसने थाना व्यवस्था का आधुनिकरण किया तथा प्रत्येक क्षेत्र में एक पुलिस थाने की स्थापना कर उसे एक दरोगा के अधीन रखा। जिला स्तर पर जिला पुलिस अधीक्षक के पद का सृजन किया गया। ग्राम स्तर पर चौकीदारों को पुलिस शक्ति दी गई। इस तरह आधुनिक पुलिस व्यवस्था की शुरुआत हुई।

सक्षम पुलिस व्यवस्था ने बहुत सारे उद्देश्य पूरे किए। मध्य भारत में ठगों का दमन, क्रांतिकारी षड्यंत्रों का पर्दाफाश तथा राष्ट्रीय आंदोलन को इसी पुलिस व्यवस्था के द्वारा कुचला गया। इसने भारतीय जनता के साथ क्रूर व्यवहार भी किया। 1813 ईस्वी में संसद की एक समिति ने रिपोर्ट दी कि पुलिस ने भारतीय जनता को डाकुओं की तरह प्रताड़ित किया है। वस्तुतः महत्वपूर्ण पदों पर भारतीयों की नियुक्ति के मामले में ब्रिटिश कंपनी सतर्क रही। कार्नवालिस ने तो स्पष्ट रूप से भारतीयों को भ्रष्ट मान लिया एवं उन्हें उत्तरदायी पदों से दूर रखा। कुछ छोटे-छोटे पदो पर भारतीयों की नियुक्ति अवश्य की गई, जैसे- अमीन एवं दरोगा। 1793 ईसवी के बाद आधिकारिक नीति भारतीयों को महत्वर्पूएा पदों से वंचित करने की रही।

न्याय व्यवस्था का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद मुगलकालीन न्याय व्यवस्था टूट गई। मुगलकाल के उत्तरार्द्ध में भूमि सुपुर्दगी प्रथा से समृद्ध भू-स्वामियों के हाथों में आ गई। न्यायिक शक्तियां भी भू-स्वामियों के हाथों में आ गई। बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के बाद क्लाइव ने प्रचलित व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। न्याय व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से वारेन हेंस्टिंग्स का काल महत्वपूर्ण है। भारत में ब्रिटिश न्याय प्रणाली की स्थापना इसी काल में हुई ब्रिटिश न्याय प्रशासन भारतीय और ब्रिटिश प्रणालियों तथा संस्थाओं का सम्मिश्रण था। कानून के शासन तथा न्याय पालिका की स्वतंत्रता इस प्रणाली की विशेषता थी। वारेन हेसिटंग्स ने सिविल तथा फौजदारी मामलों के लिए अलग-अलग अदालतें स्थापित की। उसने न्यायिक सुधार में मुगल व्यवस्था को ही आधार बनाया।

सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्स ने सिविल अदालतों की श्रृंखला स्थापित की। सबसे नीचे मुखिया, फिर जिले में जिला दीवानी अदालत तथा सबसे ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी। इसी तरह फौजदारी अदालतों का पुनर्गठन किया गया। प्रत्येक जिले में एक फौजदारी अदालत स्थापित की गई, जो काजी, मुफ्ती एवं मौलवी के अधीन होती थी। इसके ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी।

कार्नवालिस के द्वारा उपरोक्त व्यवस्था में सुधार किए गए। उसके सुधारों में यूरोपीय तत्व प्रबल थे। कार्नवालिस ने शक्ति पृथक्करण सिद्धांत के अंतर्गत लगान प्रबंध से दीवानी प्रशासन को पृथक कर दिया। 1793 में कार्नवालिस संहिता द्वारा कलेक्टर से न्यायिक एवं फौजदारी शक्तियां लेली गई। जिला अदालतों के लिए श्रेणी निर्धारित की गई तथा दीवानी अदालतों का पुनर्गठन हुआ। फौजदारी अदालतों की भी नई श्रृंखला बनाई गई। इसके अतिरिक्त विचारधारा से प्रेरित होने के कारण दंड-संहिता में परिवर्तन किया। विलियम बैंटिक के शासनकाल में उपयोगितावादी विचार धारा से प्रेरित होने के कारण दंड विधान की कठोरता को कम करने का प्रयत्न किया गया। कुछ महत्वपूर्ण न्यायिक पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया गया। 1859 से 1861 के बीच दंड विधि, सिविल कार्य विधि

तथा दंड प्रक्रिया पारित की गई ।इन सुधारों में संपूर्ण भारत के लिए एक ही विधि प्रणाली लागू की गई। 1861 मे भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम पारित हुआ तथा कलकत्ता एवं मद्रास में उच्च न्यायालय की स्थापना की गई। आगे लाहौर, पटना आदि स्थानों पर भी उच्च न्यायालय स्थापित हुए।

1935 के भारत शासन अधिनियम के आधार पर एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई । इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश तथा सरकार द्वारा नियुक्त अन्य न्यायाधीश होते थे। न्यायालय के क्षेत्र में प्रारंभिक एवं अपीलीय तथा परामर्श संबंधी विषय थे। प्रांतीय न्यायालयों को दीवानी, आपराधिक, वसीयती, गैर वसीयती और वैवाहिक क्षेत्राधिकार मौलिक एवं अपीलीय दोनों प्रकार के प्राप्त थे ।

अभ्यास प्रश्न -

1. रेग्यूलेटिंग एक्ट कब पारित हुआ।
2.पिट्स इंडिया एक्ट कब पारित हुआ।
3.सन् में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ ....,।
4.1919 के अधिनियम को किस नाम जाना जाता है।
5.केन्द्रीय स्तर पर द्विसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना किस अधिनियम से हुई।
6.अशोक ने किस शिलालेख में घोषणा की "कि सारी प्रजा मेरी संतान है"।
7.अर्थशास्त्र के लेखक कौन है ?
8.मेगस्थनीज की पुस्तक का क्या नाम है ?

1.5 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरु करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। इस अध्ययन में आप ने यह देखा कि मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था जिसमें शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद होगया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गए। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां भी थी। राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का संपादन ही राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था। प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता है था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा

अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह संपूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है। इसके बाद भारत में ईस्ट इंडिया कंम्पनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पडा ।

1.6 शब्दावली

राजतंत्र- राजतंत्र वह शासन है जिसमें शासन का प्रधान राजा होता है। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां निहित हों ।

सद्र-उस-सूद्र- यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकदमें भी देखता था।

मुख्य काजी - मुगल काल में यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।

जागीरदारी प्रथा - मुगल काल में राजपूत जमींदारों के माध्यम से भू- राजस्व संग्रह करने की प्रथा, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था किन्तु उस समय के कुलीन वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

इक्तादारी और जागीरदारी प्रथा - दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इकतादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.1773 2. 1784 3. 1600 4. मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड 5. मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड 6.धौली शिलालेख 7. कौटिल्य 8. इंडिका

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

भारतीय लोक प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - डी.डी. बसु

भारतीय लोक प्रशासन - एस.सी. सिंहल

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.ब्रिटिश काल में भारतीय प्रशासन के विकास पर निबंध लिखिए।

2.मुगल प्रशासन ,केन्द्रीय प्रशासन था । स्पष्ट कीजिए।

3.मौर्य प्रशासन में राजा पर कर्त्तवय का अंकुश था । व्याख्या कीजिए।

इकाई - 2 भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के उत्तरदाई कारण
2.4 भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ
  2.4.1 गतिशील प्रशासन
  2.4.2 विकास प्रशासन
  2.4.3 उत्तरदायी प्रशासन
  2.4.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही
  2.4.5 प्रशासन की तटस्थता
  2.4.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ
  2.4.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ
  2.4.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक – आर्थिक न्याय
  2.4.9 समन्वित प्रशासन
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इसके पहले इकाई 1 के अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरु करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पडा ।

इस इकाई 2 में हम भारतीय प्रशासन की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे, जिसमे हम स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों का अध्ययन करते हुए संसदीय लोकतंत्र, संघात्मक शासन, स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन करेंगे। साथ ही यह भी देखेंगे कि किस प्रकार भारतीय संविधान ,समाजवादी और पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। अंततःहम यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार भारतीय प्रशासन ,गतिशील प्रशासन है , विकास प्रशासन है , उत्तरदायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल – पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों को जान सकेंगे।
2. भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
4. संघात्मक शासन और उसकी स्थापना के कारणों को जान सकेंगे।

2.3 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के उत्तरदाई कारण

जैसाकि हम जानते है कि 15 अगस्त 1947 को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। देश को आजादी मिलाने के साथ ही उन सपनों को साकार करने के लिए भी प्रयास शुरू किये जाने लगे ,जिनको लक्ष्य मानकर आजादी के दीवानों ने संघर्ष किया था। लेकिन उन सपनो को साकार करने के लिए यह आवश्यक था कि ,उसके अनुरूप प्रशासनिक तंत्र का निर्माण किया जाए साथ ही साथ इस नवनिर्मित प्रशासनिक तंत्र के लक्ष्य भी स्पष्ट किये जाए। स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई कारण उत्तरदाई थे जो निम्नलिखित हैं –

1. संसदीय लोकतंत्र की स्थापना:-

स्वंतंत्रता के पश्चात देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई। आजादी के पूर्व कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी, वह केवल ब्रिटिश आकाओं के प्रति ही उत्तरदायी थी। परन्तु संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के साथ ही कार्यपालिका को विधायिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। कार्यपालिका का अर्थ मंत्रिमंडल से है ,जबकि विधायिका का तात्पर्य कानून निर्माण करने वाली संस्था संसद से है। कार्यपालिका का गठन संसद के सदस्यों में से किया जाता है और कार्यपालिका के गठन का अवसर उस दल को मिलता है जिसे संसद के निम्न सदन में बहुमत प्राप्त होता है। संसद के निम्न सदन में जनप्रतिनिधि होते हैं जो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते है। इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि कार्यपालिका अपने अस्तित्व के लिए जनप्रतिनिधियों के बहुमत के साथ समर्थन पर निर्भर करती है, और ये जनप्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार अब प्रशासन, ब्रिटिश शासन के विपरीत, जनता के प्रति उत्तरदायी है।

2. संघात्मक शासन की स्थापना:-

ब्रिटिश शासन के समय हमारे देश में एकात्मक शासन था जिसमे एक केंद्र से शासन संचालित किया जाता था । जब कि हमारे देश में भौगोलिक ,सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नतायें पाई जाती है ,इन भिन्नताओं के साथ इनकी समस्याएँ भी भिन्न प्रकृति की होती हैं ,इस लिये इनका स्थानीय स्तर पर बेहतर समाधान किया जा सकता है। इस लिए शक्ति विभाजन के सिद्धांत के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गई। जो, सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं को बनाए रखने के साथ ही उनकी समस्याओं के स्थानीय स्तर पर समाधान संभव हो सका।

3. प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन)

जैसा कि यह सर्वविदित है कि भारतीय संविधान में उन लक्ष्यों और उद्देश्यों का स्पष्ट प्रावधान किया गया है, जिनकी सिद्धि के लिए प्रशासन को कार्य करना है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वतंत्रता के पहले हमारे देश का प्रशासन नियामकीय प्रकृति का था ,दूसरे शब्दों में प्रशासन के कार्य

मुख्यतः नियामकीय थे अर्थात प्रशासन का मुख्य कार्य क़ानून और व्यवस्था बनाये रखना था। जिससे अंग्रेज शासन को अपने लक्ष्यों की सिद्धि में अनवरत सहूलियत बनी रहे।

परन्तु स्वतंत्रता के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने, स्पष्ट रूप से उन लक्ष्यों का प्रावधान किया जिनको ध्यान में रखकर प्रशासन को संचालित किया जाना था। पहले प्रशासन जनता पर अपना दबाव बनाकर कार्य करता था ,जनता के कोई मौलिक अधिकार नहीं थे ,जनता का यह दायित्व था की प्रशासन के निर्देशों का पालन करता रहे। किन्तु आजादी के बाद अब प्रशासन जनता के लिए काम करता है क्यों कि जिसकी हम आप को ऊपर बता चुके हैं कि हमारे देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी। जिसमें सरकार जनता द्वारा निर्वाचित होती है और जनता के लिए काम करती है ,इस लिए अब प्रशासन जनता के दबाव में काम करता है। संविधान के द्वारा मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया। ये वे अधिकार हैं जो राज्य और व्यक्तियों के विरूद्ध प्रदान किये गए हैं। अर्थात इन अधिकारों के उल्लंघन होने पर चाहे वे व्यक्ति के द्वारा हों या राज्य के द्वारा हों, व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद 32 के अनुसार सर्वोच्च न्यायलय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायलय में जा सकता है।

इसी के साथ – साथ संविधान के भाग 4 में नीतिनिदेशक तत्वों का उपबंध भी करके राज्य को कुछ कल्याणकारी दायित्व भी सौपे गए ,जिनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन की है।

4. समाजवादी और पंथनिरपेक्ष राज्य

हमारे मूल संविधान में समाजवादी और पंथनिरपेक्ष शब्द का समावेश नहीं किया गया था। 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा इनका समावेश संविधान में किया गया। इन शब्दों के समावेश से प्रशासन के लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। इसको और अधिक स्पष्ट करनें के ले इनके अर्थ को भी स्पष्ट करना आवश्यक है। समाजवाद का तात्पर्य है कि राज्य लोंगों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने प्रयास करेगा। पंथनिरपेक्ष का अर्थ –राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा ,इसका तात्पर्य यह भी है कि राज्य सभी धर्मों के साथ समान वर्ताव करेगा ,किसी के साथ किसी भी प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। यद्यपि इन शब्दोंके संविधान में समावेश के पूर्व भी ऐसे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रावधान थे। इन उपबंधों से प्रशासन की जिम्मेदारी में आमूलचूल परिवर्तन आया है।

2.4 भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

इस प्रकार से स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन के कारण भारतीय प्रशासन में निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं ,जो इस प्रकार हैं:-

2.4.1 गतिशील प्रशासन

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि आजादी के बाद प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिल रहा है। आज प्रशासन जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन गया है। समय के बदलाव के साथ नित्य नई आवश्यकताएं और समस्याएं पैदा होती रहती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ती और समस्याओं के समाधान हेतु प्रशासन को निरंतर तत्पर रहना होता है। और बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अपने ढालते रहना है। क्योंकि अब प्रशासन जनता के स्वामी के रूप में नहीं वरन सेवक के रूप में कार्य कर रहा है।

2.4.2 विकास प्रशासन

विकास प्रशासन एक परिवर्तनशील अवधारणा है। जो निरंतर सामाजिक,राजनीतिक ,आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को लाने के लिए प्रयत्नशील है ,साथ ही इन परिवर्तनों को सकारात्मक दिशा देने का भी कार्य कर रहा है। इसका सम्बन्ध योजना के निर्माण ,इसके निर्माण हेतु आवश्यक पूर्वआवश्यकताओं की पूर्ति से भी सम्बन्ध रखता है। विकास प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के कार्यान्वयन से है। इसलिए सरकार के जनकल्याणकारी और सशक्तिकरण संबंधी नीतियों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी भी इसी पर होती है।

2.4.3 उत्तरदायी प्रशासन

संसदीय शासन की एक प्रमुख विशेषता ,उत्तरदायी शासन की स्थापना। चूँकि हमारे देश में संसदीय शासन में निम्न सदन(लोक सभा) के सदस्यों का चुनाव जनता के द्वारा ,प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है।मंत्रिपरिषद का गठन संसद के सदस्यों में से ही किया जाता है।मंत्रिपरिषद के सदस्य सम्बंधित विभाग के अध्यक्ष(राजनीतिक प्रमुख) होते है। इस लिए अपने विभाग के कार्यों के लिए ,वे जनता के प्रति उत्तरदायी होती हैं।

2.4.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही

हमारे देश में नौकरशाही का एक विस्तृत ढांचा विद्यमान है ,जो नीति निर्माण में सहयोगी भूमिका से लेकर ,नीति के क्रियान्वयन तक के कार्यों में सक्रिय रहती है। परन्तु यह नौकरशाही अपने दायित्वों के निर्वहन में नियम - कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देती दिखायी देती है, जिससे ये नियम-

कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देना ही साध्य के रूप में दिखायी देने लगता है, जिससे लालफीताशाही का दोष प्रशासन में उभरकर सामने आता है।

2.4.5 प्रशासन की तटस्थता

भारतीय प्रशासन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता इसकी राजनीतिक तटस्थता। अर्थात लोकसेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक अभिव्यक्तियों अर्थात राजनीतिक विचारों और व्यवहारों से सर्वथा दूर रखता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रशासनिक अधिकारी विना किसी दलीय निष्ठा के ,पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। सरकार चाहे किसी भी दल की हो , उसका सम्बन्ध केवल नीतियों के निष्पक्ष क्रियान्वयन से होता है ,न कि दलीय भावना से। इस तरह के राजनीतिक तटस्थता के लिए लोक सेवकों हेतु भारतीय संविधान में उपबंध किये गए हैं

2.4.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ

आजादी के बाद सामान्य रूप से प्रशासन में सामान्यज्ञो की नियुक्ति होती थी किन्तु उसके बाद के समय में विभिन्न प्रकार की जरूरतों को पूरा करने के लिए विशेषज्ञों की भी नियुक्ति की जाने लगी। जैसे डॉक्टर, इंजीनीयर, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक , कृषि वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता आदि।

2.4.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ

स्वतन्त्रता के पूर्व प्रशासन की प्रकृति नियामकीय थी ,जिसका प्रमुख लक्ष्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना था। परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई ,जिसमे सरकार जनता की भलाई के लिए कार्य करती है ,न कि अपने लाभ के लिए जैसा कि अंग्रेज शासन काल में हुआ करता था। स्वतन्त्रता के पश्चात संविधान निर्माताओं ने, मूलभूत सामजिक आर्थिक लक्ष्यों की घोषणा की है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन प्रक्रिया प्रारम्भ की गई। इस कारण से प्रशासन की शक्तियों में अभूतपूर्व बृद्धि कर दी है। नित्य नवीन कल्याणकारी योजनाएं लागू की जा रही है ,इनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन पर ही होती है। इसके साथ ही साथ अब तो सशक्तिकरण से सम्बंधित नीतियां भी लागू की जा रही हैं जिससे समाज में अब तक हासिए पर रहे समुदायों को भी ,समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके। यदि इन सब बातों को हम संक्षेप में कहें तो यह है कि व्यक्ति के जन्म से पूर्व माँ के स्वास्थ्य ,जन्मोपरान्त – जन्म प्रमाणपत्र ,बच्चे के स्वास्थ्य ,पोषण ,नाना प्रकार के टीके ,जनगणना ,उसकी शिक्षा ,रोजगार ,विवाह पंजीकरण ,बृद्धावस्था में उनके हित में विभिन्न प्रकार के सामाजिक सुरक्षा संबंधी कार्यक्रम, और अंततः मृत्यु पंजीकरण और इसी प्रकार से अन्य जो भी लोकहित में आवश्यक कार्य हों प्रशासन के द्वारा ही किये जाते हैं। लोकतंत्र में प्रशासन की बढती जिम्मेदारियों ने उसकी शक्तियों में भी अभूतपूर्व बृद्धि कर दी है।

2.4.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक – आर्थिक न्याय

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसका उद्देश्य देशवासियों को उन सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से सुसज्जित करना जिनसे अभी तक वे वंचित रहे है। क्यों कि परम्परागत भारतीय समाज में कुछ सामाजिक और आर्थिक निर्योग्यताएं प्रचलित थी। जैसे अशपृश्यता (छुआ-छूत), व्यवसाय की निर्योग्यताएं आदि। हमारे संविधान में एक तरफ तो इन निर्योग्यताओं को समाप्त किया गया तो दूसरी तरफ ,संविधान के द्वारा देशवासियों को विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किये गए जिससे वे सम्मान पूर्वक अपना जीवन यापन कर सकें। इस प्रकार के व्यापक उपबंध हमारे संविधान भाग 3 में मूलाधिकार और भाग 4 के नीति निदेशक तत्वों में किये गए हैं।

2.4.9 समन्वित प्रशासन

हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताएं है। इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया। जिसकी मुख्य विशेषता – लिखित ,निर्मित और कठोर संविधान , संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच शक्तियों का विभाजन , संविधान की व्याख्या ,नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा और संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का निराकरण करने के लिए स्वतन्त्र ,निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना। इसके साथ ही साथ मजबूत केंद्र की स्थापना के लिए एकात्मक शासन के मुख्य प्रावधानों को भी सम्मिलित किया गया। ऐसा इस लिए किया गया क्योंकि देश ,स्वतंत्रता के समय दुखद विभाजन को देख चुका था। इसी बात को ध्यान में रखते हुए संघ और राज्य के लिए सम्मिलित सेवाओं का प्रावधान किया गया ,जिसे अखिल भारतीय सेवा कहते हैं। जिसमे तीन अखिल भारतीय सेवा हैं-

1. भारतीय प्रशासनिक सेवा 2. भारतीय पुलिस सेवा 3. भारतीय वन सेवा।

इन सेवाओं का उद्देश्य केंद्र और राज्य के बीच सहयोग को निरंतर प्रोत्साहित करना ,जिससे राष्ट्र निर्माण का कार्य सफलता पूर्वक किया जा सके और कल्याणकारी और सशक्तिकारक नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू किया जा सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि केंद्र सरकार के पास अपना कोई अलग प्रशासनिक तंत्र नहीं है अपितु केंद्र की नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू करने में राज्य के प्रशासनिक तंत्र से सहयोग लिया जाता है।

भारतीय प्रशासन की उपर्युक्त विशेषताओं के साथ ही साथ इसके कुछ अन्य पक्षों का भी अध्ययन करना आवश्यक होगा जो कि ,इनमें प्रायः दिखाई देता है:-

1. पिछले कुछ वर्षों में यह तथ्य उभरकर सामने आया है की प्रशासनिक अधिकारीयों के अपने दायित्वों के निर्वहन में ,राजनीतिक हस्तक्षेप दिखाई दे रहा है ,परिणामस्वरूप प्रशासकों में निराशा की भावना प्रबल होती दिखाई देती है। राजनीति में अपराधीकरण बहुत ही चिंता का विषय है ,यदि इसके निराकरण हेतु कोई संस्थागत उपाय और उन उपायों का समुचित क्रियान्वयन का प्रबंध करना उपयोगी होगा।

2. कल्याणकारी योजनाओं ,विकास कार्यों और सशक्तिकारक नीतियों के क्रियान्वयन में जनता की सक्रीय भागीदारी नहीं हो पाती है जिसके फलस्वरूप नीतियों और कार्यक्रमों की सफलता संदिग्ध हो जाती है। इसका प्रमुख कारण प्रशासन के द्वारा जनता को साथ लेकर न चलने की प्रवृत्ति है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है प्रशासन को जनता के प्रति संवेदनशील बनाया जाये ,और प्रशासकों को भी नियत अंतराल पर नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किये जाते रहें। साथ ही जिस क्षेत्र और जिस समुदाय विशेष के लिए नीति का निर्माण किया जाना है ,उसकी भी नीति निर्माण में भागीदारी सुनिश्चित करने के उपाय किये जाने चाहिए।

3. देश को आजाद हुए छ : दशक से अधिक हो चुके हैं ,परन्तु आज भी समाज का ढांचा सामंतवादी ही दिखाई देता है ,फलस्वरूप बहुत से कार्यक्रमों का लाभ आम आदमी तक नहीं पहुँच पाता है। जिसकी चर्चा हमारे एक पूर्व प्रधानमंत्री कर चुके हैं ,जिसमें उन्होंने यहाँ तक कहा कि गाँव के लिए भेजे गए एक रुपये में ,मात्र 15 पैसे ही उन् तक पहुँच पाता है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है कि इस तरह की सुविधाएं देश के आम आदमी तक पहुंचे ,इसके लिए सामाजिक अंकेक्षण जैसे उपायों के साथ ,इस प्रकार के अन्य उपायों को भी अपनाने पर जोर दिया जाना चाहिए।

4. वोहरा समिति (1995) ने अपने प्रतिवेदन में राजनीतिज्ञों ,प्रशासकों और माफियाओं के बीच संबंधों को उजागर करके यह स्पष्ट कर दिया कि अधिकतर योजनाएं आम आदमी के नाम से संचालित तो हो रही है परन्तु उनका वास्तविक लाभ लक्षित व्यक्ति और समूह तक नहीं पहुच पा रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1. 15 अगस्त 1947 को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सत्य / असत्य
2. संसद के निम्न सदन के जनप्रतिनिधि ,जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते है । सत्य / असत्य
3. शक्ति विभाजन के सिद्धांत के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गई है ।
4. मूल अधिकारों के उल्लंघन होने पर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद 32 के

अनुसार सर्वोच्च न्यायलय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायलय में जा सकता है। सत्य / असत्य

5. संविधान के भाग 4 में नीतिनिदेशक तत्वों का उपबंध किया गया है। सत्य / असत्य
6. पंथनिरपेक्ष शब्द का समावेश नहीं किया गया था। सत्य / असत्य
7. 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा समाजवादी ,पंथनिरपेक्ष और अखंडता का समावेश संविधान किया गया। सत्य / असत्य
8. संविधान भाग ३ में मूलाधिकारों का प्रावधान किया गया है। सत्य / असत्य

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमने स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों का अध्ययन किया जिसमे संसदीय लोकतंत्र , संघात्मक शासन ,स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन किया है साथ ही यह भी अध्ययन किया कि किस प्रकार भारतीय संविधान ,समाजवादी और पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। और अंततःहमने यह अध्ययन किया कि, किस प्रकार भारतीय प्रशासन ,गतिशील प्रशासन है , विकास प्रशासन है , उत्तरदायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल – पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है। साथ ही यह भी देखा कि किस प्रकार से प्रशासन में लालफीताशाही के दुर्गुण उभरे हैं ,जिसमे सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को इतना महत्व देते दिखाई देते हैं कि ,लक्ष्य गौण हो जाते है।
परन्तु बावजूद इसके स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन ने सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना के मार्ग पर चलने का अच्छा प्रयास किया है किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालकर जन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

2.6 शब्दावली

संसद – भारत में कानून निर्माण की सर्वोच्च संस्था है ,जो राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है

संघात्मक शासन – स्थानीय स्वायत्तता के साथ राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा को ध्यान में रखकर स्थापित की जाने वाली शासन व्यवस्था है ,जिसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है 1. शासन के तीनों अंगों में शक्ति विभाजन 2.लिखित निर्मित और कठोर संविधान 3.स्वतन्त्र ,निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय।

समाजवादी - भारत के सन्दर्भ में इसका अर्थ यह है कि –राज्य लोंगो के बीच आर्थिक असमानताओं को न्यूनतमकरने का प्रयास करेगा।

पंथनिरपेक्ष - इसका अर्थ है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा ,और वह सभी धर्मो कोसमानरूप से संरक्षण प्रदान करेगा

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सत्य 2 सत्य.3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य 8. सत्य

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन - एस.सी. सिंहल

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन के विशेषताओं की विवेचना कीजिये

2. स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिये

इकाई - 3 भारतीय प्रशासन: सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक व संवैधानिक पर्यावरण

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारतीय प्रशासन का पर्यावरण

3.3.1 भारतीय प्रशासन: सांस्कृतिक पर्यावरण

3.3.2 भारतीय प्रशासन :सामाजिक पर्यावरण

3.3.3 भारतीय प्रशासन: राजनीति पर्यावरण

3.3.4 भारतीय प्रशासन: आर्थिक पर्यावरण

3.3.5 भारतीय प्रशासन: संवैधानिक पर्यावरण

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पर्यावरण दो शब्द परि और आवरण से मिलकर बना है। जिसका शब्दिक अर्थ हैं चारो ओर घिरा हुआ। सामाजिक विज्ञान में पर्यावरण का स्वरूप प्राकृतिक विज्ञान के जैविकिय एवं अजैविकिय संघटनों से भिन्न है। यद्यपि लोकप्रशासन में पर्यावरण या परिवेश अथवा परिस्थिति के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। परन्तु तात्विक रूप से दोनों में भिन्नता है।

डा0 एम0 पी0 शर्मा के अनुसार किसी भी सामाजिक व्यवस्था में पर्यावरण का अर्थ होता है संस्थान, इतिहास, विधि, आचार शास्त्र, दर्शन, धर्म, शिक्षा, परम्परा, विश्वास, मूल्य, प्रतीक, पौराणिक गाथांए आदि जिसमें भौतिक एवं अभौतिक नाचने गाने तथा अन्य प्रकार के मनोरंजन और कलाएं सम्मिलित है।

जबकि जीव विज्ञान में पर्यावरण से तात्पर्य सृष्टि के छोटे बड़े सभी जीवधरियों और प्रकृति के समस्त अजैविक तत्वों का समाहार है। जो जीवित प्राणीयों के अस्तित्व जीवन ओर पुनरूत्पादन को प्रभावित करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप यह जान सकेंगे कि

1.भारतीय प्रशासन में पर्यावरण का क्या तात्पर्य है ।

2.किस प्रकार से भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, पर्यावरण से प्रभावित होता है ।

3.किस प्रकार से भारतीय प्रशासन सामाजिक, पर्यावरण से प्रभावित होता है ।

4.किस प्रकार से भारतीय प्रशासन राजनीतिक एवं संवैधानिक पर्यावरण से प्रभावित होता है ।

5.किस प्रकार से भारतीय प्रशासन आर्थिक पर्यावरण से प्रभावित होता है ।

3.3 भारतीय प्रशासन का पर्यावरण

सन् 1961 में एफ. डब्ल्यू . रिंग्स की पुस्तक 'द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक ने इस क्षेत्र में तहलका मचा दिया। इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण के बीच परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग सं समझने का प्रयास किया गया था। रिंक्स के अतिरिक्त जॉन एम. ग्रास, संवर टफल, रास्कों पार्टिन आदि विद्वानों ने लोक प्रशासन में पर्यावरण के अध्ययन को व्यापक विस्तृत बनाया है। आज जब राज्य का स्वरूप प्रशासनिक हो गया है। किसी भी संस्थान या संगठन के विस्तृत विवेचन हेतु पर्यावरण का अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो गया है। यह निर्विवाद सत्य है कि लोक प्रशासन कई तत्वों से प्रभावित होता है जैसे सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश। लोक प्रशासन समाज विज्ञान के अन्तर्गत है। इसे समझने के लिए देश में चारों ओर होने वाली घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है। अब लोक प्रशासन के विषय के अन्तर्गत यहां भारतीय प्रशासन के संदर्भ पर्यावरण की चर्चा करेंगें।

3.3.1 **भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, पर्यावरण**

संस्कृति शब्द मूल रूप से संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृति अंग्रजी भाषा के कल्चर शब्द का रूपान्तरण है। कल्चर शब्द लैटिन भाषा के कलचुरा तथा कोलियर शब्द से बना है जिसका अर्थ है उत्पादन और परिष्कार। अतः संस्कृति के अंतर्गत समुदाय के रहन सहन, खानपान, जीवन शैली, बौद्धिक उपलब्धियों एवं जीवन दर्शन आते है। जी. ई. ग्लैडन ने अपनी पुस्तक 'डायनामिक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' में लोक प्रशासन और संस्कृति पर्यावरण के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि यदि प्रशासनिक संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती तो सामाजिक असंतोष हिंसा से सामाजिक ढांचा अंततः ध्वस्त हो जायेगा। सामाजिक संस्कृति की अनुकूलन क्षमता ही प्रशासन में लोक सामंजस्य और व्यवस्था बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाती है।

भारतीय संस्कृति के विषय में एक चिर परिचित और प्रिय उक्ति है। 'भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता का समावेश हैं । भारतीय संस्कृति की धारा का मूल स्रोत वैदिक धर्म है। यही सनातन धर्म के नाम से विख्यात है। यह भी सत्य है कि वैदिक आर्य और उनकी संस्कृति अपनी पूर्ववर्ती सिन्धु संस्कृति से भी प्रभावित रही है। भारतीय संस्कृति की धारा में निरन्तरता प्रवाहता सदैव बनी रही। मध्यकाल में इस्लामिक संस्कृति आगमन व ईसाई संस्कृति इसे अवरूद्ध ना कर सकी। बल्कि इसकी अपनी अमरता ने परिष्कृत ही कियाहै । मध्यकाल के भक्ति आंदोलन और आधुनिक काल के नवजागरण इसके प्रमाण है। भारत अनेक जातियों, धर्मो और भाषाओं का जमघट है। भारत के राजनैतिक इतिहास में अनेक जातियों के प्रवेश किया है। उनकी न केवल भाषाओं बल्कि धर्म, विश्वास, परम्परा भिन्न रही है। 15 अगस्त, 1947 के बाद में भारत अपनी अखण्डता अक्षुण अवश्य

बनाये हुए है, परन्तु एक राष्ट्र- राज्य के रूप में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इसकी सांस्कृतिक भिन्नताएं इसमें अवरोध उत्पन्न करती है। प्रशासनिक संदर्भ में तो भिन्नताएं बहुत अधिक पीड़ादायक सिद्ध हुई।

सहिष्णुता जहां एक नैतिक आदर्श प्रस्तुत करके सामाजिक जीवन को सरल, सुगम दर्शन प्रदान करते है वहीं प्रशासनिक दृष्टिकोण से यही चीजें कठिनाईयां प्रस्तुत करती है। प्रशासन मानव जीवन को सुखमय और संघर्षरहित बनाने के लिए होता है। परन्तु महज सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भिन्नसमुदायों के लिए भिन्न2 कार्यक्रमों का निर्माण करना और उनको क्रियान्वित करना थोड़ा कठिन होता है। यद्यपि प्रशासनिक श्रेष्ठता या हीनता का यह एक मात्र कारण नहीं है। यहद संस्कृति में कुछ और गुण विद्यमान हों तो यह दुर्गुण प्राकृतिक गुण में बदल सकता है। भारतीय प्रशासन के माध्यम से जब सामाजिक बुराईयों को दूर करने एवं प्रगतिशील व उन्नत कार्यक्रम चलाये जाते हैं तो सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण उसका विरोध किया जाता है। जब कभी कोई सामाजिक लक्ष्य प्राप्त करने की चेष्ठा की जाती है तो भारतीय समाज के विभिन्न वर्ग सिर्फ सांस्कृतिक अंर्तविरोधों के कारण उसका विरोध करते हैं। अतः लोकतांत्रिक पृष्ठभूमि के कारण प्रशासन अवसादग्रस्त हो जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात राष्ट्रीय भाषा का निधारर्ण परिवार नियोजन के संबन्ध में कानून, और अनुच्छेद 44 का क्रियान्वयन इसके उदाहरण है।

सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भारतीय समाज में सांस्कृतिक वैमनस्य को जन्म देता है। जिसके करण पुलिस प्रशासन पर अत्यधिक दबाव रहता है। धर्म एवं जातिगत भिन्नता के कारण उनमें आपस में खानपान, वैवाहिक संबन्ध स्थापित नहीं हो पाते। परन्तु जब कभी शिक्षित युवा लड़के लड़कीयां प्रेम संबन्धों या वैवाहिक संबन्धों के कारण एक दूसरे के नजदीक आते है। तो जाति धर्म की भिन्नता उनके आड़े आती है। उत्तर भारत के कुछ राज्यों में- हरियाणा, दिल्ली,राजस्थान , उत्तर प्रदेश, बिहार में ऐसे संबन्धों का अभिभावक कड़ा विरोध करते हैं जिनका परिणाम कभी 2 ऑनर किलिंग जैसे अपराधों में दृष्टिगत होता है।

भाषाई आधार पर प्रदेशों का निर्माण और प्रान्तों के बीच असहयोगपूर्ण बर्ताव सांस्कृतिक भिन्नता की पृष्ठभूमि पर आधारित है। प्रान्तों का बँटवारा भौगोलिक एवं प्रशासनिक सुविधा पर होना अधिक श्रेष्ठ और शलाघनीय है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और प्रशासन के लिए एक दुखद सत्य है कि प्रान्तों के नेता चाहे वे सत्ता में हों या विपक्ष में राष्ट्रीय आदर्शो के प्रेरणा नहीं होते। वे मन के अनुकूल अधिक क्षेत्रीय या प्रान्तीय विभाजन चाहते है।

भारतीय जीवन धर्म तत्व से अनुप्राणित रहा है । धर्म शब्द स्वजातिक है। और इसका अनुवाद मजहब या रिलिजन नहीं हो सकता। यहां धर्म का अर्थ कत्तव्यों का पालन करना है। समग्र सृष्टि को

अच्छी प्रकार से धारण एवं परिपालन करने वाले तत्वों की समष्टि को ही धर्म कहते हैं। अर्थात वे तत्व जिनके रहने से समाज है। और जिनके न होने पर यह समाज नष्ट हो जाता है। धर्म के अन्तर्गत आते हैं। जैसे धैर्य, क्षमा, उदारता, संतोष, ईमानदारी, पवित्रता, ज्ञान, प्रेम, दया, अहिंसा, ममता, परोपकार, सहयोग तथा अपनी भांति दूसरों की चिन्ता करना आदि। श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की समष्टि को ही भारतीय शास्त्रों में धर्म कहा गया है। इन तत्वों को धारण करने वाले व्यक्ति आध्यात्मिक शांति को प्राप्त कर समाज को व्यवस्थित एवं गतिमान बनाने में सहयोगी बनते हैं। चूंकि आज सत्ता धर्म के बिना संभव नहीं अतः धर्म के तत्वों की रक्षा में सक्रिय होना समाज के प्रत्येक विचारशील नागरिक का पवित्र कर्तव्य बन जाता है। भारतीय जीवन में धर्म एक अग्रणी तत्व रहा। धर्म एकान्त में रहकर जीवन यापन करने वाले मनुष्यों का प्रेरक नहीं है। धर्म सामाजिक जीवन का सद्गुण है। भारतीय राजनीतिक दर्शन में धर्म और राज्य मे विरोधी संबंधों की कोई कल्पना नहीं की गई है। आदर्श राज्य में धर्म आत्मा के सदृश्य राज्य रूपी शरीर में विद्यमान व्यक्ति का राजकीय जीवन धार्मिक जीवन का पर्याय माना गया है। राम, कृष्ण, विदूर, भीष्म, युधिष्ठिर, चाणक्य, गांधी और अनगिनत राजर्षि इसके उदाहरण है। भारतीय नागरिकों में कोई हिन्दू हैं और वे लोग अधार्मिक हैं जो किसी पंथ या संप्रदाय से नहीं जुड़े हैं। यह बात उतनी ही असत्य है जितना की यह कहना कि सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगाता है। भारतीय समाज यदि पूणतया धार्मिक होता तो इसके सामाजिक, राजनीतिक जीवन में इतनी बुराईयां ना होती। अधिकांश भारतीय धार्मिक होने का दावा करते है । परन्तु वे आचरण में धर्म की अभिव्यक्ति नहीं करते। आज की भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का जो ह्रास देखा जा रहा है उसके आधार पर राजनीतिक एवं प्रशासनिक जीवन के आदर्श का प्रतिनिधित्व भारतीय कर पायेंगे इसमें संदेह है। यह सच है कि भारतीय समाज मानव जीवन के विभिन्न कृत्यों को ईश्वरीय छाया से निष्पादित मानते है। परन्तु वेव्यावहारिकजीवन में उसे स्वीकार नहीं करते।

धर्म को जीवन और आचरण में पूर्णता उतार लेने के लिए और व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिए भारत में विभिन्न दर्शनों, समुदायों का विकास हुआ है। भारत के ऐसे अनेक संप्रदाय हैं जिनमें अद्वैत, वैष्णौ, शाक्त, जैन बौद्ध, सिख आदि प्रमुख है। इन विभिन्न संप्रदायों की उपासना पद्धतियों में भले ही भिन्नता हो परन्तु लक्ष्य सभी का परम् सत्य और धर्म ही है। अर्थात धर्म साध्य है जबकि संप्रदाय साधन। भारतीय समाज सहिष्णुता के कारण अनेक उपसंप्रदायों को भी जन्म देता है बौद्धौ में महायान, हीन यान, जैन में श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि हैं। यद्यपि ये भिन्नताएं प्रशासनिक दृष्टिकाण से बहुत महत्व नहीं रखती। राजनीतिक और संप्रदायिक षड़यंत्रों के कारण देश का वातावरण बहुधा विषाक्त हो जाया करता है।

हिन्दू समाज की सहिष्णुता अनुपम है । भारतीय संस्कृति किसी दूसरे धर्म में हस्तक्षेप नहीं करती है। हमारे इतिहास में ऐसे विभिन्न उदाहरण देखने को मिलते है। जिनमें हमारे मनुष्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सत्य को प्राप्त करने के अनेक मार्ग है।

हमारे पूर्वजों का दृष्टिकोण सदैव अन्तर्राष्ट्रीय ही रहा है। मानव एक ही ईश्वर की संतान है। यह संकल्पना सदैव उपस्थित रही है। वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श आज से चार हजार वर्षो पूर्व भारतीय संस्कृति का नारा था। हिन्दू संस्कृति ने अनेक संस्कृतियों को पीकर अपनी ताकत बढ़ाईहै। यहां तक की इस्लाम जो अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रखने का मनसूबा लेकर चला था वह भी भारत में आकर बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है। आज भारतीय मुसलमान सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय है।

3.3.2 भारतीय प्रशासन सामाजिक, पर्यावरण

एफ. डब्लू. रिंक्स ने अपनी पुस्तक इकॉलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेसन में कहा है कि इसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनों, जात संबंधों, परम्पराओं, धर्म मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास आदि पर आधारित होता है। ये समस्त तत्व प्रशासन पर बड़ा गहरा प्रभाव डालते है। लोक प्रशासन में मानवीय तत्व विशेष तत्व का प्रभाव होता है। इसलिए लोक प्रशासन का मानवीय तत्व समाज विशेष का ऊपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएं और संस्थाएं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। भारत में आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक आदि आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते हैं। समाज के इन वर्गों को पहचानना तथा उनमें जो वर्ग यह पिछड़ी जाति कमजोर है उसे विशेष सुविधा देकर ऊपर उठाना प्रशासन का महत्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। प्रशासन को केवल कानूनी न्याय के आदर पर नहीं चलाया जा सकता। बल्कि प्रशासन के संचालन के लिए आज सामाजिक न्याय अधिक आवश्यक बन गया है। इसके साथ सामाजिक संस्थाओं का लोक प्रशासन की नौकर शाही से घनिष्ट संबंध रहता है। सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन पर निरन्तर दबाव रहता है। इस सामाजिक दबाव के कारण लोक प्रशासन सतर्क एवं उत्तरदायी बना रहता है। दूसरी ओर सामाजिक जागरूकता भी प्रशासनिक व्यवहार को जनोपयोगी बनाने में सहायता करती है। इससें स्पष्ट है कि प्रशासन को सामाजिक पर्यावरण के अनुसार संचालित होना पड़ता है। समाज प्रशासन के अनुसार कभी कभी ही क्रियाशील होता है। भारतीय समाज की विशेषता है कि वह बहुलवादी समाज है। जिसमें विविध संप्रदायों के अनुयायी भाषाभाषी एवं जाति धर्म वाले लोग रहते है। भारत में हिन्दू मुस्लिम सिख जैन बोध, परसी आदि धर्माबलम्बी रहते है। भाषाओं की संख्या तो अनगिनत है। फिर भी संविधान की आठवीं सूची में 22 भाषाओं को रखा गया है। बहुसंख्यक हिन्दू के सामाजिक जीवन का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था है। यद्यपि वर्ण व्यवस्था अपनी पूर्व अवस्था में नहीं रह गई परन्तु अभी भी अघोषित रूप में सामाजिक जीवन को इसी सिद्धान्त पर चिह्नित किया जाता है। वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात श्रम और व्यवसायिक वर्गो के

विभाजन से हुआ था। जो कालान्तर में जन्म पर आधारित बन गया। वर्ण व्यवस्था का सबसे हानिकारक पक्ष है। पीछड़ी जातियों के प्रति अस्पृश्यता का व्यवहार। उच्च वर्ग में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग की स्थिति सम्मानित और गौरवशाली हुआ करती थी। परन्तु शूद्र वर्ग समाज में विपन्न और शोषित वर्ग हुआ करता था। स्वतंत्रता के पश्चात वर्ण व्यवस्था को अवैध एवं गैरकानूनी घोषित किया गया और योग्यता के आधार पर व्यवसायों के चयन को प्रमाणित माना गया। परन्तु भारत के कुछ राज्यों में भूमि पर उच्च वर्गो का एकाधिकार अभी भी स्थापित है। बिहार, पंजाब, राजस्थान, जैसे राज्यों में भूआबंटन लागू ही नहीं हो पाया और कुछ राज्यों में लगभग ही क्रियान्वित हो सका। भारत की राजनीति संरचना और प्रक्रियायें लोकतांत्रिक प्रक्रिया को प्रभावित करता है। पंचायती राज के तीनों स्तरों पर जो अलोकतांत्रिक एवं सामंती मानसिकता का उद्घाटन होता है। इस समाज की अलोकतांत्रिक मानसिकता परिलक्षित होती है। भारतीय राजनीतिक जीवन की सच्चाई है। यहां पर भारतीय समाज के कुछ विशेष मुद्दों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

जातिः-

भारतीय समाज की संचार का आधार जाति और उपजातियां हैं। भारतीय प्रशासन सदियों पुरानी सामाजिक विषमता को ठीक करने में व्यस्त है। अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों और पीछड़ी जातियों के लिए शिक्षा एवं सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान भारतीय समाज की एकरूपता एवं समरसता प्रदान करने का विवादित प्रयास है। आरक्षण की व्यवस्था आर्थिक पीछड़ेपन पर आधारित न होकर जाति पर आधारित है। दूसरे मूल संविधान में इसे दस वर्षो तक जारी रखने का प्रावधान था परन्तु संसद द्वारा इसे समय समय पर बढ़ाया जाता रहा। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण बहुत हद तक उचित है। परन्तु पीछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान राजनीतिक स्वार्थो से प्रेरित है। राजनीतिक दल वोट बैंक के लिए कथित पीछड़ी जातियों के आरक्षण का समर्थन करते हैं।

प्रशासनिक स्तर पर जाति भावना एक गंभीर समस्या है। समजात वर्ग के अधिकारी एवं कर्मचारी एक दूसरे के लिए अवैध और अनुचित कार्यो को करने के लिए तैयार हुए दिखाई देते हैं । परन्तु विजातिय लोगों के लिए उचित एवं वैध कार्यो के लिए टालमटोल करते है। जिस प्रकार से राजनीतिक स्तर पर जातियों को संगठित कर एक संगठित बोट बैंक क रूप में परिवर्तित कर दिया गया है लगभग उसी प्रकार राजनेताओं द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों का इस्तेमाल अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए किया जाता है। राज्यों के विधानसभा के उपचुनाव में इस जाति भावना का प्रशासन खुल कर प्रयोग होता है। आम जनमानस में प्रायः देखा और सुना जाता है। कि समान जाति है तो एसमें अजीब आशा और विश्वास का संचार होता है। परन्तु जब वह विजातिय अधिकारी या कर्मचारी के पास जाते है तो उनमें भय और शंका का समावेश होता है।

भारतीय समाज के नैतिक स्तर में गिरावट :-

राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में भारत के नेताओं ने नैतिक मूल्यों एवं आदर्श मानवीय गुणों का जो उद्घाटन किया था विश्व स्तर पर भारत के ब्रिटिश आधिपत्य को असंगत प्रमाणित किया था। विश्व के अनेक विद्वानों ने कहा- भारत को सभ्य बनाने का अधिकार ब्रिटेन को नहीं है। भारतीय पुर्नजागरण और स्वतंत्रता के काल तक भारत के नैतिक मूल्यों, आदर्शो के कारण भारत एक आध्यात्मिक गुरू के रूप में उभर रहा था। परन्तु पीछले साठ वर्षो से भारतीय समाज का नैतिक पतन बड़ी तीव्र गति से हो रहा था। भारतीय समाज ने मानवीय बुराईयों को फैशन बना लिया है। और सामान्य जनता इन वर्गो की बुराईयों को अनुयायी बनकर अपनाती जा रही है। उच्च वर्ग में भ्रष्टाचार, बेईमानी कर्तव्यहीनता, मिथ्या दंभ, बड़े होने और सभ्य होने के प्रमाण माने जाते है। अर्थ का लाभ भारतीय समाज को उसके आदर्शो से पदच्युत कर रहा है। राजनेता जितना बड़ा आर्थिक घोटाला करते है। उतना ही उनके राजनैतिक कद का प्रमाण माना जाता है। समाज में नैतिक मूल्यों का पतन इतनी गहराई तक पहुँच गया है। कि लोग सामाजिक, प्रशासनिक बुराईयों को मौन स्वीकृति प्रदान कर देते है।

भारतीय प्रशासन, भारतीय समाज के नैतिक पतन का प्रतिबिम्ब भारत के आये दिन अधिकारी और कर्मचारी पर भ्रष्टाचार के आरोप लगते हैं । यह सच है कि उन्हें रिश्वतखोर होने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सभी नीतियों का इस्तेमाल प्रशासनिक वर्ग और राजनीतिक वर्ग द्वारा ही किया जाता है। भ्रष्टाचारमुक्त भारत सदगुणी व्यक्तियों के लिए अभी भी एक सपना है।

3.3.4 भारतीय प्रशासन आर्थिक पर्यावरण

अर्थ वह भौतिक तत्व जिस पर व्यक्ति के जीवन की गति निर्धारित होती है। राज्य की आर्थिक दशा और अर्थ के वितरण की व्यवस्था उसके सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक ढ़ाचे का स्वरूप तय करता है। प्रशासन के स्वरूप के संबंध में कुछ समय पहले राजनीतिक परिस्थितियों को ही अधिक महत्व दिया जाता था। परन्तु पिछले कुछ वर्षो से आर्थिक विकास के अनुसार ही प्रशासन की सफलता एवं असफलता के अध्ययन को भी सम्मिलित किया जाने लगा है।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति का वहां के लोकप्रशासन के स्वरूप संगठन और कार्यो पर प्रभाव पड़ता है। प्रायः सभी विकासशील देशों में द्रुत आर्थिक विकास एवं आधुनिकिकरण के लिए प्रशासनिक सुधारों को अनिवार्य समझा जाता है। आज आर्थिक विकास के लिए प्रशासनिक विकास की भी आवश्यकता है। प्रशासन को आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाता है और इसके लिए समय समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते है। किसी भी देश की योजना को लागू करने का दायित्व प्रशासन का होता है। अतः देश की प्रशासनिक प्रणाली वहां के आर्थिक

जीवन को नियमित करती है। आज की प्रशासनिक व्यवस्था सिर्फ कानून और व्यवस्था के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि प्रशासन व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलु को अधिकाधिक खुशहाल बनाने के लिए लोक कल्याणकारी बन गया है।

भारतीय अर्थ व्यवस्था अपनी विशाल जनसंख्या के भार से दबी हुई है। आर्थिक प्रगति के बावजूद गरीबी, भुखमरी, कुपोषित जीवन जीने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। भारतीय राजनीतिक नेतृत्व व प्रशासन दोनों के लिए भारतीय समाज का समावेशी विकास एक दुसाध्य लक्ष्य बना हुआ है। लोकप्रशासन अनेक प्रकार से देश के जीवन को नियंत्रित करता है। जैसे एक बाजार व्यवस्था तभी सूचारू रूप से कार्य कर सकती है जब उसके ऊपर विभिन्न प्रकार की नियंत्रण लगाये जायें तथा प्रशासन द्वारा अनेक सुविधायें उपलब्ध करायी जाये। प्रशासन ही वह यंत्र है जों अल्प आर्थिक संसाधनों को अपने कौशल से अधिक उपयोगी और कल्याणकारी बना सकता है। और यदि प्रशासन तंत्र भ्रष्ट और लुटेरा हो तो विश्व के समस्त संसाधनों से दरिद्रता नहीं दूर की जा सकती। प्रशासन में भ्रष्टाचार का मूल आधार आर्थिक है। यदि हम प्रशासन को पवित्र और भ्रष्टाचाररहित बनाना चाहते है तो आर्थिक विषमताओं को दूर करना आवश्यक है। इसी प्रकार अकुशल प्रशासन निम्न आर्थिक स्तर का एक दुष्चक्र होता है। जब किसी राज्य की आर्थिक स्थिति खराब होती है तो वहां योग्य तथा कुशल कर्मचारी उपलब्ध नहीं हो पाते। फिर भी मै कहूँगा कि भारतीय प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार न तो आर्थिक असमान्यता व दरिद्रता का परिणाम है और ना ही भारत की विकास योजनओं की बल्कि यह नैतिक और चारित्रिक समस्या है।

स्वाधीनता के बाद देश का औद्योगीकीकरण एक पूंजीवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर करने का प्रयत्न किया गया पूंजीवादी औद्योगीकीकरण की प्रक्रिया ने कई तरह की बुराईयां उत्पन्न कर दी। उनसे अर्थ व्यवस्था की पूराने ढ़ाचे को समाप्त कर दिया गया। किन्तु किसी नये ढ़ाचे का निर्माण नहीं किया गया। पूंजी अपने निवेश के लिए उन्ही क्षेत्रों को चुनती है जो उसे प्रारंम्भिक सुविधायें प्रदान करते है। चूंकि ये सुविधायें पहले से मौजूद शहरी क्षेत्रों में प्राप्त होती है। अतः नये उद्यम और व्यवसायिक प्रतिष्ठान सामान्यतः शहरों तथा शहरों के उपनगरीय क्षेंत्रों में शुरू किये जाते है। इससे अनेक समस्यायें उत्पन्न हुई जैसे आर्थिक विषमता असन्तुलित आर्थिक विकास आदि।

स्वाधीनता के बाद भारत ने विकसीत देशों से उधार ली गई अत्यधिक पूँजी प्रदान टेकनॉलॉजी को अपनाया। भारी उद्योगों केनिर्माणके लिए विदेशी सहायता लेनी पड़ी ओर देश की अर्थ व्यवस्था विदेशी निगमों के शिकंजे में फँसने लगी। आज देश की अर्थ व्यवस्था पर बड़े औद्योगिक घरानों ओर बहुराष्ट्रीय कंपनीयों का प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है। राजनीतिज्ञ, प्रशासक, सलाहाकार संस्थानएं, सामान्य जन की कल्याण उपेक्षा करके पूंजीपतियों के हितों को पैरवी करने नजर आते है।

भारतीय अर्थ व्यवस्था के आर्थिक पर्यावरण को निम्न विशेषताओं के संदर्भ में समझा जा सकता है:-

कृषि की प्रधानता:-

भारतीय अर्थ व्यवस्था की प्रमुख विशेषता कृषि व्यवसाय की प्रधानता है। यहां की कुल कार्यशील जनसंख्या का 56% कृषि व्यवसाय में तथा 32% उद्योग व सेवाओं में लग हुआ है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था:-

भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण है। यहां लगभग 70% जनसंख्या गावों में निवास करती है। यह प्रतिशत अन्य देशों की तुलना में बहुत ज्यादा है। उदाहरण के लिए अमेरिका में 24% जापान में 22% व आस्ट्रेलिया में 15% जनसंख्या गावों में निवास करती है।

प्रतिव्यक्ति निम्न आय:-

भारतीय अर्थवयवस्था की एक विशेषता यह है कि यहां प्रतिव्यक्ति आय बहुत निम्न है। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो भारत की प्रति व्यक्ति आय जहां 460 डालर है वही विश्व की औसत प्रति व्यक्ति आय 5159 डालर है। भारत में प्रति व्यक्ति आय कम होने से गरीबी व्याप्त है। लेकिन यह गरीबी आँकड़ों से भी और अधिक है।

परम्परावादी समाज:-

भारतीय अर्थ व्यवस्था का एक लक्षण यह है कि यहां का समाज रूढ़िवादी, भाग्वादी और ढोंगी है यही कारण है कि यहां बहुत सी कुरीतियां हैं जैसे मृत्युभोज व अनेक सामाजिक परम्पराएं है, जिनमें काफी धन व्यय कर दिया जाता है। ऐसी परम्पराओं और रीति रिवाजों के कारण यहां का समाज सुखी जीवन व्यतीत नहीं कर पाता और अपने परिवार का जीवन स्तर नहीं उठा पाता। भारत के आर्थिक परिवेश में प्रशासन के समक्ष अनेक चुनौतियां उपस्थित हो जाती है। पंचायती शासन के माध्यम से विकास योजनाओं का क्रियान्वयन आर्थिक संसाधनो के बंदरबांट का ज्वलंत उदाहरण है। प्रशासन को भारत की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूंढ़ना और एक स्वास्थ समाज का निर्माण करना है, जो एक बड़ी चुनौती है ।

3.3.5 भारतीय प्रशासन संवैधानिक पर्यावरण

किसी भी देश का प्रशासन संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप ही होता है। जहां संविधान का शासन है वहां प्रशासन का स्रोत भी संविधान ही होता है। भारतीय प्रशासनिक संस्थाओं और उसकी कार्य प्रणाली का विस्तृत विवरण संविधान के अनुच्छेदों में बिखरा पड़ा है। इन संस्थाओं में निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग आदि संवैधानिक संस्थाएं है। भारतीय संविधान की कुछ विशिष्ट विशेषताएं प्रशासन की प्रकृति व उसकी रूपरेखा, कार्यप्रणाली आदि का निर्धारण करती है।

जैसे संसदीय शासन व्यवस्था प्रशासन में अनुचित राजनीतिक हस्तक्षेप की भूमिका तय करता है। दूसरी ओर मंत्रीयों की अनभिज्ञता उन्हें प्रशासनिक कार्यो के प्रति उदासीन बनाती है और नौकरशाही का प्रभुत्व प्रशासन पर स्थापित हो जाता है। संविधान का लिखित होना प्रशासन के उद्देश्य एवं दिशा का निर्धारण करता है। नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं राज्यों के नीति निर्देशक तत्व इस संबंध में द्रष्टव्य है। संघात्मक शासन के कारण प्रशासन के दो स्तर केन्द्रीय एवं प्रांतीय होते है। इस परिस्थिति में दोनों स्तरों में पर्याप्त सहयोग एवं सामंजस्य की आवश्यकता होती है। कभी2 सुरक्षा संबंधी मामलों में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय प्रशासनीक संस्थाओं में अतंर्विरोध देखा जाता है। उदाहरणार्थ बिहार, बंगाल, उड़ीसा मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड मेंनक्सली समस्याओं के संबंध में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सुरक्षा एजेन्सीयों में सहयोग का अभाव दिखाई देता है।

संविधान में प्रशासकों के चयन प्रक्रिया को योग्यता पर आधारित ओर निष्पक्ष बनाने के लिए संघलोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग जैसी संस्थाओं का प्रावधान किया गया है। स्वतंत्र न्याय पालिका के द्वारा लोक सेवकों के पदच्युति को भी न्यायिक प्रक्रिया का विषय बना दिया गया है। जिससे लोक सेवक बिना किसी भय के निष्पक्ष होकर कार्य कर सके। प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों के अवैध कार्यो के विरूद्ध मुकद्दमा चलाने का अधिकार पिड़ितों को दिया गया है। निःसंदेह भारतीय संविधान में जनता के कल्याण और मानव सम्मान व अन्य प्रतिष्ठा को ध्यान में रखा गया है। परन्तु अभी तक उस गिने चुने लोगों तक यह सीमित है। स्वतंत्र न्यायिक व्यवस्था जनहित के मुकद्दमें जनसूचना का अधिकार की उपलब्धता का अधिकार न्याय एक दुर्लभ बस्तु बन गया है। उत्कृष्ट संविधान कानून और संस्थाओं के होते हुए भी समाज के उन्नति नहीं हो पा रही है। स्वतंत्रता के समय भारत की जनता समझती थी कि आजादी मिलने पर भारत एक नये युग में प्रवेश करेगा। परन्तु 70 वर्षो के उपरान्त औद्योगिक, तकनीकी आर्थिक प्रगति के बावजूद भारत की सामाजिक प्रगति और सामान्य जनता की स्थिति के संबंध में संशय है। जो देश अपने 60% जनसंख्या के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था ना कर सकी उसके लिए आर्थिक प्रगति, औद्योगिक उन्नति जैसे शब्द बेईमानी लगती है। यद्यपि वर्तमान समय में जनधन योजना ,मनरेगा , स्वास्थ्य वीमा योजना आदि के द्वारा सशक्तिकरण के कार्य को आगे बधया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1.पर्यावरण किन दो शब्दों से मिलकर बना है।

2 ‘द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के लेखक कौन है।

3. ‘डायनामिक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन’के लेखक कौन हैं।

4.भारत की लगभग जनसंख्या गावों में निवास करती है।

3.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से आप समझ सके होगे कि किस प्रकार देश का प्रशासन देश के संवैधानिक पर्यावरण की सीमाओं में रहकर ही कार्य करता है। भारतीय प्रशासन और संवैधानिक पर्यावरण को समझने के लिए भारतीय संविधान की विशेषताएं निर्मित, लिखित, लोकप्रिय संप्रभुता, लोक कल्याण कार्य समाजवादी, धर्म निरपेक्ष राज्य, संसदीय व्यवस्था, स्वतंत्र न्याय पालिका, मूल अधिकारों की व्यवस्था, आदि को समझना आवश्यक है।साथ ही अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ होगा कि देश विशेष की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, संवैधानिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियां प्रशासन को न केवल प्रभावित करती हैं अपितु कार्यप्रणाली एवं ढांचे को **नया रूप** प्रदान करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रशासन और पर्यावरण में घनिष्ट संबंध है।

3.5 शब्दावली

पर्यावरण - पर्यावरण दो शब्द परि और आवरण से मिलकर बना है। जिसका शब्दिक अर्थ हैं चारो ओर घिरा हुआ। सामाजिक विज्ञान में पर्यावरण का स्वरूप प्राकृतिक विज्ञान के जैविकिय एवं अजैविकिय संघटनों से भिन्न है। यद्यपि लोकप्रशासन में पर्यावरण या परिवेश अथवा परिस्थिति के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। परन्तु तात्विक रूप से दोनों में भिन्नता है।

संस्कृति- संस्कृति के अंतर्गत समुदाय के रहन सहन, खानपान, जीवन शैली, बौद्धिक उपलब्धियों एवं जीवन दर्शन आते है।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.परि और आवरण. 2.एफ.डब्ल्यू. रिंक्स 3.जी. ई. ग्लैडन 4.72.2%

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय प्रशासन के पर्यावरण पर निबंध लिखिए।

2.स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन के पर्यावरण में किस प्रकार का परिवर्तन आया है। स्पष्ट कीजिए।

इकाई - 4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 प्रस्तावना

4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

4.6 लोक कल्याणकारी राज्य

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इकाई एक में हमने भारतीय संविधान केनिर्माणमें विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेगें कि-

1.भारतीय संविधान इतना विस्तृत किस प्रकार हुआ।

2.भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये गए।

3.भारतीय संविधान में संघात्मक उपबंध क्यों किये गए।

4.आप जान सकेगें कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है।

4.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियॉ भिन्न-भिन्न होती है इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संघात्मक शासन को अपनाया गया है। यहॉ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दु:खद अनुभव को झेल चुका था।

यहॉ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

"हम भारत के लोग ,भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक
गणराज्य बनाने के लिए ,तथा उसके समस्त नागरिकों को :
सामाजिक ,आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
विचार,अभिव्यक्ति ,विश्वास ,धर्म और उपासना की स्वतंत्रता ,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता ,
प्राप्त कराने के लिए ,तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की

एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता
बढाने के लिए
दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26-11-1949 ई.(मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी ,संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत,अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

यहॉ हय स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगें-

1. **हम भारत के लोग**- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वंय जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।

2. **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न**- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वंय भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

3. **पंथ निरपेक्षः-** यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन वह सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।

4. **गणराज्य**- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।

5. **न्याय**- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि

चुनने और स्वंय को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए। 6.**एकता और अखण्डता** - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वॉं संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताए निम्नलिखित हैं -

1. **लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान**: संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग .... । '

2. **विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान**: हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियॉं हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद है। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण है। जो निम्नलिखित है:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं हैं (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आग्क्तभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये है।

स. नागरिकों मूल अधिकारो का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा

आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धो का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

3. **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य** - जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके है कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और वाह्य मामले में पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

4. **पंथ निरपेक्ष** - भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यति इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना को राजधर्म नहीं है। सभी धर्मो के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

5. **समाजवादी राज्य** - इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

6.कठोरता और लचीलेपन का समन्वय - संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते है। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान । कठोर संविधान वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है - अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।
किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।
2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनो के अलग-अलग बहुमत से पारित करने साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।
3. भारतीय संविधान मे कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधेराज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने इसको स्पष्ट रकते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते है, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमे लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

4. संसदीय शासन प्रणाली - हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन् का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहॉं यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया हैं।
इस प्रणाली की विशेषता -
अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ मेंराष्ट्रपतिऔर राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनो में मंत्रिपरिषद होती है।
ब. राष्ट्रपति (संघ मे) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते है।
स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनो निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।
ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्थापिका के सदस्यों में से ही किया जाता है।

5.एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन - यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहॉं के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी

सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान
2. केन्द(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)
3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रुप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण

इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की । जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाए, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते है।

4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियॉ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरुप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित है, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम 1935	तीनों सूचियॉ, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियॉ
ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, न्यायिक पुनरावलोकन, स्वतंत्र न्यायपालिका, और राष्ट्रपति पर महाभियोग
आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन,) अवशिष्ट शक्तियां केंद्र के पास होना
आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

4.6 लोक कल्याणकारी राज्य

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रुप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/ विशेष रुप से भाग 4 के नीति निदेशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए

विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1.भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य असत्य/

2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता -नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद। सत्य असत्य/

3.लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। सत्यअसत्य/

4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। सत्यअसत्य/

5.पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है। सत्यअसत्य/

4.7 सारांश

इकाई 4 के अध्ययन के के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान की क्या विशेषताएं हैं। जिसमें यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारे नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए। जैसे मूल अधिकार और नीतिनिदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र –राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ –साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग ,अल्पसंख्यक आयोग ,अनुसूचित जाति आयोग ,अनुसूचित जनजाति आयोग ,राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ। इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्कताओं के अनुरूप पाए। जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है।इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई।

4.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न होना राज्य के द्वारा सभी धर्मो के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने -2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्र प्रताप सिंह

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?

2.आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई- 5 भारतीय बजट प्रक्रिया सिद्धान्त और कार्य

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 बजट की अवधारणा

5.2.1 बजट का अर्थ

5.2.2 बजट की परिभाषाएं

5.2.3 बजट की विशेषताएं

5.3 बजट के सिद्धांत

5.3.1 बजट के कार्यपालिका से संबंधित सिद्धांत

5.3.2 व्यवस्थापिका से संबंधित सिद्धांत

5.3.3 अन्य सिद्धांत

5.4 विकासशील देशों में बचत की भूमिका

5.5 बजट के कार्य

5.6 निष्कर्ष

5.7 सारांश

5.8 शब्दावली

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

'वित्त' प्रशासन का जीवन रक्त है, दोनों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। वित्त के अभाव में सरकार बिल्कुल उसी प्रकार से काम नहीं कर सकती है जिस प्रकार से बिना पेट्रोल के कार नहीं चल सकती है। या दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रशासकीय इंजन का ईंधन वित्त होता है। पहले का परिचालन दूसरे के बिना असंभव है। लॉयड जॉर्ज ने एक बार कहा था कि, जिसको शासन कहते हैं, वह वास्तव में वित्त है। सरकारी ही नहीं सभी उद्यम विथ पर ही निर्भर होते हैं। कौटिल्य ने इस संदर्भ में ठीक ही कहा है, ''सभी उद्यम वित्त पर निर्भर हैं। अतः कोषागार पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।'' प्रत्येक योजना के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है।

अच्छी से अच्छी नीति और योजना भी विफल हो जाती है यदि उससे संबंधित कर्मचारी कर्मचारियों के लिए अच्छे वेतन तथा आवश्यक पदार्थों के लिए पर्याप्त धनराशि का प्रबंध ना हो। दृढ़ वित्तीय व्यवस्था ही शासन के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। राजस्व आम नागरिक से भी प्राप्त किया जा सकता है। अतः सरकार का यह कर्तव्य होता है कि वह उस धन को कुशलता तथा मितव्ययिता से व्यय करें। प्रजातंत्र में ठोस वित्तीय व्यवस्था के पक्ष में निश्चित भावना होनी चाहिए। इसके अभाव में अपव्यय तथा अन्य बुरी बातों का दो जनता प्रजातंत्र पर ही मढ़ देती है और परिणाम यह होता है कि जनता ऐसे प्रजातंत्र से ही घृणा करने लगती है। इसके अतिरिक्त एक और बात जिसके कारण वित्तीय प्रशासन का आज महत्व बहुत बढ़ गया है वह है, आधुनिक समय में शासकीय कार्यों में असाधारण वृद्धि। इस असाधारण वृद्धि के कारण ही वित्तीय प्रशासन संबंधी उत्तम सिद्धांतों, उपकरणों एवं पद्धति का विकास किया जाना और सरकार द्वारा उसका पालन किया जाना नितांत आवश्यक हो गया है। वित्तीय प्रशासन बड़े निकट से जनता के सामाजिक-आर्थिक आचरण को प्रभावित करता है। टास्क फोर्स, हूवर कमीशन के शब्दों में, ''वित्त आधुनिक शासन के अंतः स्थल तक पहुंच गया है। बजट सार्वजनिक नीति के नट और बोल्ट हैं। वित्तीय प्रशासन में वे समस्त क्रियाएं शामिल होती हैं जो लोक सेवाओं पर व्यय हेतु आवश्यक धनराशि की प्राप्ति, व्यय तथा लेखांकन से संबंध रखती हैं। यह क्रियाएं एक नियंत्रण श्रंखला के रूप में कार्य करती हैं तथा कार्यपालिका, विधान मंडल, वित्त मंत्रालय जैसे अभिकरणों द्वारा संपादित होती हैं।''

5.1 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- बजट का अर्थ, परिभाषाएं एवं उसकी विशेषताओं को समझ पायेंगे।
- आम बजट के विभिन्न सिद्धांतों को जान पाएंगे।
- विकासशील देशों में बजट की भूमिका तथा बजट के विभिन्न कार्यों को भलीभांति समझ पाएंगे।

5.2 बजट की अवधारणा

बजट संबंधी प्रक्रिया को प्रशासन का केंद्र बिंदु माना जाता है, क्योंकि राज्य कोष का नियंत्रण समन्वय का सर्वाधिक शक्तिशाली साधन है। समस्त सरकारी कार्यों का क्षेत्र एवं स्वरूप विभिन्न बड़े कार्यों के लिए निश्चित धनराशि के आधार पर निर्धारित किया जाता है। निष्पादित प्रबंध तथा विधाएं नियंत्रण का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण होने के साथ ही बजट वित्तीय प्रशासन का प्रधान उत्पादन भी है। 'बजट' शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'बाजते' (Bougette) से हुई है, जिसका अर्थ

है चमड़े का थैला या झोला, जिसमें से ब्रिटेन का राजकोष महामात्र (Chancellor of the Exchequer), शासन की आगामी वर्ष की वित्तीय योजना के कागजात संसद के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु, निकाला करता था। सन 1773 में ब्रिटेन में हाउस ऑफ कॉमंस में जब वित्त मंत्री सर रॉबर्ट वॉल्पोल ने अपनी वित्तीय योजना संसद में प्रस्तुत की तब किसी ने व्यंग के रूप में कह दिया कि, "वित्त मंत्री ने अपने बजट खोला है।" तब से सरकार के आय-व्यय के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। इससे पूर्व मध्यकालीन इंग्लैंड में प्रारंभिक बजट के दस्तावेज Doomsday Book या Domesday Book (कयामत पुस्तक) कहलाते थे। सम्राट विलियम (सन 1086) द्वारा प्रचलित इस दस्तावेज में भूमि एवं संपत्ति का विवरण होता था। वर्तमान में 'बजट' शब्द वित्तीय कागजात का निर्देश करता है, ना कि झोला इत्यादि का।

बजट प्रणाली का विकास उत्तर-मध्य युग में हुआ था। इस काल में इंग्लैंड तथा यूरोप में स्वेच्छाचारी शासन पद्धति पाई जाती थी। बजट राजस्व तथा व्यय का विवरण होता था, परंतु वह राजा का व्यक्तिगत विषय तथा राजकीय रहस्य माना जाता था। इसका कारण यह था कि राजस्व राजा की अपनी ही भू-संपदा से प्राप्त होता था। परंतु युद्ध काल में करों का सहारा लेना आवश्यक हो जाता था। परिणाम स्वरुप, ऐसे समय में अमीरों को राजस्व साधनों पर, विशेषता युद्ध पर, अपने विचार तथा प्रतिक्रिया प्रकट करने का अवसर राजा द्वारा प्रदान किया जाता था। "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं" के सिद्धांत को 1688 की क्रांति के समय की मान्यता प्राप्त हुई थी। किंतु उस समय सभी प्रशासकीय व संसदीय नियंत्रण के अधीन नहीं थे। वित्त पर पूर्ण विधाई नियंत्रण तो इसी शताब्दी में स्थापित हुआ है। इस प्रकार, वित्तीय निर्देशन तथा नियंत्रण के केंद्रीय उपकरण के रूप में बजट की अवधारणा अपेक्षाकृत नवीन है।

बजट प्रणाली कुशल राजस्व (fiscal) प्रबंध का आधार है। समाज-विज्ञान विश्व कोष के अनुसार, "बजट प्रणाली का वास्तविक महत्व इस कारण है कि यह किसी सरकार की वित्तीय मामलों के क्रमबद्ध प्रशासन की व्यवस्था करता है।" राजस्व संबंधी प्रबंध में अनेक क्रियाओं की एक निरंतर श्रृंखला रहती है, जैसे- राजस्व तथा व्यय का अनुमान, राजस्व तथा विनियोजन अधिनियम का लेखा, लेखा परीक्षण तथा प्रतिवेदन। इन क्रियाओं का संचालन किस प्रकार होता है इसका वर्णन, डब्लू. एफ. विलोबी ने कुछ इस प्रकार किया है, "पहले तो एक निश्चित समय- प्रायः एक वर्ष के लिए सरकारी प्रशासन को चलाने के लिए जिन व्ययों की आवश्यकता होती है, उनका अनुमान लगाया जाता है और इन व्ययों की पूर्ति हेतु धन के प्रबंध संबंधी प्रस्ताव होते हैं। इस अनुमान के आधार पर राजस्व तथा विनियोजन अधिनियम पारित किए जाते हैं, जो स्वीकृत कार्यों के लिए वैध अधिकार प्रदान करते हैं। इसके आधार पर विभिन्न कार्यरत विभागों द्वारा राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों के अनुसार राजस्व एवं विनियोजन लेखे खोले जाते हैं और इस प्रकार स्वीकृत द्रव्य का व्यय प्रारंभ होता है। लेखा परीक्षण तथा लेखा विभाग यह देखने के लिए इन लेखकों का परीक्षण

करता है कि वे ही हैं या नहीं, वास्तविक तथ्यों से संगति रखते हैं या नहीं और विधि के सभी प्रावधानों के अनुरूप हैं या नहीं। इन सब के उपरांत इन लेखों से प्राप्त सूचनाओं का सारांश निकाला जाता है और प्रतिवेदनों के रूप में उनको प्रकाशित किया जाता है। अंत में इसके आधार पर अगले वर्ष के लिए नए अनुमान तैयार किए जाते हैं और फिर वही चक्र पुन: आरंभ हो जाता है। इस प्रक्रिया में बजट ही वह तंत्र है जिसके द्वारा एक ही समय में कई क्रियाएं पारस्परिक रूप से संबद्ध की जाती है और उनकी तुलना तथा परीक्षा की जाती है। इस प्रकार बजट राजस्व तथा विषयों का अनुमान मात्र ना होकर कुछ और अधिक होता है। यह एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा प्रस्ताव, एक प्रलेख होना चाहिए जिसके माध्यम से मुख्य कार्यपालिका, जो सरकारी प्रशासन की वास्तविक संचालन के लिए उत्तरदायी सत्ता है, धन एकत्र करने तथा विधियों को स्वीकार करने वाली सत्ता (संसद) के समक्ष इस आशय का संपूर्ण प्रतिवेदन उपस्थित करती है कि किस ढंग से उसने तथा उसके अधीनस्थों ने विगत वर्ष के दौरान प्रशासनिक कार्यों को संपन्न किया है। साथ ही साथ, वह सार्वजनिक कोषागार की वर्तमान दशा का एक विवरण भी प्रस्तुत करती है। सूचना के आधार पर कार्यपालिका आगामी वर्ष के लिए अपने कार्यक्रम बनाना प्रारंभ करती है, और ऐसे कार्यों के लिए वित्तीय प्रबंध संबंधी प्रस्ताव प्रस्तुत करती है।"

अतः बजट कार्य संबंधी योजना है। यह आगामी वित्तीय वर्ष के लिए मुख्य कार्यपालिका के कार्यक्रम को प्रतिबिंबित तथा स्पष्ट करता है। यह सरकार के राजस्व तथा व्याकरण मात्र से कहीं अधिक व्यापक वस्तु है। इसके तीन प्रमुख कार्य हैं- नियंत्रण, प्रबंधन और नियोजन।

5.2.1 बजट का अर्थ

उपरोक्त वर्णन में अपने जाना कि बजट शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'बाजते' से हुई, जिसका अर्थ है- 'चमड़े का थैला।' 'बजट' शब्द का अर्थ देश के अनुसार भी बदलता है। जो वित्तीय योजना स्वीकृति के लिए व्यवस्थापिका में प्रस्तुत की जाती है उसे भी बजट कहा जाता है और जो स्वीकृत योजना व्यवस्थापिका द्वारा पास कर ली जाती है उसे भी हम बजट का नाम देते हैं। भारत में इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी व्यय के अनुमानों के समानार्थक के रूप में किया जाता है, जबकि इंग्लैंड में यह शब्द प्रायः वित्तीय योजना के स्वरूप या कर-भाग से संबंध रखता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह शब्द संपूर्ण वित्तीय प्रक्रिया के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जिसमें बजट की तैयारी, व्यवस्थापिका द्वारा उसकी रचना, उसकी क्रियान्वित, लेखांकन, लेखा परीक्षा आदि को सम्मिलित किया जाता है। जोसेफ पोईस ने लिखा है कि, "बजट एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा इस सरकारी अभिकरण की वित्तीय नीति निर्धारित और संचालित की जाती है।"

5.2.2 बजट की परिभाषाएं

आइए, अब विभिन्न विचारकों द्वारा दी गई बजट की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर बजट के अर्थ को और स्पष्ट रूप से समझते हैं-

विलोबी के अनुसार, "बजट सरकार के आय-व्यय का अनुमान मात्र नहीं है बल्कि यह एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा एक प्रस्ताव, तीनों है या इसे होना चाहिए। यह एक ऐसा लिखा पत्र है, जिसके माध्यम से कार्यपालिका, व्यवस्थापिका के सम्मुख आती है और विस्तार के साथ अति, वर्तमान और भविष्य की वित्तीय स्थितियों का प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है।"

रेने स्टार्म के शब्दों में, "बजट, एक ऐसा परिपत्र है जिसमें सार्वजनिक राजस्व और व्यय की प्रारंभिक योजना प्रस्तुत की जाती हैं।"

बेस्टाबल (Bastable)के अनुसार, "बजट का तात्पर्य इसी अवधि की वित्तीय प्रबंध से होता है; इसका छिपा हुआ अर्थ यह है कि से विधानसभा के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है।"

ग्लैडस्टोन (Gladstone) का कहना है कि, "बजट सिर्फ गणित नहीं, बल्कि हजारों तरीकों से यह व्यक्तियों की उन्नति तथा वर्गों के संबंध एवं राज्यों की शक्ति की जड़ में जाता है।"

हैरॉरॉल्ड आर. ब्रूस के शब्दों में "बजट किसी संगठन की अनुमानित आय तथा प्रस्तावित व्यय का वित्तीय वक्तव्य है जो आगामी वर्ष के लिये पहले से तैयार किया जाता है।"

विलने के अनुसार, "बजट, अनुमानित आय तथा व्यय का विवरण, आय एवं व्यय का तुलनात्मक क्षेत्र और इन सब के ऊपर यह राजस्व एकत्र करने तथा सार्वजनिक धन खर्च करने के लिए सक्षम प्राधिकारी को दिया हुआ प्राधिकार तथा निर्देश है।"

रेने गेज का कहना है कि, "आधुनिक राज्य में बजट सार्वजनिक प्राप्ति एवं खर्चों का पूर्वानुमान तथा एक अनुमान है और कुछ खर्चों को करने तथा प्राप्त क्यों को एकत्र करने का अधिकृतीकरण है।"

डिमॉक के शब्दों में "बजट एक वित्तीय योजना है जो अतीत में वित्तीय अनुभव का स्तर प्रस्तुत करता है, वर्तमान की योजना बनाता और भविष्य के एक निश्चित काल के लिए इसे आगे बढ़ाता है।"

मुनरो का कथन है कि, "बजट आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए अर्थ प्रबंधन की योजना है। उसमें एक और सभी आयोग का और दूसरी ओर सभी खर्चों का मद के अनुसार अनुमान दिया होता है।"

अतः बजट किसी वित्तीय वर्ष के संदर्भ में सरकार की अनुमानित प्राप्तियों (राजस्व या आय) और व्यय का विवरण है अर्थात बजट विधायिका को प्रस्तुत और विधायिका द्वारा स्वीकृत सरकार का वित्तीय दस्तावेज है।

5.2.3 बजट की विशेषताएं

उपरोक्त परिभाषा के अतिरिक्त भी बजट के संबंध में कुछ और ऐसे तथ्य या पहलू हैं जो महत्व रखते हैं। बजट की इन्हीं विभिन्न विशेषताओं का वर्णन कुछ इस प्रकार है-

1. बजट भावी योजना या कार्यक्रम है। अतीत के अनुभव तथा उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर इस योजना का निर्माण किया जाता है। सरकार के आर्थिक एवं सामाजिक नीति एवं विचारधारा मार्गदर्शन करती है। बजट योजना को मौद्रिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
2. बजट केवल प्रारंभिक प्रस्ताव नहीं है, बल्कि क्रिया करने की योजना है, क्योंकि बजट प्रस्तावों को विधानसभा पारित करती। अतः वे क्रियान्वयन के योग्य हो जाते हैं।
3. बजट मद, केवल अनुमान होते हैं।
4. सरकार की क्रियाओं के संबंध में बजट एक विस्तृत योजना है। इसके अंतर्गत सरकार के सभी विभागों तथा एजेंसियों की क्रियाएं शामिल होते हैं।
5. सामान्यतः बजट वार्षिक योजना होती है। कभी-कभी इसे एक साल से अधिक लंबी अवधि के लिए भी तैयार किया जाता है।
6. बजट का निर्माण कार्यकारिणी द्वारा होता है तथा इसे विधानसभा के समक्ष मतदान के लिए पेश किया जाता है। बजट में अक्सर चालू व्यय, पूंजी व्यय तथा सार्वजनिक आर्थिक उद्यमों के मध्य अंतर किया जाता है। चालू व्यय की वित्त व्यवस्था सामान्यतः कर राजस्व द्वारा होती है, जबकि लोक ऋण के द्वारा पूंजी व्यय के लिए वित्त जुटाया जाता है तथा दोनों प्रकार के व्यय को प्रथक-प्रथक दिखाया जाता है- क्रमशः राजस्व बजट तथा पूंजी बजट में।
7. जब लोक उद्यम आर्थिक उद्योगों की तरह होते हैं तथा उन्हें नियमित सरकारी विभागों के अंतर्गत रखा जाता है, उनकी आय और व्यय को सामान्य बजट के अंग के रूप में दिखाया जाता है। कभी-कभी इन उद्यमों की व्यवस्था अलग-अलग लोग निगमों के रूप में की जाती है। इस स्थिति में इन के बजट को सामान्य बजट से पृथक दिखाने की प्रथा यूरोप के देशों में तथा भारत में विद्यमान है।
8. कभी-कभी बजट पर मतदान होने तथा क्रियान्वयन के बाद संशोधन की आवश्यकता हो जाती है। ऐसा कई कारणों से हो सकता है, जैसे- लोक व्यय में अचानक वृद्धि या राजस्व में अप्रत्याशित कमी या अप्रत्याशित संकट।
9. जिस राशि का व्यय नहीं हो पाता है उसे एक ही विभाग में अभी से दूसरी अवधि में या एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानांतरित किया जा सकता है। एक ही विभाग में हस्तांतरण केवल विभागीय अध्यक्ष की मर्जी से नहीं होता है, बल्कि प्रमुख कार्यपालिका के निरीक्षण में होता है। अंतर विभागीय हस्तांतरण के लिए विधायिका की स्वीकृति आवश्यक।
10. नई क्रियाओं के उपस्थित होने या मौजूदा सेवाओं में विस्तार होने पर पूरक बजट जरूरी हो जाता है।

11. बजट में बताया जाता है कि सरकारी उपयोग के लिए दुर्लभ साधनों को किस प्रकार प्राप्त किया जाता है। यहां यह बात याद रखने योग्य है कि बजट संपूर्ण अर्थव्यवस्था की बैलेंस शीट (Balance Sheet) नहीं है, क्योंकि इसमें संपूर्ण देश की वित्तीय स्थिति का पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं किया जाता है। बजट में केवल किसी वर्ष में सरकार की आय एवं व्यय का ब्यौरा रहता है।

इस प्रकार उपरोक्त समस्त परिभाषाओं और विशेषताओं का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि, 'बजट' उन लेखों को कहते हैं जो सरकार द्वारा संसद के सम्मुख प्रतिवर्ष एक निर्धारित तिथि पर अथवा उसके पश्चात प्रस्तुत किए जाते हैं तथा जिसमें यह दिया होता है कि आने वाले वित्तीय वर्ष में सरकार का अनुमानित वह क्या होगा तथा उसी काल के मध्य आए क्या होगी। यह आय-व्यय वर्तमान लागू नियमों के अधीन होते हैं और यदि सरकार द्वारा कराधान प्रस्तावों पर विचार किया गया है तो इनके परिणाम स्वरूप बजट का प्राथमिक उद्देश्य व्यापक सूचना को प्रकट करना भी हो सकता है, ताकि सरकार की संपूर्ण वित्तीय स्थिति का परिचय मिल सके तथा जिससे संसदीय कार्यक्रमों के प्रभाव को देश की अर्थव्यवस्था पर पूर्ण तथा समुचित रूप से आंक सके।

5.3 बजट के सिद्धांत

विभिन्न देशों के लंबे अनुभव से बजट के संबंध में कुछ ऐसे सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं, ताकि बजट को अधिक सार्थक और उपयोगी बनाया जा सके। यद्यपि इनमें से कोई ऐसा सिद्धांत नहीं है, जिसे अनुलंघनीय माना जा सके तथापि एक स्वस्थ बजट के लिए इनका होना उपयोगी माना जाता है। बजट के सिद्धांतों को व्यापक रूप से निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- कार्यपालिका से संबंधित सिद्धान्त, व्यवस्थापिका से संबंधित सिद्धान्त तथा अन्य सिद्धांत।

आइए बजट के इन्ही सब सिद्धांतों को विस्तार से समझते हैं।

5.3.1 बजट के कार्यपालिका से संबंधित सिद्धांत

बजट कार्यपालिका के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय का एक मुख्य स्रोत माना जाता है। इसके द्वारा अपव्यय और पुनरावृत्ति को कम किया जा सकता है। बजट बनाते समय सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन हो जाता है और साथ ही साथ अनावश्यक क्रियाओं को समाप्त करने का आधार भी मिल जाता है। बजट से प्रशासन में अनुशासन भी आता है। इसके विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन के सभी भाग मिलकर एक साथ कार्य करते हैं।कार्यपालिका की दृष्टि से बजट को प्रभावशाली और उपयोगी बनाने के लिए जो सिद्धांत अपनाए जाते हैं वो कुछ इस प्रकार से हैं-

1. मुख्य कार्यपालिका का पर्यवेक्षण- बजट एक प्रकार से मुख्य कार्यपालिका के कार्यक्रम की रूपरेखा होता है। ऐसी स्थिति में यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि बजट पर मुख्य कार्यपालिका का सीधा पर्यवेक्षण हो।
2. कार्यपालिका का दायित्व है- मुख्य कार्यपालिका द्वारा तैयार किया गया बजट ऐसा होना चाहिए जो व्यवस्थापिका के उद्देश्यों को पूरा करता हो और साथ ही इसमें मितव्ययता का भी अनुपालन किया गया हो।
3. आवश्यक सूचना- बजट बनाते समय जो अनुमान बनाए जायें, जिन्हें व्यवस्थापिका में प्रस्तुत करके क्रियान्वित किया जाना है तो ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर संबंधित अधिकारियों के प्रतिवेदनों को आधार बनाया जाये। इन प्रतिवेदनों के माध्यम से ही बजट को उपयोगी और सार्थक बनाया जा सकता है। इनके अभाव में यह आज स्पष्ट और निराधार होगा। इससे इसकी उपयोगिता भी नष्ट हो जाएगी।
4. आवश्यक प्रसाधन- बजट की तैयारी और क्रियान्विति का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से कार्यपालिका पर ही होता है। अब इस उत्तरदायित्व या कर्तव्य को पूरा करने के लिए यह आवश्यक होता है की मुख्य कार्यपालिका को पर्याप्त प्रशासनिक उपकरण अथवा साधन प्रदान किए जाएं।
5. स्व-विवेक के अवसर- बजट के अनुमान मोटे तौर पर ही निर्धारित किए जाने चाहिए, ताकि समय के परिवर्तन के साथ-साथ मुख्य उद्देश्य प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधनों का चुनाव किया जा सके।
6. लोचशीलता- बजट के रूप में इतनी लोच शीलता भी होनी चाहिए की बदली हुई आवश्यकताओं के साथ उसमें परिवर्तन किया जा सके।
7. एक सहकारी प्रयास- बजट में कुशलता के साथ साथ सभी विभागों तथा उप विभागों का सक्रिय सहयोग भी प्राप्त करना आवश्यक होता है। बजट की रचना केवल एक केंद्रीय कार्यालय का कार्य ही नहीं होता है वरन यह एक ऐसी प्रक्रिया होती है जो संपूर्ण प्रशासकीय संग रचना का एक महत्वपूर्ण कार्य हैं।

इस प्रकार बजट निर्माण एक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस संबंध में कार्यपालिका से अत्यंत योग्यता और सजगता की अपेक्षा की जाती है।

5.3.2 व्यवस्थापिका से संबंधित सिद्धान्त

बजट के माध्यम से व्यवस्थापिका को कार्यपालिका पर नियंत्रण स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है। प्रारंभ में यह नियंत्रण केवल राजस्व के स्त्रोतों एवं मात्रा को बढ़ाने की दृष्टि से किया जाता था, किंतु बाद में इसमें व्यय को भी सम्मिलित किया गया। व्यवस्थापिका का नियंत्रण यह स्पष्ट करता है

कि उसकी स्वीकृति के बिना कोई घर एकत्रित नहीं किया जा सकता है और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। इसी संदर्भ में कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का समुचित नियंत्रण स्थापित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धांत विकसित किए गए हैं-

1. प्रचार- सरकारी बजट विभिन्न सोपानों में से होकर गुज़रता है। इनके प्रचार और प्रकाशन द्वारा बजट को सर्वाधिक जानकारी का विषय बना लेना चाहिए। बजट पर विचार-विमर्श करते समय व्यवस्थापिका के गुप्त अधिवेशनों की आवश्यकता नहीं है। व्यवस्थापिका का पर्याप्त प्रचार और प्रकाशन होने पर ही देश की जनता और समाचार पत्र उसके संबंध में अपनी राय प्रकट कर सकते हैं।
2. स्पष्टता- बजट यदि अस्पष्ट और उलझन पूर्ण हुआ तो निश्चय ही यह सामान्य जनता की समझ से बाहर रहेगा । बजट की सार्थकता और सफलता के लिए उसे इतना स्पष्ट होना चाहिए कि जनता इसे भली प्रकार समझ सके।
3. व्यापकता- बजट के अंतर्गत समस्त सरकारी कार्यक्रमों पर प्रकाश डालते हुए व्यय और राजस्व को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया जाना चाहिए। बजट के देखने पर यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि, सरकार द्वारा कौन-कौन से नए कर लगाए जा रहे हैं और किन-किन मदों पर सरकार द्वारा व्यय किया जाएगा। सरकार द्वारा जारी किए जाने वाले नए ऋण भी बजट में शामिल होते हैं, बजट देखने से सरकार की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति का बोध हो सकता है।
4. एकता- बजट में जो व्यय दिखाए जा रहे हैं, उन सभी की वित्तीय व्यवस्था करने के लिए सरकार को सभी प्राप्तियाँ एक सामान्य निधि में एकत्रित करनी चाहिए। राजस्व को पृथक करना एक अच्छे बजट का लक्षण नहीं होता है।
5. नियत कालीन- बजट द्वारा सरकार को विनियोजन तथा व्यय करने का जो अधिकार दिया जाए वह है एक निश्चित समय के लिए होना चाहिए। यदि धन का उपयोग इस समय के अंतर्गत नहीं किया जाता है तो उसे प्रयोग करने का अधिकार समाप्त हो जाएगा और केवल पुनः विनियोजन करने पर ही उसे व्यय किया जा सकेगा। सामान्य रूप से बजट अनुदान वार्षिक आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। वित्त वर्ष प्रारंभ होने से पूर्व ही बजट की मदें स्वीकार कर ली जाती है।
6. निश्चितता- बजट की विभिन्न मदें तथा अनुमान यथा संभव निश्चित एवं परिशुद्ध होने चाहिए। बजट के अनुमान पर्याप्त सूचनाओं पर आधारित हो, ठीक हो, व्यवस्थित हो और मूल्यांकन करने की दृष्टि से उपयुक्त हो। तथ्यों को गोपनीय रखकर या राजस्व का कम अनुमान लगाकर बजट की परिशुद्धता को समाप्त करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए।

7. ईमानदारी- विभिन्न कार्यक्रम उसी प्रकार क्रियान्वित किया जाये जिस प्रकार उन को बजट में प्रदर्शित किया गया है, अन्यथा बजट निरर्थक हो जाता है। बजट की रचना के समय जो उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं उन्हें प्राप्त करने के लिये ईमानदार एवं कार्यकुशल प्रशासन का होना नितांत आवश्यक है।

5.3.3 अन्य सिद्धान्त

एक स्वस्थ और अच्छे बजट की रचना में कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका से सम्बन्धित सिद्धान्तों के अलावा कुछ अन्य सिद्धान्त भी अपनाये जाने चाहिये-

1. सन्तुलित बजट- बजट सन्तुलित होना चाहिये। यह अनुमानित व्यय, अनुमानित आय तथा राजस्व से अधिक नहीं होना चाहिये। यद्यपि सरकारी वित्त में अधिक लोचशीलता होती हैं, क्यूँकि अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिये आवश्यक धन का प्रबंध किया जा सकता है। तथापि इसकी भी एक सीमा होती है, जो देश लगातार इसे सीमा को पार करता रहेगा वह दीर्घकाल में दिवालिया हो जाएगा और उसकी अर्थव्यवस्था चरमरा जाएगी। जब बजट में व्यय और राजस्व बराबर होते हैं तो इसे हम सन्तुलित बजट कहते है किन्तु जब व्यय राजस्व की अपेक्षा कम होता है तो इसे आधिक्य या बचत बजट (Surplus Budget) कहा जाएगा और यदि व्यय अनुमानित राजस्व की अपेक्षा अधिक है तो उसे घाटे का बजट कहा जाएगा। यदि कभी घाटे का बजट बन ही जाता है तो कोई चिंता की बात नहीं होती है, किंतु निरंतर ऐसा होना राज्य के स्थायित्व और वित्तीय साख के लिए खतरनाक होता है। भारत के बारे में यही बात लागू हो रही है। अनवरत रूप से पेश किए जाने वाले घाटे के बजट ओं के कारण देश की अर्थव्यवस्था को गंभीर खतरों से जूझना पड़ रहा है।
2. मिश्रित बजट- स्वस्थ बजट का एक दूसरा सिद्धांत यह है कि वह विशुद्ध ना होकर मिश्रित होना चाहिए अर्थात प्राप्तियों तथा व्यय दोनों के सभी लेनदेन पूरी तरह से दिखाए जाने चाहिए, ना कि केवल उनकी विशुद्ध स्थिति को ही। इस नियम की अवहेलना करने पर वित्तीय प्रक्रिया अस्पष्ट हो जाएगी, वित्तीय नियंत्रण प्रभावहीन बन जाएगा और लेखे अपूर्ण बन जाएंगे। उदाहरण के लिए, यदि एक विभाग के व्यय का अनुमान ₹400000 है और आय का अनुमान ₹200000 है। यदि वह विशुद्ध बजट की रचना करें तो व्यवस्थापिका से केवल ₹200000 का अनुदान चाहेगा और इस प्रकार व्यवस्थापिका को अपने आधे व्यय पर नियंत्रण रखने से वंचित कर देगा।
3. बजट के दो भाग- बजट के दो भाग किए जाने चाहिए। एक भाग में चालू है और आए होनी चाहिए तथा दूसरे भाग में पूंजीगत भुगतान और प्राप्तियां होनी चाहिए। प्रथम भाग राजस्व बजट कहलायेगा और दूसरा भाग पूंजीगत बजट कहलाएगा। यदि इस प्रकार का

अंतर न किया गया तो समस्त आर्थिक चित्र धुंधला रह जाएगा। इसलिए दोनों भागों को अलग अलग रखा जाता है और अलग-अलग संतुलित किया जाता है।

4. बजट का नकदी आधार- बजट में आय और व्यय का अनुमान वर्ष की वास्तविक प्राप्ति या व्यय से संबंधित होने चाहिए। नकद बजट का काम यह है कि इसके आधार पर इस वित्तीय वर्ष के लेखों की अंतिम तैयारी वर्ष के समाप्त होते ही की जाती है। इस प्रणाली का दोष यह है कि वर्ष के लिए वित्तीय तस्वीर सही सही नहीं उभर पाती है। आगामी वर्षों में किए जाने वाले भुगतानों को हटाकर घाटे के स्थान पर वर्तमान वर्ष के बजट में अतिरेक की स्थिति दिखाई जा सकती है। यद्यपि बजट का राजस्व विभाग इस दोष से बचा रहता है, किंतु यह अंतिम लेखों की तैयारी और प्रस्तुतीकरण को विलंबित करता है। वित्तीय नियंत्रण की दृष्टि से विलंबित लेखों का अधिकतर मूल्य घट जाता है।
5. बजट तथा लेखों की समानता- बजट का एक अन्य सिद्धांत यह है कि इसका रूप लेखों के रूप से मिलता हुआ होना चाहिए। ऐसा करने से बजट की रचना में सुविधा होगी, बजट पर नियंत्रण रखा जा सकेगा और लेखों को भी ठीक प्रकार से रखा जा सकेगा। भारत में प्राक्कलन समिति द्वारा प्रस्तावित सुझावों पर विचार करने के बाद वित्त मंत्री बजट का रूप में निश्चित करता है।

5.4 विकासशील देशों में बजट की भूमिका

विकासशील देशों में बजट की भूमिका या उसके द्वारा संपादित कार्य औद्योगिक की तुलना में राशि विभिन्न काफी भिन्न प्रकृति के होते हैं। विकसित देशों में बजट के द्वारा समग्र मांग के सही स्तर को बनाए रखते हुए व्यापार सक्रिय उतार-चढ़ाव को न्यूनतम किया जा सकता है। विकासशील देशों में बेरोजगारी की प्रकृति चक्रीय नहीं होती है, बल्कि चिरकालिक (Chronic) है, जो अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक अवरोध का परिणाम है। इसलिए इसका समाधान समग्र मांग में वृद्धि नहीं है, बल्कि पूंजी निर्माण तथा विनियोग के स्तर में वृद्धि है। इसलिए इन देशों में बजट विकास योजना का एक अभिन्न अंग हो जाता है।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की अपेक्षा बजट नीति (राजकोषीय नीति) की भूमिका अधिक सबल है। इन देशों में वित्तीय बाजार या तो अनुपस्थित है या अच्छी तरह विकसित नहीं है। अर्थव्यवस्था के एक बड़े भाग में मुद्रा का प्रयोग नहीं होता है। अतः मौद्रिक नीति की कार्य क्षमता घट जाती है। दूसरी ओर, सार्वजनिक क्षेत्र को आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जाती है। विकासशील देशों के समक्ष मुद्रास्फीति तथा शेष भुगतान की समस्याएं भी काफी गंभीर हैं। इन सभी मसलों पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि मौद्रिक नीति की तुलना में बजट नीति अधिक कारगर होगी।

5.5 बजट के कार्य

बजट निर्माण प्रशासकीय व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है। बजट निर्माण को यदि प्रशासकीय व्यवस्था का हृदय या प्राण कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बजट के कार्यों या भूमिका कि यदि बात की जाए तो, बजट समन्वय के एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में काम करता है। नकारात्मक रूप में यह आपको भी को कम करने की एक प्रभावशाली युक्ति भी है। ये समस्त उद्देश्य दूसरे अनेक तरीकों से प्राप्त किए जाते हैं, जैसे- अनुमानों का औचित्य, विनियोजित निधियों के प्रयोग का निरीक्षण, व्ययों की दर एवं समय निश्चित करना आदि। बजट बनाने की क्रिया व्यय के प्रति जागरूकता की भावना का संचार करती है। उसे ऐसा करना भी चाहिए, क्योंकि इस भावना को प्रशासन के सभी स्तरों, यहां तक कि प्रवर्तन स्तर (operating level) तक में प्रविष्ट करना चाहिए। सरकार जिस धनराशि को व्यय करना चाहती है उसका पूर्ण औचित्य होना चाहिए। बजट प्रक्रिया इस महत्वपूर्ण कार्य का संपादन करती है। अंत में, बजट निर्माण की प्रक्रिया नीतियों तथा कार्यक्रमों के मूल्यांकन का एक अवसर प्रदान करती है। यह हमें अनावश्यक क्रियाकलापों की सूचना देती है तथा ऐसे कार्यों को समाप्त करने का अवसर प्रदान करती है। इस अर्थ में यह पूर्व-लेखा परीक्षण है। इस प्रकार, बजट निर्माण की प्रक्रिया अनुशासन सिखाती है और अनुशासन की रूपरेखा बनाती है तथा कार्यक्रम और योजना के साथ कंधा मिलाकर चलती है।

बजट के विभिन्न कार्यों को समझने से पहले बजट के महत्व पर भी अधिक दृष्टि डालें तो अनेक विचारकों ने सरकारी प्रशासन के लिए वित्तीय प्रशासन या विद्या जिसे बजट भी कहा जा सकता है कि महत्व को अलग-अलग प्रकार से इंगित किया है- कौटिल्य ने बजट के महत्व को बताते हुए कहा कि "सारे काम वित्त पर निर्भर हैं। अतः सर्वाधिक ध्यान कोषागार पर देना चाहिए।" इसी प्रकार हूवर आयोग ने भी वित्तीय प्रशासन को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि "वित्तीय प्रशासन आधुनिक सरकार का मर्म है।" विलोबी ने भी बजट को प्रशासन का अभिन्न और अनिवार्य औजार बताया है। डिमॉक ने कहा कि "वित्तीय प्रशासन के सभी पक्षों में से बजट निर्माण सबसे ज्यादा नीति संबंधी प्रश्न उठाता है।" लॉयड जॉर्ज ने कहा कि "सरकार वित्त है।" मार्क्स ने बजट के महत्व को बताते हुए कहा कि "प्रशासन में वित्त वातावरण में ऑक्सीजन की तरह ही सर्वव्यापी है।"

इस प्रकार यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि प्रशासन के सारे काम बजट के द्वारा ही संभव होते हैं। बजट प्रशासन में हर प्रकार की प्रगति लाने और जनता को सभी प्रकार की सेवाएं, जो सरकार के द्वारा प्रदान की जानी है, को जनता को उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस पूरे विवरण के अलावा भी यदि बजट के कार्यों को बिंदुओं में प्रदर्शित किया जाए तो वह कुछ इस प्रकार से हैं-

1. **योजना का निर्माण-** बजट का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह होता है कि वह आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए सरकार की एक कार्य-योजना का निर्माण करवाता है। इस कार्य-योजना में सरकार द्वारा अपनी दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन सभी प्रकार की अवधि के लिए उद्देश्य का निर्धारण किया जाता है, प्राप्त किए जाने वाले लक्षणों को सुनिश्चित किया जाता है, तथा संसाधनों की एवं योजनाओं की प्राथमिकता का भी निर्धारण किया जाता है।
2. **उत्तरदायित्व की स्थापना-** बजट विधायिका के प्रति कार्यपालिका की विधि एवं न्यायिक उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। इसके साथ ही प्रशासनिक पद सोपान में बजट वरिष्ठों के प्रति अधीनस्थों के उत्तरदायित्व को भी सुनिश्चित करता है। उत्तरदायित्व बजट निष्पादन तथा योजना क्रियान्वयन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और यही कारण है कि यह सरकारी बजट का एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है।
3. **नियंत्रण-** प्रजातंत्र में नियंत्रण नए आयाम ग्रहण कर लेता है और बहुत सारी कठिन समस्याओं को जन्म देता है। एक पूर्णत: प्रतिनिधि सरकार का मुख्य सरोकार वित्त व्यवस्था के संचालन तथा रूपांकन में उपयुक्त परिवर्तन लाना होता है, जिससे की कार्यपालिका की व्यवस्थापिका जो कीविधायिका, जो कि राजस्व निर्धारित करने वाली तथा वित्त प्रदान करने वाला प्राधिकरण है के प्रति जवाबदेही बनी रहे। विधायी नियंत्रण का अर्थ होता है कि व्यवस्थापिका वास्तविक रूप में ना केवल औपचारिक रूप से वार्षिक बजट द्वारा नीतियों तथा कार्यक्रमों के निर्माण, उनकी समीक्षा, अनुमोदन तथा कार्यान्वयन में सम्मिलित हो सके बल्कि इसका यह भी तात्पर्य होता है कि, व्यवस्थापिका प्रभावी रूप से कार्यपालिका के निष्पादन एवं उपलब्धियों को उसके द्वारा कार्यपालिका के निर्धारित उद्देश्य एवं नीतियों से संबंधित कर सकें। व्यवस्थापिका के सदस्य ना तो सदैव प्रशासन की जटिलताओं से अवगत होते हैं और ना ही वे संक्रिया की विशालता के पैमाने को समझ सकते हैं तथा उसके लिए आवश्यक वित्त की तो कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। यही कारण है कि विधान सभाओं को कार्यपालिका पर नियंत्रण की अपनी वैधानिक शक्ति के प्रयोग हेतु सहायता के लिए विभिन्न युक्तियों का उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बजट प्रशासन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है और बजट के द्वारा ही सरकारी विभागों की विभिन्न गतिविधियों को एक योजना के अधीन लाकर उनको एक ही कृत करने का काम करता है जिसके कारण प्रशासनिक प्रबंधन एवं समन्वय आसान बन जाता है। बजट सामाजिक और आर्थिक नीति के उपकरण के तौर पर भी काम करता है जिसका कार्य-निर्धारण, वितरण और स्थिरीकरण है।

5.6 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि बजट संबंधी प्रक्रिया को प्रशासन का केंद्र बिंदु माना जाता है। बजट कार्यवाही की एक योजना है जो आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए मुख्य कार्यपालिका को प्रतिबिंबित करती है। बजट को एक ऐसे एक प्रलेख के रूप में भी जाना जा सकता है, जिसके माध्यम से मुख्य कार्यकारी, कोष एकत्र करने वाले तथा कोष स्वीकृत करने वाले प्राधिकरण के समक्ष इस बात का पूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है कि विगत पूर्ण हुए वर्ष में उसने तथा उसके अधीनस्थों ने मामलों का किस प्रकार से संचालन किया है और वर्तमान राजकोष की स्थिति क्या है। बजट विगत अनुभव के आधार पर बनाया जाता है तथा इस प्रकार की योजना तथा कार्यक्रम व्यवस्थित तथा संगठित होने चाहिए तथा कार्यान्वयन के लिए तैयार होने चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्रशासकीय इंजन का ईंधन किसे माना गया है?
2. बजट की उत्पत्ति किस शब्द से हुई है?
3. इंग्लैंड में प्रारंभिक बजट के दस्तावेज को किस नाम से पुकारा जाता था?
4. "बजट एक ऐसा परिपत्र है जिसमें सार्वजनिक राजस्व और व्यय की प्रारंभिक रोज योजना प्रस्तुत की जाती है" किसके द्वारा कहा गया?
5. बजट की किन्हीं दो सिद्धांतों का नाम लिखिए।

5.7 सारांश

बजट एक ऐसा प्रलेख है जो सरकार द्वारा संसद के सम्मुख प्रतिवर्ष एक निर्धारित तिथि पर अथवा उसके पश्चात प्रस्तुत किए जाते हैं। इन प्रलेखों में इस बात का वर्णन होता है कि आने वाले वित्तीय वर्ष में सरकार का अनुमानित व्यय क्या होगा तथा उसी काल के मध्य सरकार की आय क्या होगी। यह आय-व्यय वर्तमान लागू नियमों के अधीन होते हैं और यदि सरकार द्वारा कराधान प्रस्तावों पर विचार किया गया है तो इनके परिणाम स्वरूप बजट का प्राथमिक उद्देश्य व्यापक सूचना को प्रकट करना भी हो सकता है, ताकि सरकार की संपूर्ण वित्तीय स्थिति का परिचय मिल सके और जिसके द्वारा संसद इन वित्तीय कार्यक्रमों के प्रभाव को देश की अर्थव्यवस्था पर पूर्ण तथा समुचित रूप से आँक सके।

5.8 शब्दावली

उत्तरदायित्व- जवाबदेही, नियतकालीन- नियत समय का, कोषागार- खजाना, भंडार, धन दौलत रखने की जगह, मितव्ययता- नियत सीमा के अंतर्गत खर्च करने की प्रक्रिया, विनियोजन- विनियोग करना, द्रव्य- धन

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वित्त को, **2.** फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'बाजते' से, **3.** Doomsday Book या Domesday Book, **4.** रेने स्टार्म, **5.** संतुलित बजट, मिश्रित बजट

5.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा,डॉ. प्रभुदत्त, 2007, प्रशासनिक सिद्धांत, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. अवस्थी, अवस्थी,2014, भारत में लोक प्रशासन,लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
3. कटारिया, सुरेंद्र, 2009, भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, नई दिल्ली।

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह,एस. के., 2009, लोक वित्त के सिद्धांत तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बजट के अर्थ एवं परिभाषा पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. बजट के सिद्धांतों पर एक लेख लिखिए।

बजट के कार्यों की व्याख्या कीजिए।

इकाई - 6 वित्त आयोग

इकाई की सरंचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 वित्त आयोग की संरचना एवं कार्य
6.3 14 वां वित्त आयोग
6.4 15 वां वित्त आयोग
6.5 16 वां वित्त आयोग
6.6 वित्त आयोग के समक्ष समकालीन चुनौतियाँ
6.7 अभ्यास प्रश्न
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 अभ्यास प्रश्न उत्तर
6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.12 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

स्वतंत्रता के बाद संविधान निर्माताओं ने भारत को संविधान के माध्यम से एक संघीय स्वरूप प्रदान किया और केंद्र और राज्यों के मध्य सत्ता का बंटवारा किया। संविधान की सातवीं अनुसूची में तीन सूचियां विद्यमान हैं, संघ सूची जिसपर केवल केंद्र सरकार कानून बना सकती है जैसे रक्षा,विदेशी मामले,बैंकिंग आदि है, राज्य सूची जिसपर राज्य सरकार कानून बना सकती हैं जैसे पुलिस,स्थानीय स्वशासन,सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि, समवर्ती सूची यह वह सूची होती है जिसपर दोनों सरकारे कानून बना सकती हैं जैसे शिक्षा,वन आदि। इस प्रकार के विभाजन का प्रमुख उद्देश्य यह था कि जो विषय राष्ट्रीय महत्त्व के हैं उनको केंद्र को दिया जाए और जो विशेष क्षेत्रीय आवश्यकताओं के महत्त्व के हैं उनको राज्यों को दिया जाए, लेकिन इस प्रकार के विभाजन में एक विसंगति यह देखने के लिए मिलती है कि केंद्र के पास वित्तीय संसाधन अर्थात कर वसूलने की शक्ति राज्यों से ज्यादा है।महत्वपूर्ण कर स्रोत जिनसे बड़ी मात्रा में राजस्व की प्राप्ति होती है जैसे आयकर,कॉर्पोरेट कर,सीमा शुल्क आदि केंद्र के पास है। वहीं राज्यों के पास ऐसे वित्तीय संसाधन नहीं हैं जिनसे बड़ी मात्रा में कर की प्राप्ति होती है। कर प्राप्ति के सापेक्ष व्यय दायित्व की बात करें तो राज्यों के पास केंद्र की अपेक्षा व्यय दायित्व ज्यादा है। व्यय दायित्व से तात्पर्य यह है कि राज्य या केंद्र की क्या क्या जिम्मेदारियां हैं जैसे राज्यों के पास स्वास्थ्य,सार्वजनिक सुरक्षा संबंधी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इस प्रकार के ऊर्ध्वाधर असंतुलन को खत्म करने के लिए केंद्र अपने राजस्व का एक हिस्सा राज्यों को हस्तांतरित करता है। इस प्रकार के हस्तांतरण को ऊर्ध्वाधर हस्तांतरण कहते हैं।

ऊर्ध्वाधर असंतुलन के अलावा विभिन्न राज्यों के बीच आय,संसाधनों और विकास के स्तर में भी अंतर देखने को मिलता है जिसे क्षेत्रीय असंतुलन कहा जाता है। क्षैतिज असंतुलन को खत्म करने के लिए सभी राज्यों में समान वितरण नहीं किया जा सकता हैं। इसके लिए असमान क्षैतिज हस्तांतरण किया जाता है। इस प्रकार के क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर असंतुलन को को कम करने के संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 में वित्त आयोग का प्रावधान किया है। वित्त आयोग का मुख्य दायित्व केंद्र और राज्यों के मध्य क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर हस्तांतरण के सिद्धांत का निर्धारण करना है।अनुच्छेद 281 के अनुसार आयोग की रिपोर्ट को राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखता है। आयोग की सिफारिश बाध्यकारी नहीं होती है जबकि परामर्शकारी होती है ।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात उपरान्त आप समझ पाएंगे कि-

1.वित्त आयोग भारत के लिए क्यों आवश्यक है

2.वित्त आयोग की संरचना क्या है

3.14,15 में 16 वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशें क्या क्या है

4.वर्तमान समय में वित्त आयोग के समक्ष कौन कौन सी चुनौतियाँ है

6.2 वित्त आयोग की संरचना एवं कार्य

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 में आयोग के गठन, संरचना एवं कार्यों का उल्लेख है।

6.2.1 आयोग का गठन

राष्ट्रपति को अधिकार है कि वो प्रत्येक पाँच वर्ष के अंतराल में एक वित्त आयोग का गठन करें यदि राष्ट्रपति को लगता है कि पाँच वर्ष पूर्ण होने से पहले ही परिस्थितियां बदल गई है तो वह वह इससे पहले भी इस आयोग का गठन कर सकते है। यह एक संवैधानिक संस्था है लेकिन वित्त आयोग एक स्थायी संस्था नहीं है । हर नए आयोग का गठन एक नई अधिसूचना के जरिए होता है।

6.2.2 आयोग की संरचना

आयोग में कुल पांच सदस्य होते हैं – एक अध्यक्ष और चार सदस्य ।

एक अध्यक्ष

ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिससे सार्वजनिक मामलों का अनुभव हो।

चार सदस्य

चार सदस्य निम्नलिखित क्षेत्रों से लिए जाते हैं

1.किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या इस पद की योग्यता का कोई व्यक्ति

2.सरकारी वित्त और लेखा जोखा मामलों का विशेषज्ञ

3..प्रशासन और वित्तीय मामलों का अनुभवी व्यक्ति

4.अर्थशास्त्र का विशेष जानकार व्यक्ति

6.2.3 आयोग के कार्य

अनुच्छेद 280(3) के अंतर्गत वित्त आयोग को निम्नलिखित पांच कार्य सौंपे गए हैं

1.वे कर जिसका बंटवारा केंद्र और राज्य के मध्य किया जाता है उन करो में से कितना हिस्सा राज्यों को दिया जाना है और कितना केंद्र को अपने पास रखना है,इसका निर्धारण वित्त आयोग द्वारा किया जाता है ।

2.राज्यों के मध्य करों के बंटवारे के लिए क्षैतिज वितरण सूत्र का निर्धारण वित्त आयोग द्वारा किया जाता है। इस सूत्र का निर्धारण आयोग जनसंख्या,क्षेत्रफल, आयदूरी,वन क्षेत्र, जनसांख्यिकीय प्रदर्शन,कर प्रयास आदि मापदंडों के आधार पर करता है

3.संविधान के अनुच्छेद 275 के अंतर्गत केंद्र को यह अधिकार है कि वह राज्यों को अनुदान सहायता प्रदान करें लेकिन यह अनुदान सहायता एक निश्चित आधार पर दिया जाता है जिसका निर्धारण वित्त आयोग द्वारा किया जाता है।

4.राज्य के वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर केंद्रीय वित्त आयोग,राज्य के समेकित निधि में अतिरिक्त धन जोड़ने का सुझाव दे सकता है। यह अतिरिक्त धन या तो केंद्र से अनुदान के रूप या राज्य के कर-गैरकर राजस्व से या फिर उधारी से आ सकता है। स्थानीय निकायों के पास स्वयं के राजस्व स्रोत सीमित होते हैं। उन्हें अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए राज्य

सरकार से धन की आवश्यकता होती है। केंद्रीय वित्त आयोग यह देखता है राज्यों के पास इतना धन है कि नहीं जिससे वह स्थानीय निकाय पर्याप्त धन का हस्तांतरण कर सके,अगर नहीं है तो वह पर्याप्त सुझाव देता है कि किस प्रकार राज्य की समेकित निधि को बढ़ाया जा सकता है। केंद्रीय वित्त आयोग यह स्वयं निर्धारित नहीं कर सकता कि किस स्थानीय निकाय को कितना धन हस्तांतरित करना है।

5. राष्ट्रपति देश की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ करने के लिए वित्त आयोग को कोई भी अन्य विषय जैसे राजकोषीय समेकन, सार्वजनिक ऋण प्रबंधन,आपदा प्रबंधन का वित्तपोषण,सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सुधार आदि दे सकते है।

6.2.4 अनुच्छेद 281 के तहत रिपोर्ट की प्रस्तुति

आयोग अपनी सिफारिशों की रिपोर्ट राष्ट्रपति महोदय को सौपता है। राष्ट्रपति रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद उसे संसद के दोनों सदनों में रखवाते हैं। सिफारिशों के साथ एक व्याख्यात्मक ज्ञापन भी रखा जाता है जिसमें यह स्पष्ट किया जाता है कि सरकार ने आयोग की कौन कौन सी सिफारिशों को स्वीकार किया है और किन सिफारिशों को आंशिक रूप से स्वीकार किया है, किन्हे अस्वीकार किया है और उसके पीछे कौन से कारण विद्यमान थे।

6.2.5 सलाहकारी प्रकृति

वित्त आयोग की सिफारिशें कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं होती बल्कि ये सलाहकारी होती है। ऐतिहासिक परंपरा यह रही है कि सरकारें लगभग सभी महत्वपूर्ण सिफारिशें मान लेती है।

वित्त आयोग की सूची

वित्त आयोग	गठन वर्ष	प्रतिवेदन वर्ष	प्रतिवेदन वर्ष	अध्यक्ष
पहला	1951	1952	1952-57	के सी नियोगी
दूसरा	1956	1957	1957-62	के संथानम
तीसरा	1960	1961	1962-66	एके चंद्रा
चौथा	1964	1965	1966-69	डॉ पी वी राजमन्नार
पांचवा	1968	1969	1969-74	महावीर त्यागी
छठा	1972	1973	1974-79	ब्रह्मानंद रेड्डी
सातवाँ	1977	1978	1979-84	जे.एम.रौलट
आठवा	1983	1984	1984-89	वाई.वी.चौहान

नवां	1987	1989	1990-95	एन.के.पी.साल्वे
दसवाँ	1992	1994	1995-2000	के.सी.पंत
ग्यारहवाँ	1998	2000	2000-05	ए.एम.खुसरो
बारहवाँ	2002	2004	2005-10	सी रंगराजन
तेरहवाँ	2007	2009	2010-15	विजय केलकर
चौदहवाँ	2013	2014	2015-20	डॉ. वाई.वी. रेड्डी
पन्द्रहवाँ	2017	2020,2021	2020-21 2021-26	श्री एन.के.सिंह
सोलहवाँ	2023	2026	2026-31	डॉ. अरविंद पनगढ़िया

6.3 14 वां वित्त आयोग

चौदहवें वित्त आयोग का गठन राष्ट्रपति जी द्वारा 2 जनवरी 2013 को किया गया था। आयोग के अध्यक्ष डॉ. वाई.वी. रेड्डी (भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर) थे। आयोग ने अपनी सिफारिशों की रिपोर्ट दिसम्बर 2014 में राष्ट्रपति को सौपी थी। आयोग की सिफारिशे 1 अप्रैल 2015 से 31 मार्च 2020 तक की अवधि के लिए लागु की गयी थी।इनकी प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं

1. केंद्र से राज्यों को हस्तांतरण

केंद्र द्वारा एकत्रित कुल करों (सेस और अधिभार को छोड़कर) में से राज्यों का हिस्सा 32% से बढ़ाकर 42% कर दिया गया।

2. राज्यों के मध्य कर बंटवारे के मापदंड

जनसंख्या(1971)	17.5%
जनसंख्या (2011)	10%
आय दूरी	50%
क्षेत्रफल	15%
वन क्षेत्र	7.5%

3.स्थानीय निकायों के लिए ये अनुदान

14 वें वित्त आयोग ने स्थानीय संस्थाओं को मजबूत बनाने के लिए वर्ष 2015 से 2020 की अवधि के लिए कुल 2,87,436 करोड़ की बड़ी राशि अनुदान के रूप में देने की सिफारिश की थी ।इसमें लगभग 2,00,292.2 करोड़ ग्राम पंचायतों के लिए तथा ₹87,143.80 करोड़ नगर निकायों के लिए निर्धारित किए गए । आयोग ने इन दोनों को दो भागों में विभाजित किया । मूल अनुदान यह राशि बिना किसी विशेष शर्त के साथ दी जाती है ताकि स्थानीय निकाय अपनी आवश्यकताओं के अनुसार इसका उपयोग कर सकें। पंचायतों को कुल अनुदान का 90% मूल अनुदान के रूप में दिया गया। नगर निकायों को कुल अनुदान का 80% मूल अनुदान के रूप में दिया गया।
प्रदर्शन अनुदान के तहत आयोग ने इस प्रकार के अनुदान देने के लिए कुछ शर्तों और प्रदर्शन को जोड़ने का सुझाव दिया है। पंचायतों के लिए 10% राशि प्रदर्शन अनुदान के रूप में तथा नगर निकायों को कुल अनुदान का 20% प्रदर्शन अनुदान के रूप में दिया गया है

3.राजस्व घाटा अनुदान

14वे वित्त आयोग ने आंध्र प्रदेश, केरल, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, असम, नागालैंड, मिजोरम, त्रिपुरा, मणिपुर, मेघालय समेत कुल 11 राज्यों को राजस्व घाटा अनुदान के रूप में कुल 1.94 लाख करोड़ देने की सिफारिश की थी।

4.राजकोषीय नियम

14वें वित्त आयोग ने केंद्र के लिए 2016-17 से लेकर आयोग की पूरी अवधि तक(2019-20) तक के लिए राजकोषीय घाटे की सीमा सकल घरेलु उत्पाद का 3% रखा है। राज्यों के लिए यह सीमा उनके राज्यों के सकल घरेलु उत्पाद(GSDP) को 3% होना चाहिए । आयोग के अनुसार, यदि किसी राज्य का कुल ऋण उसके सकल राज्य घरेलू उत्पाद (GSDP) के 25% से कम हो तो राज्यों को इस 3% सीमा के अतिरिक्त 0.25% की छूट मिलेगी । यदि ब्याज भुगतान उसके राजस्व प्राप्तियों के 10% से नीचे हो तो राज्यों को राजकोषीय घाटे की सीमा में 0.25% की अतिरिक्त छूट मिलेगी । यदि कोई राज्य इन दोनों ही परिस्थितियों को पूर्ण करता है तो उसे इन दोनों को मिलकर राजकोषीय घाटे की सीमा में छूट प्रदान की जाएगी अर्थात राज्य सकल घरेलु उत्पाद GSDP) का 3.5% । इसका उद्देश्य वित्तीय रूप से सक्षम और अनुशासित राज्यों को विकास कार्यों के लिए अधिक संसाधन उपलब्ध कराना है।

5.जीएसटी मुआवज़ा (GST Compensation to States)

14वें वित्त आयोग (2015-20) ने अपनी रिपोर्ट में GST (वस्तु एवं सेवा कर) को लागू करने के वित्तीय प्रभावों का आकलन किया था। आयोग को इस बात का अंदेशा था कि कर व्यवस्था में इस बड़े बदलाव से कई राज्यों को अस्थायी रूप से राजस्व की हानि का सामना करना पड़ सकता है।

इसी को ध्यान में रखते हुए आयोग ने मुआवजा के लिए एक योजना का निर्माण किया था ।जिसका विवरण निम्नलिखित है –

वर्ष	मुआवजा दर (राजस्व हानि का %)
प्रथम वर्ष	100%
द्वितीय वर्ष	100%
तृतीय वर्ष	100%
चतुर्थ वर्ष	75%
पंचम वर्ष	50%

जीएसटी (GST) 1 जुलाई 2017 को लागू हुआ। इससे पहले ही 14वें वित्त आयोग ने यह अनुमान लगा लिया था कि टैक्स व्यवस्था बदलने से कई राज्यों को अस्थायी नुकसान हो सकता है।

6.4 15वें वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशें

भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति के उपरांत नवम्बर 2017 में श्री एन.के.सिंह की अध्यक्षता में 15 वे वित्त आयोग का गठन किया गया था। आयोग ने वित्तीय वर्ष 2020-21 के लिए सिफ़ारिशो की रिपोर्ट फरवरी 2020 में संसद में प्रस्तुत की वही 2021-26 की अवधि के लिए सिफ़ारिशो की अंतिम रिपोर्ट 1 फरवरी 2021 के दिन संसद में प्रस्तुत की गयी । 15वे वित्त आयोग द्वारा की गयी प्रमुख सिफारिशे इस प्रकार है

1.केंद्र-राज्यों के बीच करों का बंटवारा

15 वे वित्त आयोग ने 14 वे वित्त आयोग की तुलना में राज्यों की केंद्रीय करो में हिस्सेदारी 42% से घटाकर 41% कर दिया । 1 प्रतिशत की इस कमी का मुख्य कारण जम्मू कश्मीर के पुनर्गठन से बने दो केंद्रशासित प्रदेश थे । इन केन्द्रशासित प्रदेशो के वजह से केंद्र की जिम्मेदारियों में बढ़ोत्तरी हुयी थी ।

2. क्षैतिज बंटवारे के मानदंड

15वें आयोग ने राज्यों के बीच करों का बँटवारा करते समय दो बिल्कुल नए मानदंड (जनसांख्यिकीय प्रदर्शन और कर एवं राजकोषीय प्रयास) जोड़े थे। इसका उद्देश्य सिर्फ गरीब या बड़े राज्यों को फायदा पहुँचाना नहीं था, बल्कि बेहतर काम करने वाले राज्यों को पुरस्कृत करना भी था।

आय दूरी	45%
जनसंख्या (2011)	15%
क्षेत्रफल	15%
वन एवं पारिस्थितिकी	10%
जनसांख्यिकीय प्रदर्शन	12.5%
कर एवं राजकोषीय प्रयास	2.5%

जनसांख्यिकीय प्रदर्शन से तात्पर्य यह है की जिन राज्यों ने कुल प्रजनन दर(TFR) कम की है उन्हें अतिरिक्त हिस्सा दिया जाएगा और जो राज्य कर एवं राजकोषीय प्रयास के तहत कर वसूली बढाते है उन्हें भी लाभ मिलेगा।

3.राजस्व घाटा अनुदान (Revenue Deficit Grant)

15वे वित्त आयोग ने राजस्व घटा अनुदान के रूप में 2021-22 से 2025-26 तक की अवधि के लिए लगभग 2.94 लाख करोड़ रुपए की अनुशंसा की थी। यह सहायता 17 राज्यों को प्रदान की गई लेकिन 2025-26 वित्तीय वर्ष तक आते आते यह राशि शून्य हो गई अर्थात प्रत्येक वर्ष घटते घटते यह राशि शून्य हो गई।

4.स्थानीय निकायों के लिए स्वास्थ्य अनुदान

भारत में स्थानीय स्वशासन की वित्तीय स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। इस स्थिति को मजबूत करने के लिए 15 वे वित्तीय आयोग ने 2021-22 से 2025-26 तक की अवधि के लिए लगभग 4.36 करोड़ रुपए स्थानीय निकाय अनुदान के रूप में अनुशंसित किए थे।इसमें ग्रामीण स्थानीय निकाय के लिए लगभग 2.37 लाख करोड़ रुपए, शहरी स्थानीय निकाय के लिए लगभग 1.21 लाख करोड़ रुपए एवं स्थानीय निकायों को स्वास्थ्य अनुदान के रूप में लगभग 70051 करोड़ रुपये अनुशंसित किए थे।

5. क्षेत्र-विशिष्ट अनुदान(2021-22 से 2025-26 तक की अवधि के लिए)

1.कृषि सुधार -45000 करोड़

2. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY) -27,539 करोड़

3. स्कूल शिक्षा के लिए 4,800 करोड़ ।

4.उच्च शिक्षा के लिए 6143 करोड़।

5.न्यायपालिका के लिए 10,425 करोड़।

6.सांख्यिकी के लिए 1175 करोड़ रूपए।

7.आकांक्षी जिले और ब्लॉक के लिए 3150.

6. राजकोषीय लक्ष्य

महामारी (COVID-19) के दबाव को देखते हुए 15वें आयोग ने केंद्र सरकार के राजकोषीय घाटे (Fiscal Deficit) को पहले के 3% से बढ़ाकर 2025-26 तक GDP का 4% रखने की अनुमति दी। राज्यों के वित्तीय प्रबंधन को संतुलित रखने के लिए आयोग ने राजकोषीय घाटे की सीमा क्रमशः कम करने का सुझाव दिया। 2021-22 में यह सीमा GSDP के 4%, 2022-23 में 3.5% तथा 2023-26 की अवधि में 3% निर्धारित की गई।

7. आपदा प्रबंधन

15वे वित्त आयोग ने 2021-26 की अवधि के लिए राज्य आपदा जोखिम प्रबंधन कोष (SDRMF) में कुल 160153 करोड़ रूपए की राशि देने की सिफारिश की है। इस कोष में केंद्र सरकार 1,22,601 करोड़ और राज्य सरकार 37,552 करोड़ का योगदान करेगी। राज्य आपदा जोखिम प्रबंधन कोष (SDRMF) की कुल धनराशि का 80% यानि 128122 करोड़ रूपए राज्य आपदा राहत कोष (SDRF) को जायेंगे और 20% यानि 32031 करोड़ रूपए राज्य आपदा मितिगेशन कोष (SDMF) को जायेंगे। हिस्सेदारी का अनुपात सामान्य राज्यों के लिए 75:25 एवं पूर्वोत्तर एवं पहाड़ी राज्यों के लिए 90:10 रखा गया है।

6.5 16वाँ वित्त आयोग (2026-31)

डॉ. अरविंद पनगढ़िया की अध्यक्षता वाले 16वें वित्त आयोग ने 2026-31 की अवधि के लिए अपनी रिपोर्ट 1 फरवरी 2026 को संसद में प्रस्तुत की गयी। इसकी प्रमुख सिफारिशे इस प्रकार है -

1.केंद्र-राज्यों के बीच करों का बंटवारा

16 वे वित्त आयोग ने 15 वे वित्त आयोग के तरह ही राज्यों की केंद्रीय करों की हिस्सेदारी को 41% प्रतिशत ही रखा। सातवें वित्त आयोग के बाद ऐसा पहली बार है कि किसी वित्त आयोग ने राज्यों के हिस्से में कोई बदलाव न किया हो।

2.क्षैतिज बंटवारे के मानदंड

आयोग ने क्षैतिज बंटवारे के मानदडों में बड़ा बदलाव किया है। सबसे महत्वपूर्ण बदलाव में कर प्रयास मानदंड हटाकर 'GDP योगदान' मानदंड लाना था।

आय दूरी	42.5%
जनसंख्या (2011)	17.5%
क्षेत्रफल	10%
वन एवं पारिस्थितिकी	10%
जनसांख्यिकीय प्रदर्शन	10%
GDP योगदान	10%

आय दूरी निकालने के लिए तीन शीर्ष प्रति व्यक्ति सकल राज्य घरेलू उत्पाद(GSDP) वाले राज्यों के औसत और किसी राज्य के प्रति व्यक्ति GSDP का अंतर निकला जाता है। जिन राज्यों में यह अंतर ज्यादा होता है उन्हें अधिक हिस्सेदारी मिलती है ताकि समानता बनी रहे है। जीडीपी योगदान का मुख्य उद्देश्य उन राज्यों को प्रोत्साहित करना जिसने बड़ी अर्थ व्यवस्था विकसित की है।

3.राजस्व घाटा अनुदान पूरी तरह समाप्त

16 वाँ वित्त आयोग ऐसा पहला वित्त आयोग है जिसने राजस्व घाटा अनुदान को शून्य कर दिया है। आयोग का मानना है कोविड के बाद राज्यों का राजस्व घाटा काफी कम हो गया है और राज्यों को ये भी लगता है अगर हमारा राजस्व घाटा बढता है तो केंद्र की सहायता द्वारा उसकी पूर्ति हो जाएगी। 15वे आयोग ने राजस्व घाटे को कम करते-करते 2025-26 के वित्तीय वर्ष के लिए शून्य कर दिया था उसी रास्ते पर चलते हुए 16 वे वित्त आयोग ने राजस्व घाटा अनुदान को समाप्त कर दिया।

4.स्थानीय निकायों के लिए अनुदान

16वे वित्त आयोग ने 2026-27 से 2030-31 तक की अवधि के लिए कुल 791493 करोड़ रूपए स्थानीय सरकारों के लिए अनुशंसित किए थे। जिसमें ग्रामीण स्थानीय सरकारों के लिए 435236 करोड़ और शहरीय स्थानीय सरकारों के लिए 356257 करोड़ रुपए की अनुशंसा आयोग ने की है। ग्रामीण स्थानीय सरकारों को मिले 435236 करोड़ के अनुदान को दो भागों में बांटा गया एक मूल अनुदान(3,48,188 करोड़) और दूसरा प्रदर्शन अनुदान(87048 करोड़)। शहरी स्थानीय सरकारों को दिए गए लगभग 356257 करोड़ में से 290157 करोड़ को मूल अनुदान(2,32,125 करोड़) और प्रदर्शन अनुदान (58032 करोड़) में बांटा गया। शेष बचे 66100 करोड़ को विशेष अवसंरचना अनुदान (56100 करोड़) और शहरीकरण प्रीमियम (10000 करोड़) में बांटा गया है। इस अनुदान(ग्रामीणों के 435236 करोड़ और शहरों के 290157 करोड़) में मूल अनुदान 80% है। प्रदर्शन अनुदान जो कि 20% है इसे दो भागों में बांटा गया है

1. राज्य प्रदर्शन घटक
2. स्थानीय निकाय प्रदर्शन घटक

शहरी क्षेत्र के लिए दो नई विशेष सुविधाएँ

1.विशेष अवसंरचना घटक (Special Infrastructure Component) – 56,100 करोड़ रुपये आयोग ने मध्यम अकार के शहरों जिनकी जनसंख्या 10 लाख से 40 लाख के मध्य है उनपर विशेष ध्यान देते हुए उनके संसाधनों की कमी को दूर करने के प्रयास के तहत यह अनुदान देने की अनुशंसा की है। यह पैसा केवल व्यापक अपशिष्ट जल प्रबंधन प्रणाली (comprehensive wastewater management) बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इस घटक के तहत परियोजना लागत का 60% का योगदान केंद्र सरकार द्वारा दिया जायेगा और बाकि 40% राज्य सरकार और शहरी स्थानीय निकाय(ULB) द्वारा वहन किया जायेगा।

2. शहरीकरण प्रीमियम (Urbanisation Premium Grant)

इसके तहत उन शहरी निकायों को 10,000 करोड़ रुपए अनुदान के रूप में प्रदान किए जायेंगे जिनकी जनसँख्या 1 लाख से ज्यादा हो और इसके अन्दर आस पास के गावों का विलय किया जा रहा हो। इसके अंतर्गत राज्यों को एक स्पष्ट ग्रामीण से शहरी संक्रमण नीति बनानी होगी।

सभी स्थानीय अनुदानों को प्राप्त करने के लिए स्थानीय निकायों निम्नलिखित शर्तों के पूर्ण करना अनिवार्य है

1. संविधान के भाग IX (पंचायत) और भाग IX-A (नगरपालिका) के तहत राज्य में विधिवत गठित (निर्वाचित) स्थानीय निकाय होना चाहिए।

2. अनुदान वर्ष T में राज्य के सभी ग्रामीण स्थानीय निकाय(RLB) व शहरी स्थानीय निकाय(ULB) के T-1 के अस्थायी व T-2 के ऑडिटेड खाते (जिसमें ULB के लिए बैलेंस शीट, आय-व्यय व नकदी प्रवाह विवरण अनिवार्य हैं) ऑनलाइन सार्वजनिक होने चाहिए और यदि केवल कुछ निकाय ही शर्त पूरी करें तो राज्य को उसी अनुपात में अनुदान मिलेगा।

3. राज्य वित्त आयोग (SFC) का गठन नियमित रूप से हुआ हो और उसकी सिफारिशों पर राज्य ने कार्रवाई करते हुए इसकी कार्यवाही रिपोर्ट(ATR), राज्य वित्त आयोग की रिपोर्ट प्राप्त होने के 6 माह के भीतर राज्य विधानसभा में रखी गयी हो।

5. आपदा प्रबंधन

आयोग ने आपदा प्रबंधन के लिए सामान्य राज्यों के लिए केंद्र राज्य साझाकरण अनुपात 75:25 रखा वही उत्तरपूर्वी और हिमालयी राज्यों(NEH) के लिए 90:10 निर्धारित किया था। आयोग ने 2026-27 से 2030-31 तक की अवधि के लिए राज्य आपदा राहत कोष (SDRF) और राज्य आपदा मितिगेशन कोष (SDMF) में लिए कुल 204401 करोड़ रुपये आवंटित करने की अनुशंसा की है , जिसमें राज्य आपदा राहत कोष (SDRF) के लिए 80% और राज्य आपदा मितिगेशन कोष (SDMF) के लिए 20% की अनुशंसा की है।

6. राजकोषीय लक्ष्य

15वे वित्त आयोग ने केंद्र सरकार के लिए जो राजकोषीय घाटा लक्ष्य 4% रखा था, 16वे वित्त आयोग ने राजकोषीय घाटा लक्ष्य को 2030-31 तक GDP का 3.5% रखने की अनुशंसा की है। राज्यों के लिए राजकोषीय घाटा GSDP का 3% रखने की अनुशंसा की।

6.6 वित्त आयोग के समक्ष समकालीन चुनौतियाँ

1. उपकर और अधिभार की बढ़ती दिक्कत

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 270 में यह कहा गया है कि उपकर और अधिभार के द्वारा प्राप्त राजस्व विभाज्य कोष का हिस्सा नहीं होगा अर्थात उपकर और अधिकार से प्राप्त आय का बटवारा केंद्र राज्यों के साथ नहीं करेगा। केंद्र सरकार निरंतर उपकर और अधिभार को बड़ा रही है जिससे

केंद्र के कुल आय में इसका प्रतिशत निरंतर बढ़ रहा है। 2011-12 में केंद्र के सकल कर राजस्व का 10.4% उपकर और अधिभार से आता था जो 2019-20 में बढकर 20.2% हो गया था। एक तरफ 14 वे वित्त आयोग ने हिस्सेदारी को बढाकर 42 % कर दिया है लेकिन दूसरी तरफ विभाज्य कोष इस अनुपात में सिकुड़ रहा है। केंद्र जिस अनुपात में अपना कर राजस्व बड़ा रहा है उस अनुपात में विभाज्य कोष अब बढ़ता हुआ नहीं दिख रहा है। यह आयोग के समक्ष एक समस्या है।

2. असंतुलन को कम करने की समस्या

वित्त आयोग एक तरफ 'ऊर्ध्वाधर असंतुलन' को कम करने का प्रयास करता है तो दूसरी तरफ 'क्षैतिज असंतुलन' को। आयोग अक्सर छोटे राज्यों को ज्यादा देने का प्रयास करता है जिससे क्षैतिज असंतुलन कम हो सके। लेकिन आमिर राज्यों को यह लगता है कि केन्द्रीय करों में हमारा बड़ा योगदान है तो हमें कम क्यों मिलता है। यह वित्त आयोग के सामने एक बड़ी समस्या है जिसका सामना प्रत्येक आयोग को करना पड़ता है और हमें एक नया फार्मूला प्रत्येक आयोग के द्वारा देखने को मिलता है जिससे वह इस समस्या को करने का प्रयास करता है।

3. वित्त आयोग और नीति आयोग के बीच तालमेल की कमी

एक तरफ वित्त आयोग राज्यों के मध्य विभाज्य योग्य केन्द्रीय करो से बटवारा करता है और सहायता राशी के रूप में अनुदान देता है वही नीति आयोग विभिन्न योजनाओं के लिए अर्थात केन्द्रीय योजनाओं के राज्यों को पैसे देता है। ऐसे में यह देखा गया है एक एकीकृत दिशानिर्देश नहीं मिल रहे है।उदहारण के रूप में हम यह भी समझ सकते है कभी कभी केन्द्रीय योजनाओं में अपनी हिस्सेदारी पूर्ण करने के लिए राज्यों को ऋण भी लेना पड़ता है वही दूसरी तरफ आयोग यह भी सिफारिश करता है कि राज्य एक निश्चित सीमा ज्यादा ऋण न ले। तो ऐसी स्थिति में वित्त आयोग और नीति आयोग कार्यो में एकीकरण लाने की अत्यंत आवश्यकता है।

4. राज्य वित्त आयोगों की कमजोर स्थिति

73 वें और 74वें संविधान संशोधन ने राज्य वित्त आयोग के गठन को एक अनिवार्य प्रावधान बनाया था। लेकिन यह देखा जा रहा है अधिकांश राज्य समय समय पर इसके गठन को लेकर अनदेखी करते है और कभी कभी इनकी सिफ़ारिशो पर भी अमल नहीं किया जाता है। पंचायतों और नगरपालिकाओं के पास अपने वित्तीय संसाधन बहुत ही सीमित मात्रा में होते है। ऐसे में इन स्थानीय निकायों को केंद्र और राज्यों के अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है। राज्य वित्त आयोग के नियमित गठन और उनकी सिफ़ारिशो पर अमल न करने के कारण ये स्थानीय निकाय केंद्र-राज्य हस्तांतरण के लाभ से वंचित रह जाते है। 15 वे वित्त आयोग ने अपनी सिफ़ारिशो में यह साफ साफ कहा है स्थानीय निकायों को दिया जाने वाला अनुदान राज्यों को तभी मिलेगा जब वे नियमित रूप से राज्य वित्त आयोग का गठन करेंगे और उनकी सिफारिशों को लागू करेंगे।

5. राजकोषीय परिषद

वित्त आयोग यह सिफारिश तो कर सकता है कि राजकोषीय घाटा कितना होना चाहिए, लेकिन वह खुद उसे लागू नहीं कर सकता। 13वे वित्त आयोग ने सर्वप्रथम राजकोषीय परिषद् की स्थापना के लिए अनुशंसा की थी बाद में चौदहवें वित्त आयोग ने भी एक 'राजकोषीय परिषद' (Fiscal Council) बनाने की सलाह दी थी । इस निकाय का प्रमुख कार्य राजकोषीय अनुमान का विश्लेषण करना,राजकोषीय प्रदर्शन का मूल्यांकन करना एवं राजकोषीय नियमो का अनुपालन कराना है।लेकिन आज तक ऐसी कोई परिषद नहीं बनी।

6. न्यायिक समीक्षा का अभाव और राजनीतिक दखल

वित्त आयोग की सिफारिशें कानूनी तौर पर बाध्यकारी नहीं होतीं। सरकार उन्हें मानने से इनकार कर सकती है (हालाँकि उसे संसद में जवाब देना पड़ता है)। लेकिन अगर केंद्र सरकार आयोग के फॉर्मूले में बदलाव कर दे, या उसे लागू करने में देरी कर दे, तो राज्यों के पास जाने के लिए कोई संवैधानिक दरबार नहीं है। अदालतें भी इन मामलों में हस्तक्षेप नहीं करतीं, क्योंकि ये 'नीति' के मुद्दे माने जाते हैं।

6.7 अभ्यास प्रश्न

1.14वें वित्त आयोग द्वारा सुझाई गई जीएसटी (GST) मुआवज़ा प्रणाली के अनुसार, लागू होने के चौथे वर्ष राज्यों को होने वाले राजस्व नुकसान की कितनी प्रतिशत प्रतिपूर्ति केंद्र सरकार द्वारा दी जानी थी?

2.15वें वित्त आयोग ने 14वें आयोग की तुलना में राज्यों को केंद्रीय करों में हिस्सेदारी 42% से घटाकर कितनी कर दी?

3.15वें वित्त आयोग ने राज्यों के बीच क्षैतिज बंटवारे में 'जनसांख्यिकीय प्रदर्शन' (Demographic Performance) नामक नया मानदंड जोड़ा। इस मानदंड को कितना भार (वेटेज) दिया गया?

4.16वें वित्त आयोग के अनुसार, 'GDP योगदान' मानदंड को कुल कितना भार (वेटेज) दिया गया है?

5.वित्त आयोग के अध्यक्ष (Chairman) तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति किसके द्वारा की जाती है?

6.16वें वित्त आयोग के अध्यक्ष कौन हैं।

6.8 सारांश

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 में उल्लेखित वित्त आयोग न केवल केंद्र राज्य के मध्य बंटवारे के वित्तीय संसाधनों के बंटवारे का सिद्धांतकर है बल्कि संघीय ढांचे का संरक्षक भी है। 14वें, 15वें और 16वें वित्त आयोगों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संघवाद लगातार बदलती परिस्थितियों के अनुसार बदल रहा है चाहे वह उत्पाद और सेवाकर(gst) को लागू करने की दौर हो

या कोविड महामारी का दौर हो। आयोग अपनी सिफारिशों से लगातार संघवाद को मज़बूत कर रहा है। राज्यों की हिस्सेदारी कर पूल में 32% से 42% करके 14वे वित्त आयोग ने वित्तीय विकेंद्रीकरण को एक नई ऊँचाई तक पहुंचाया है।14 वे वित्त आयोग ने क्षैतिज हस्तांतरण में आय दूरी को 50 % का भार दिया जिससे पिछड़े राज्यों अधिक लाभ हो। इसी लाभ को 15 वे वित्त आयोग ने 45% और 16 वे वित्त आयोग ने 42.5% के साथ बनाए रखा। सभी आयोगों ने ये प्रयास किया है कि गरीब राज्यों को अधिक लाभ हो और देश में राज्यों के मध्य समानता का स्तर बढ़ाया जा सके लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आयोग ने अमीर और विकसित राज्यों को हाशिए पर डाल दिया हो । 16 वे वित्त आयोग ने जहां जीडीपी योगदान और 15वे वित्त आयोग ने कर और राजकोषीय प्रयास जैसे मानदंडों द्वारा अमीर राज्यों को पुरस्कृत करने का प्रयास किया। इन तीनों ही आयोगों ने वन आवरण या वन क्षेत्र को क्षैतिज हस्तांतरण में भार देकर पर्यावरणीय सरोकारों को वित्तीय नीति से जोड़ा ।

वित्त आयोग सिर्फ केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय संसाधनों का बंटवारा ही नहीं करता बल्कि यह नीति निर्माण, प्रशासनिक दक्षता और आर्थिक दक्षता लाने के लिए सिफारिशें देता है और राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह न केवल स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए सिफारिश करता है बल्कि यह चाहता है कि राज्य वित्त आयोग की भी स्थिति मजबूत हो और स्थानीय विकेंद्रीकरण के माध्यम से स्थानीय निकायों की स्थिति सुदृढ़ हो सके। वर्तमान परिपेक्ष्य में अगर हम देखे तो आयोग अब राज्यों को वित्तीय रूप से पोषित करने के साथ साथ उन्हें सक्षम बनाने पर जोर दे रहा है, जो एक सकारात्मक बदलाव है। इससे प्रकट होता है कि वित्त आयोग संविधान का एक सजीव एवं अनुकूलनीय अंग है, जो भारत को अधिक सशक्त, आत्मनिर्भर और उत्तरदायी संघीय ढाँचे की ओर अग्रसर कर रहा है। यह परिवर्तन सीधे तौर पर आम नागरिकों को मिलने वाली सेवाओं की गुणवत्ता को प्रभावित करेगा, और सेवाओं की यही गुणवत्ता किसी भी वित्तीय नीति की सफलता की वास्तविक कसौटी है।

6.9 शब्दावली

1.राजकोषीय घाटा- जब सरकार का कुल व्यय उसकी कुल आय से अधिक हो जाता है, तो इस अंतर को पूरा करने के लिए सरकार को जो उधार लेना पड़ता है, उसे राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit) कहा जाता है।

2.सकल राज्य घरेलू उत्पाद (GSDP)- इसका का अर्थ है किसी राज्य की भौगोलिक सीमा के भीतर एक वर्ष के दौरान तैयार की गई सभी अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के कुल मौद्रिक मूल्य को सकल राज्य घरेलू उत्पाद (GSDP) कहा जाता है।

3.अनुदान - अनुदान वह वित्तीय सहायता है जो सरकार किसी व्यक्ति, संस्था या निम्न स्तर की सरकार को किसी निर्धारित सार्वजनिक उद्देश्य जैसे शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य या आधारभूत ढाँचे के

विकास के लिए प्रदान करती है। इस राशि को लौटाने की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन इसका उपयोग उसी उद्देश्य के लिए किया जाना अपेक्षित होता है जिसके लिए इसे स्वीकृत किया गया है। इसलिए अनुदान को केवल आर्थिक सहायता नहीं, बल्कि जनहित में किया गया एक उद्देश्यपूर्ण निवेश माना जाता है।

4.राजस्व घाटा – यह वह स्थिति है जब सरकार की राजस्व प्राप्तियाँ जैसे कर (Tax) तथा गैर-कर (Non-Tax) आदि स्रोतों से प्राप्त आय उसके राजस्व व्यय, जैसे वेतन, पेंशन, सब्सिडी तथा ऋण पर ब्याज भुगतान आदि को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होतीं। इसी प्रकार हम कह सकते है जब राजस्व व्यय, राजस्व प्राप्तियों से अधिक हो जाता है, तो दोनों के बीच का अंतर राजस्व घाटा कहलाता है।

5.उपकर - यह सरकार द्वारा किसी निर्धारित कार्य के लिए वसूला जाने वाला एक अतिरिक्त शुल्क है। इस कर से प्राप्त सम्पूर्ण राशि केवल उसी विशेष प्रयोजन पर खर्च करना अनिवार्य होता है।

6.अधिभार (Surcharge)- यह एक अतिरिक्त कर है, जो मूल कर की गणना के बाद उसी कर की राशि पर लगाया जाता है। इसी कारण इसे प्रायः 'कर पर कर' (Tax on Tax) कहा जाता है। अधिभार की विशेषता यह है कि इसका उपयोग किसी विशेष उद्देश्य तक सीमित नहीं होता। इससे प्राप्त संपूर्ण राजस्व सरकार के संचित निधि (Consolidated Fund) में जमा होता है, जिसका उपयोग सरकार अपनी आवश्यकताओं तथा विभिन्न विकास एवं कल्याणकारी कार्यक्रमों के लिए कर सकती है।

6.10 अभ्यास प्रश्न उत्तर

1. 75% 2. 41% 3. 12.5% 4. 10% 5.राष्ट्रपति 6. डॉ. अरविंद पनगढ़िया

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.Dubey, R., & Sharma, H. (n.d.). भारत में लोक प्रशासन (Public Administration in India). College Book Depot.

2.अवस्थी, अ., & अवस्थी, आ. प्र. (2011–2012). भारत में लोक प्रशासन (14वाँ संशोधित संस्करण). लक्ष्मी नारायण अग्रवाल.

3.त्रिपाठी, म. (2010). भारत में लोक प्रशासन. ओमेगा पब्लिकेशन्स.

4.Khan, N. A. (Ed.). (2018). Challenges and issues in Indian fiscal federalism. Springer Nature Singapore.

5.Lizy, M. A. (1990). Centre-state financial relations in India. Ashish Publishing House.

6.Tiwari, O. P. (1996). Federalism and Centre-State Relations in India: Towards a New Era of Mutual Cooperation. Deep & Deep Publications.

7.13वे,14वे,15वे और 16 वे वित्त आयोग की रिपोर्ट्स

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.वित्त आयोग की संवैधानिक व्यवस्था, गठन, संरचना और कार्यों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2.चौदहवाँ वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

3.पंद्रहवाँ वित्त आयोग द्वारा स्थानीय निकायों हेतु किए गए प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

4.वित्त आयोग के समक्ष प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण कीजिए।

इकाई - 7 नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास
7.3 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति
7.4 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सेवा-शर्तें
7.5 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतंत्रता
7.6 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां
7.7 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के द्वारा निभायी जा रही भूमिका का आंकलन
7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

इस से पिछली की इकाई में आप भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली के संबंध में अच्छे प्रकार से समझ चुके हैं। लेखापरीक्षण के तंत्र के शीर्षस्थान पर अवस्थित प्राधिकारी को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक कहा जाता है। प्रस्तुत इकाई में देश में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की वित्तीय प्रशासन में भूमिका को निरूपित किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास किस प्रकार से हुआ, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति कौन करता है ओर कौन उसको शपथ दिलवाता है, उसकी सेवा-शर्त्तें क्या होती हैं, उसकी स्वतंत्रता संविधान द्वारा किस प्रकार से सुनिश्चित की गयी हैं, उसके कर्तव्य एवं शक्तियां क्या है और उसकी भूमिका की प्रभावशीलता कितनी रही हैं से संबंधित आपके दृष्टिकोण में व्यापकता आयेगी।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

1. जान पायेंगे कि भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव कब हुआ एवं उसका विकास किस प्रकार से हुआ

2. बोध कर पायेंगे कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति कौन करता है, उसकी सेवा-शत्त क्या होती हैं तथा उसकी स्वतंत्रता किस प्रकार से सुनिश्चित की जाती है।

7.2 भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास

लेखापरीक्षण का कार्य वास्तविकता में दुस्साध्य व अत्यधिक चुनौतीपूर्ण होता है इसलिये इसको करने के लिये लेखापरीक्षण के सुविस्तृत तंत्र का होना अनिवार्य हो जाता है। लेखापरीक्षण के तंत्र के शीर्षस्थान पर जो प्राधिकारी होता है वह भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग नाम से बुलाया जाता है। भारत में उस प्राधिकारी को नियंस्क एवं महालेखा परीक्षक कटा नाता है।

भारत के अभिशासन में अनेक महत्वपूर्ण पद ब्रिटिश विरासत वाले हैं, जिनमें से एक पद नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक का से ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान लेखापरीक्षक का पद वर्ष 1858 में अस्तित्व में आया, जब भारत सरकार अधिनियम द्वारा देश में ईस्ट इंडिया का शासन समाप्त कर दिया गया और शासकीय शक्तियों का अंतरण ब्रिटिश क्राऊत को कर दिया गया सर एडमन्ड इयोन्ड देश के प्रथम लेखापरीक्षक के तौर पर वर्ष 1860 में नियुक्त किये गया ब्रिटिश संसद द्वारा जब वर्ष

1919 में अगला भारत सरकार अधिनियम अधिनियमित किया गया तब उस अधिनियम ने लेखापरीक्षक के पद को संविधिक दर्जा दिया। इस अधिनियम ने देश में स्वतंत्र लेखापरीक्षण का सूत्रपात किया और यह प्रदान किया कि अब से लेखापरीक्षक भारत सरकार से स्वतंत्र रहकर कार्य करेगा, आकी नियुक्ति सेक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा की जायेगी और वह अपना पद अपने मेनेस्टी के प्रसादपर्यन्त तक धारण करेगा। वर्ष 1935 के अगले भारत सरकार अधिनियम द्वारा लेखापरीक्षक की स्थिति को अधिक सशक्त बनाया गया। इस अधिनियम के प्रावधानों के द्वारा उसकी स्वतंत्र स्थिति को सुदृढ़ बनाया गया। उसे प्रतिषेध किया गया कि वह अपना पद छोड़ने के पश्चात् क्राउन के अधीन कोई पद धारण नहीं करेगा। उसकी स्थिति फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य की गयी और यह प्रदान किया गया कि जिस तरीके से उक्त न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है उसी तरीके से उसको भी अपने पद से हटाया जा सकेगा। ब्रिटिश शासन द्वारा वर्ष 1936 में भारत सरकार (लेखापरीक्षण एवं लेखा) आदेश जारी किया गया जिसमें उसके कर्तव्यों, शक्तियों एवं सेवा शर्तो को विहित किया गया। देश की स्वतंत्रता के उपरांत नव वर्ष 1950 में संविधान प्रभावी हुआ तो लेखापरीक्षक के पद को संवैधानिक दर्जा दिया गया, लेखापरीक्षक के पदनाम को भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के रूप में निर्दिष्ट किया गया और संविधान के भाग V (संघ) के अध्याय V (भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक) के अनुच्छेदों 148-151 में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के संबंध में प्रावधान किये गयो वे अनुच्छेद इस प्रकार से हैं- अनुच्छेद 148- भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, अनुच्छेद 149- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां अनुच्छेद 150- संप के और राज्यों के लेखाओं के प्रारूप; अनुच्छेद 151- लेखापरीक्षण के प्रतिवेदना देश में वर्ष 1860 से वर्ष 1948 तक निम्नलिखित 16 लेखापरीक्षक और उनके निम्नवत कार्यकाल रहे एडमन्ड ड्रममोन्डः 1860-1862, आर. पी. हैरिसनः 1862-1867 ई. एफ. हेरिसनः 1867-1879 (सबसे लंबा कार्यकाल), डब्लू वॉटरफील्डः 1879-1881, जेम्स वेस्टलैण्डः 1881-1889, ई. में 1889-1891, एस. नेकोंबः 1891-1898, ए. एक. कोक्स: 1898-1906, ओ. ने. बारी: 1906-1910, आर. डब्लयू गिलानः 1910-1912, सर फ्रेडरिक गॉटलेटः 1912-1914, सर आर. ऐ. गैम्बतः 1914-1918, सर फ्रेडरिक गॉटलेटः 1918-1929, सर अर्नस्ट बर्डनः 1929-1940, सर अलेक्जेंडर कैमरामन बन्डोचः 1940-1945, तथा सर बीई स्टेगः 1945-1948।

7.3 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भारत का सर्वोच्च लेखापरीक्षण प्राधिकारी होता है। राष्ट्रपति के अनुमोदन पर राष्ट्रपति सचिवालय द्वारा वर्ष 1979 में जारी किये गये भारतीय वरीयता क्रम में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक क्रम संख्या 9 'क' पर है। उसकी नियुक्ति के संबंध में प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद 148 (1) में किया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार भारत का एक नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक होगा, जिसकी राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा। स्वतंत्रता के पश्चात् से वर्तमान (वर्ष 2018) तक अनुच्छेद- 148 (1) के प्रावधानुसार निम्नलिखित नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षकों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया गया है जिनके नाम व कार्यकाल निम्नवत हैं- वी. नरहरी रावः 1948-1954, ए. के. चन्दाः 1954-1960, ए. के. रॉयः 1960-1966, एस. रंगनाथनः 1966-1972, ए, बक्शी: 1972-1978, जान प्रकाशः 1978-1984, टी. एन. बतुर्वेदी: 1984-1990, सी. जी. सोमैयाः 1990-1996, वी. के. शुंगलू: 1996-2002, वी. एन. कोल: 2002-2008, विनोद राय. 2008-2013, शशि कान्त शर्मा: 2013-2017, राजीव महर्षि 2017 से कार्यरत है।

नियुक्त किये गये नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के द्वारा लिये जाने वाले शपथ या किये जाने वाले प्रतिज्ञान के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 148 (2) में प्रावधान किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक नियुक्त किया जाता है, अपना पद ग्रहण करने से पहले, राष्ट्रपति या उसके द्वारा निमित्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा।

7.4 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की सेवा-शर्ते

नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की सेवा-शतों के संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 148 (3) में किये गये है। इस अनुच्छेद के अनुसार नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक का वेतन और सेवा की अन्य शर्तें ऐसी होंगी नो संसद, विधि द्वारा, अवधारित करें। उक्त प्रावधान को प्रभाव में लाने हेतु संसद ने सर्वप्रथम वर्ष 1953 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक (सेवा की शर्ते) अधिनियम को अधिनियमित किया। यह अधिनियम वर्ष 1971 तक प्रभावी बना रहा जब संसद द्वारा नियंत्रक महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां ओर सेवा की शर्ते) अधिनियम का अधिनियमन किया गया। 1971 के अधिनियम के अध्याय II (नियंत्रक महालेखापरीक्षक का वेतन और सेवा की अन्य शर्ते) के खण्डों 3 से 9 तक में उनके वेतन, पदावधि, अवकाश, पेंशन, पेंशन के संराशीकरण, साधारण भविष्य निधि में अंशदान देने के अधिकार, यात्रा भत्ता, किराया मुक्त आवास की सुविधा और ऐसे किराया मुक्त आवास के मूल्य पर आय कर के संदाय से छूट, यातायात सुविधाओं, सत्कारी भत्ता, चिकित्सा सुविधाओं आदि सेवा की शर्ते दी गयी ही ये सेवा की शर्ते, संक्षेप में, निम्नलिखित है

1. खण्ड-3, वेतन- नियंक्रक-महालेखापरीक्षक को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर वेतन दिया नायेगा।

2. खण्ड- 4. पदावधि नियंत्रक महालेखापरीक्षक उस तारीख निस तारीख को वह पद ग्रहण करता है, से छह वर्ष की अवधि के लिये पद धारण करेगा। परन्तु जहां वह छह वर्ष की उक्त अवधि के अवसान के पूर्व 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है वहां वह ऐसा पद उस तारीख को रिक कर देगा निसको वह उक्त आयु प्राप्त कर लेता है। अग्रेतर कह, किसी भी समय, राष्ट्रपति को संबोधित स्वहस्ताक्षरित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा।

3. खण्ड-5, अवकाश- किसी व्यक्ति निसे नियंत्रक महालेखापरीक्षक नियुक्त किया गया है, को ऐसे नियमों के अनुसार अवकाश की अनुमति दी जा सकती है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा के किसी सदस्य पर तत्समय लागू है। नियंत्रक महालेखापरीक्षक के अवकाश को स्वीकृत करने या अस्वीकृत करने और उसके स्वीकृत किये गये अवकाश का प्रतिसंहरण करने या कम करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी।

4. खण्ड-6, पेंशन- प्रत्येक व्यक्ति जो नियंत्रक महालेखापरीक्षक के रूप में पद ग्रहण करता है, उक्त पद को छोड़ने पर पेंशन का पात्र होगा।

5. खण्ड-7, पेंशन का संराशीकरण- इस प्रावधान का वर्ष 1987 में लोप कर दिया गया।

6. खण्ड- 8, भविष्य निधि में अंशदान देने का अधिकार- प्रत्येक व्यक्ति जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद धारण कर रहा है, साधारण भविष्य निधि (केन्द्रीय सेवा) में अभिदान करने का पात्र होगा।

7. खण्ड- 9. सेवा की अन्य शर्तें- यात्रा भत्ता, किराया मुक्त आवास की सुविधा और ऐसे किराया मुक्त आवास के मूल्य पर आय कर के संदाय से छूट, यातायात सुविधाओं, सत्कारी भत्ता, चिकित्सा सुविधाओं से संबंधित सेवा की शर्तें जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पर तत्समय लागू है, जहां तक हो सके, किसी सेवारत या सेवानिवृत्त नियंत्रक महालेखापरीक्षक पर लागू होंगी।

7.5 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की स्वतंत्रता

लेखापरीक्षण, जोकि वित्तीय प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है, की प्रभावशीलता को बनाकर रखने हेतु नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्थिति का स्वतंत्र होना आवश्यक हो जाता है। उसकी स्वतंत्र स्थिति को संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेदों के द्वारा सुनिश्चित किया गया है-

1. अनुच्छेद- 148 (1)- भारत का एक नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक होगा, जिसको राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा और उसे उसके पद से केवल उसी रीति

से और उन्हीं आधारों पर हटाया जायेगा, जिस रीति से ओर जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।

2. अनुच्छेद- 148 (3)- नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के न तो वेतन में और न ही उसके अनुपस्थिति अवकाश, पेंशन या सेवानिवृत्ति की आयु के संबंध में उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिये अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जायेगा।

3. अनुच्छेद- 148 (4)- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक अपने पद पर न रह जाने के पश्चात् भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी ओर पद का पात्र नहीं होगा।

4. अनुच्छेद- 148 (6)- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय के प्रशासनिक व्यय, जिनके अंतर्गत उस कार्यालय में सेवा करने वाले व्यक्तियों को या उनके संबंध में संदेय सभी वेतन, भत्ते और पेंशन सम्मिलित हैं, भारत की संचित निधि पर भारित होंगे।

7.6 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कर्तव्य व शक्तियों के संबंध में संविधान का अनुच्छेद- 149 जो प्रावधान करता है वह इस प्रकार से हैं- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ के और राज्यों के तथा किसी अन्य प्राधिकारी या निकाय के लेखाओं के संबंध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा, जिन्हें संसद द्वारा बनायी गयी विधि द्वारा या उसके अधीन विहित किया जाये और जब तक इस निमित्त इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है, तब तक संघ के और राज्यों के लेखाओं के संबंध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमशः भारत डोमिनियन के और प्रान्तों के लेखाओं के संबंध में भारत के महालेखा परीक्षक को प्रदत्त थीं या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य थीं। स्वतंत्रता से पूर्व ब्रिटिश शासकों के द्वारा भारत सरकार (लेखापरीक्षण और लेखा) आदेश वर्ष 1936 में जारी किया गया था, जिसमें कि महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्यों और शक्तियों का उल्लेख किया गया था। यह आदेश वर्ष 1971 तक प्रभावी रहा, जब संसद ने नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शत्ते) अधिनियम को अधिनियमित किया। वर्ष 1971 के अधिनियम ने वर्ष 1936 के आदेश को निरस्त कर दिया। अधिनियम के अध्याय-III (नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां) के खण्डों-10-20 में उसके कर्तव्यों एवं शक्तियों को विनिर्दिष्ट किया गया है। ये कर्तव्य एवं शक्तियां व्यापक तौर पर लोक निकायों के लेखाओं का संकलन करने और संकलित किये गये लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के साथ संबंधित हैं। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां, संक्षिप्त में, अधिनियम के खण्डानुसार निम्नलिखित हैं-

खण्ड- 10, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा संघ और राज्यों के लेखाओं का संकलन किया जाना;

खण्ड-11, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा लेखाओं को तैयार किया जाना और राष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल तथा विधान सभा वाले संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रशासकों को प्रस्तुत किया जाना;

खण्ड-12, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा संघ और राज्यों को सूचना दिया जाना और सहायता प्रदान किया जाना;

खण्ड-13, लेखापरीक्षण से संबंधित सामान्य प्रावधान;

खण्ड-14, संघ या राज्यों के राजस्वों से वस्तुतः वित्त पोषित निकायों या प्राधिकरणों के आय और व्यय का लेखापरीक्षण किया जाना;

खण्ड-15, अन्य प्राधिकरणों या निकायों को दिये गये अनुदानों या ऋर्षों के मामले में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्य;

खण्ड- 16, संप की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किया जाना;

खण्ड-17, भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण किया जाना;

खण्ड-18, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में शक्तियां,

खण्ड-19, सरकारी कम्पनियों एवं निगमों का लेखापरीक्षण किया जाना;

खण्ड-19 'क', सरकारी कम्पनियों एवं निगों के लेखाओं के संबंध में प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किया जाना; तथा

खण्ड-20, कतिपय प्राधिकरणों या निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण किया जाना।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971 में प्रदान किये गये नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्यों एवं शक्तियों का सविस्तार खण्डवार विवरण निम्नवत है-

1. खण्ड-10- अधिनियम के खण्ड-10 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा संघ और राज्यों के लेखाओं का संकलन किये जाने संबंधी उसके कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। खण्ड के उपखण्ड (1) के अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ के और प्रत्येक राज्य के लेखाओं का संकलन उन प्रारम्भिक और सहायक लेखाओं से करने के लिये उत्तरदायी होगा जो ऐसे लेखाओं को बनाकर रखने के लिये जिम्मेदार कोषागारों, कार्यालयों या विभागों के द्वारा उसके नियंत्रण के अधीन लेखापरीक्षण और लेखा कार्यालयों को दिये गये हैं। इसी के साथ वह उक्त निर्दिष्ट किये गये किन्हीं मामलों में से किसी के संबंध में लेखाओं को बनाकर रखने के लिये भी उत्तरदायी होगा।

खण्ड-10 का उपखण्ड (1), यह भी प्रावधान करता है कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को संघ के और राज्यों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त किया जा सकता है। इसके संबंध में अधिनियम के अनुसार संघ के मामले में राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ परामर्श के पश्चातु, आदेश द्वारा, उसे संघ के उपरोक्त लेखाओं (या तो एक ही समय में या धीरे-धीरे विभिन्न आदेशों को जारी करने के द्वारा) या संघ के किन्हीं विशिष्ट सेवाओं या विभागों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है। अधिनियम अग्रेतर यह प्रावधान करता है कि राज्यों के मामले में किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के साथ और नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे राज्य के उपरोक्त लेखाओं (या तो एक ही समय में या धीरे-धीर विभिन्न आदेशों को जारी करने के द्वारा) या राज्य की किन्हीं विशिष्ट सेवाओं या विभागों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है। खण्ड में आगे यह भी प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ परामर्श के पश्चातु, आदेश द्वारा, उसे किसी विशिष्ट वर्ग या स्वरूप के लेखाओं को बनाकर रखने की जिम्मेदारी से भी अवमुक्त कर सकता है।

2. खण्ड-11-अधिनियम के खण्ड- 11 का सरोकार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा लेखाओं को तैयार किये जाने और राष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल तथा विधान सभा वाले संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रशासकों को प्रस्तुत किये जाने के साथ है। प्रावधानुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, अपने द्वारा या सरकार के द्वारा या उस निमित्त जिम्मेदार किसी व्यक्ति के द्वारा संकलित किये गये लेखाओं में से, प्रत्येक वर्ष उन लेखाओं (जिनमें सम्मिलित हैं, उसके अपने द्वारा संकलित किये गये लेखाओं के मामले में, विनियोग लेखा) को तैयार करेगा जो संघ के या प्रत्येक राज्य के या विधान सभा वाले प्रत्येक संघ राज्य क्षेत्र के प्रयोजन हेतु विशिष्ट शीर्षों के अंर्तगत वार्षिक प्राप्तियों एवं संवितरणों को दिखा रहे हैं, और ऐसे लेखाओं को राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को ऐसी विधियों, जिन्हें वह, संबंधित सरकार की सहमति के साथ निर्धारित करे, को या उनके पूर्व प्रस्तुत करेगा। इस खण्ड में नियंत्रक एवं

महालेखा परीक्षक को उक्त लेखाओं को तैयार करने और उनको प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त किये जाने का प्रावधान भी हैं। संघ या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रयोजन हेतु राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पक्षात्, आदेश द्वारा, तथा किसी के प्रयोज्जन हेतु किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के साथ और नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चातु, आदेश द्वारा, उसे उक्त लेखाओं को तैयार करने और उनको प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है।

3. खण्ड-12- अधिनियम के खण्ड- 12 में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा संघ और राज्यों को सूचना दिये जाने और सहायता प्रदान किये जाने के संबंध में उसके कर्तव्य का वर्णन किया गया है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, जहां तक उन लेखाओं के संबंध में जिनका संकलन करने या जिनको बनाकर रखने के लिये वह निम्मेदार है, संघ सरकार को, राज्य सरकारों को या विधान सभाओं वाले संघराज्य क्षेत्रों की सरकारों को, जैसा कि मामला हो, ऐसी सूचना देगा जिसकी आकांक्षा, समय-समय पर, उनको होगी, और उनके वार्षिक वित्तीय विवरणों को तैयार करने में उनको ऐसी सहायता प्रदान करेगा जिसकी वे यथोचित मांग करें।

4. खण्ड-13- अधिनियम के खण्ड-13 में लेखापरीक्षण से संबंधित सामान्य प्रावधान दिये गये हैं जो इस प्रकार से है। यह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कर्तव्य होगा कि वह भारत की और प्रत्येक राज्य की और विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि में से किये गये व्यय का लेखापरीक्षण करे और यह अभिनिश्चित करे कि क्या लेखाओं में वे धनराशियां नो संवितरित की गई दिखायी गयी है, वैध रूप से उपलब्ध थी और उस सेवा या प्रयोजन जिसके लिये उन्हें लागू या प्रभारित किया गया था के लिये वैध रूप से प्रयोज्य थी तथा क्या व्यय उसको शासित करने वाले प्राधिकार के अनुरूप हैं; आकस्मिकता निधियों और लोक लेखाओं से संबंधित संघ के एवं राज्यों के सभी संव्यवहारों का लेखापरीक्षण करें; और संघ के या किसी राज्य के किसी विभाग में रखे गये सभी सकल व्यापार, विनिर्माण, लाभ एवं हानि के लेखाओं तथा तुलन-पत्रों और अन्य सहायक लेखाओं का लेखापरीक्षण करें, और प्रत्येक मामले में उसके द्वारा लेखापरीक्षण किये गये व्यय, संव्यवहारों या लेखाओं के बारे में रिपोर्ट करे।

5. खण्ड-14- अधिनियम का खण्ड- 14 संघ या राज्यों के राजस्वों से वस्तुतः वित्त पोषित निकायों या प्राधिकरणों के आय और व्यय का लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। इस खण्ड के उपखण्ड (1) में यह प्रावधान किया गया है कि जहां कोई निकाय या प्राधिकरण भारत की या किसी राज्य की और विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि से दिये गये अनुदानों या ऋणों के द्वारा वस्तुतः वित्त पोषित है तो नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक का यह कर्तव्य होगा कि वह

उस निकाय या प्राधिकरण की सभी प्रातियों और व्यय का लेखापरीक्षण करे तथा उसकी रिर्पोट दे। इस खण्ड के उपखण्ड (2) में अग्रेतर यह प्रावधान किया है कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघराज्य क्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, के पूर्व अनुमोदन के साथ, किसी ऐसे निकाय या प्राधिकरण की सभी प्राप्तियों और व्यय का लेखापरीक्षण कर सकता है, जहां किसी वित्तीय वर्ष में भारत की या किसी राज्य की या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र की संचित निधि, जैसा कि मामला हो, से ऐसे निकाय या प्राधिकरण को दिया गया अनुदान या ऋण एक करोड़ रूपये से कम नहीं है।

6. खण्ड-15- अधिनियम के खण्ड 15 में अन्य प्राधिकरणों या निकायों को दिये गये अनुदानों या ऋणों के मामले में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों का विवरण दिया गया है। इसके प्रावधानुसार जहां किसी निकाय या प्राधिकरण, जो कोई विदेशी राज्य या अंतर्राष्ट्रीय संगठन नहीं है, को भारत की या किसी राज्य की ओर विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र की संचित निधि से किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिये कोई अनुदान या ऋण दिया गया है तो नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक उन क्रियाविधियों की संवीक्षा करेगा जिनके द्वारा संस्वीकृत करने वाला प्राधिकारी उन शर्तों की पूर्ति के बारे में अपना समाधान करता है कि जिनके अधीन रहते हुये ऐसे अनुदान या ऋण दिये गये थे और इस प्रयोजन हेतु उस निकाय या प्राधिकरण की बड़ियों एवं लेखाओं तक, उचित पूर्व नोटिस देने के उपरांत, पहुंच का अधिकार होगा।

7. खण्ड-16- अधिनियम का खण्ड-16 संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। इस खण्ड के अनुसार यह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कर्तव्य होगा कि वह उन सभी प्रातियों का लेखापरीक्षण करे जो भारत की और प्रत्येक राज्य की और विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि में संदेय है और अपना समाधान करे कि इस निमित्त नियम एवं क्रियाविधियां राजस्व के आंकलन, संग्रहण और उचित आवंटन पर प्रभावकारी नियंत्रण को प्राप्त करने के लिये बनाये गये हैं और उनका यथायोग्य अनुपालन किया जा रहा है तथा इस प्रयोजन के लिये लेखाओं का ऐसा परीक्षण करे जैसा कि वह उपयुक्त सोचे और उस पर रिपोर्ट दे।

8. खण्ड-17- अधिनियम का खण्ड-17 भण्डारों ओर स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण किये जाने के संबंध में प्रावधान करता है, जिसके अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पास संघ के या किसी राज्य के किसी कार्यालय या विभाग में रखे गये भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने और रिर्पोट करने का प्राधिकार होगा।

9. खण्ड-18- अधिनियम के खण्ड- 18 में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में शक्तियों को विनिर्दिष्ट किया गया है। इस से संबंधित आवश्यक प्रावधान

उपखण्ड (1) में किये गये हैं। उपखण्ड (1) के अनुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पास अपने कर्तव्यों का निष्पादन करने के संबंध में प्राधिकार होगा कि वह संघ के या किसी राज्य के अधीन किसी लेखा कार्यालय जो उसे लेखाओं को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें कोषागार और ऐसे कार्यालय जो प्रारम्भिक या सहायक लेखाओं को बनाकर रखने के लिये उत्तरदायी हैं, का निरीक्षण करे; यह अपेक्षा करे कि किन्हीं लेखाओं, बहियों, लेखापत्रों और अन्य प्रलेखों जो उन संव्यवहारों जिन तक लेखापरीक्षण के संबंध में उसके कर्तव्यों का विस्तार है, के साथ संबंधित है या उनका आधार बनाते हैं या अन्यथा प्रासंगिक हैं को ऐसे स्थान पर भेजा जाये जो वह अपने निरीक्षण के लिये नियत करे; तथा वह कार्यालय के प्रभारी व्यक्ति से ऐसे प्रश्न पूछे या ऐसी टिप्पणी करे जो वह आवश्यक समझे और ऐसी सूचना मांगे जिसकी आकांक्षा उसे हो किसी ऐसे लेखा या प्रतिवेदन को तैयार करने के लिये जिसको तैयार करना उसका कर्तव्य है।

खण्ड-18 के उपखण्ड (2) में कार्यालय के प्रभारी व्यक्ति के लेखापरीक्षण के संबंध में उसके कर्तव्यों का विवरण दिया गया है। इस उपखण्ड के अनुसार किसी कार्यालय या विभाग, जिसके लेखाओं का निरीक्षण और लेखापरीक्षण नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा किया जाना है, का प्रभारी व्यक्ति ऐसे निरीक्षण के लिये सभी सुविधाएं जुटायेगा और सूचना उपलब्ध कराने संबंधी किये गये अनुरोधों का अनुपालन जहां तक संभव हो वहां तक उतने पूर्ण रूप में एवं यथोचित शीघ्रता के साथ करेगा।

10. खण्ड- 19- अधिनियम का खण्ड-19 सरकारी कम्पनियों एवं निगर्मा के लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। खण्ड के उपखण्ड (1) व (2) के अनुसार सरकारी कम्पनियों तथा संसद द्वारा या उसके द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अंतर्गत स्थापित निगमों के लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां उसके द्वारा क्रमशः कम्पनी अधिनियम, 1956 व विशिष्ट विधायनों के प्रावधानों के अनुसार सम्पादित और प्रयोग की जायेगी। खण्ड के उपखण्ड (3) में यह प्रावधान किया गया है कि किसी राज्य का राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र का प्रशासक नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक से राज्य या संघ-राज्यक्षेत्र के विधानमण्डल, जैसा कि मामला हो, द्वारा बनायी गयी किसी विधि के द्वारा स्थापित की गयी किसी निगम के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये अनुरोध कर सकता है और जहां पर ऐसा अनुरोध किया गया है, वहां पर नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक ऐसी निगम के लेखाओं का लेखापरीक्षण करेगा तथा उसकी बहियों व लेखाओं तक उसके पास पहुंच का अधिकार होगा।

खण्ड-19 क. अधिनियम के खण्ड-19क का सरोकार सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखाओं के संबंध में प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किये जाने के साथ है। इस अधिनियम के उपखण्डों (1), (2) व (3) के अनुसार किसी सरकारी कम्पनी या किसी निगम के लेखाओं के संबंध में नियंत्रक एवं

महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन संबंधित सरकार या सरकारों को प्रस्तुत किये जायेंगे। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार उनके द्वारा प्राप्त प्रत्येक प्रतिवेदन, उसके प्राप्त होने के उपरांत यथाशीघ्र, को क्रमशः संसद के प्रत्येक सदन और राज्य विधानमण्डल के समक्ष रखवायेंगे।

11. खण्ड-20- अधिनियम का खण्ड- 20 कतिपय प्राधिकरणों या निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण किये जाने से संबंधित है। इस खण्ड के उपखण्ड (1) के अनुसार जहां पर किसी निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण संसद द्वारा बनायी गयी किसी विधि द्वारा या उसके अंतर्गत नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को सौंपा नहीं गया है, वहां पर यदि उस से राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, के द्वारा ऐसा करने का अनुरोध किया गया है तो वह ऐसे निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण ऐसे निबंधनों व शर्त्तों पर करेगा जो उसके और संबंधित सरकार के मध्य सहमत की गयी हो। खण्ड के उपखण्ड (2) में यह प्रावधान किया गया है कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को यह प्रस्तावित कर सकता है कि उसे किसी ऐसे निकाय या प्राधिकरण, जिसके लेखाओं का लेखापरीक्षण करना उसे विधि द्वारा सौंपा नहीं गया है, के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये प्राधिकृत किया जाये यदि उसका अभिमत है कि ऐसा लेखापरीक्षण आवश्यक है, क्योंकि केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के सरकार द्वारा उस निकाय या प्राधिकरण में पर्याप्त धनराशि निवेश की गयी है या उसे उधार दी गयी है और ऐसा अनुरोध किये जाने पर राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक, जैसा कि मामला हो, ऐसे निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये प्राधिकृत किया जा सकता है। खण्ड का उपखण्ड (3) यह प्रदान करता है कि उक्त किसी निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को तभी प्राधिकृत किया जा सकता है। यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को यह समाधान हो गया है कि लोक हित में ऐसा करना समीचीन होगा और ऐसे लेखापरीक्षण के प्रस्ताव के संबंध में अभ्यावेदन करने के लिये संबंधित निकाय या प्राधिकरण को यथोचित अवसर दे दिया गया है।

7.7 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा निभायी जा रही भूमिका का आंकलन

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक राष्ट्र के लेखापरीक्षक के रूप में कार्य कर रहा है और उसके कार्य को दिशा-निर्देशित करने वाले मूलभूत मूल्य स्वतंत्रता, वस्तुनिष्ठता, सच्चरित्रता, विश्वसनीयता, व्यावसायिक उत्कृष्टता, पारदर्शिता एवं सकारात्मक दृष्टिकोण है। वह शासन के तीनों स्तरों संघ, राज्य व स्थानीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों; तथा संघ व राज्य सरकारों द्वारा वित्त पोषित स्वायत्त

निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने और सम्बद्ध गतिवधियों को करने के लिये उत्तरदायी है। वह अपने कामों के माध्यम से लेखापरीक्षण संबंधी कार्यों में अत्कृशता के तत्व को सुनिश्चित करने और सुशासन की कार्यप्रणालियों का समर्थन करने हेतु प्रयास करता है। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कार्यालय की विस्तृत संगठनात्मक संरचना उसकी सहायता उसके नियत कार्यों को प्रवीणतापूर्वक कर सकने में करती है।

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की देश की लोकतांत्रिक रूपसंरचना में अपूर्व स्थिति है। वह लोक प्राधिकारियों के संबंध में वित्तीय मामलों में प्रहरी की भूमिका निभाता है जिसके द्वारा वह यह सुनिश्चित करता है कि वे संविधान, विधियों एवं नियमों के अधीन रहकर वित्तीय कार्यो को कर रहे है। एक ओर वह लोक प्राधिकारियों की वित्तीय गतिविधियों पर प्रत्यक्ष निरोध रखता है तो दूसरी ओर वह संसद एवं राज्य विधानमण्डलों की सहायता उन पर वित्तीय नियंत्रण रखने में करता है। संसद एवं राज्य विधानमण्डलों की लोक लेखा समिति एवं लोक उपक्रम समिति, जोकि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के लेखापरीक्षण के प्रतिवेदनों का परीक्षण उनके संसदराज्य विधानमण्डल में प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् करते हैं, का सुचारू कार्यकरण नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की सहायता से ही संभव हो पाता हो यथार्थता में उसे इन समितियों का मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक कहा जाता है। लोक प्राधिकारियों के वित्तीय मामलों के संबंध में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा किये जा रहे बाह्य लेखापरीक्षण, जिसमें व्यापक तौर पर वित्तीय लेखापरीक्षण, निष्पादन लेखापरीक्षण और अनुपालन लेखापरीक्षण सम्मिलित होते हैं, का विस्तार क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और उसको निर्धारित करने का अनन्य प्राधिकार उसके पास हो लेखापरीक्षण से संबंधित सभी मामलों में निर्णय लेने का अंतिम प्राधिकार उसके पास होता है। सरकारें लेखापरीक्षण से संबंधित मामलों में उस से अनुरोध तो कर सकती है, परन्तु उसको कोई निर्देश नारी नहीं कर सकती है। लेखापरीक्षण का कार्य पूर्ण होने के उपरांत वह संप और राज्यों के लेखाओं से संबंधित लेखापरीक्षण के प्रतिवेदनों को संविधान के अनुच्छेद-151 में किये गये प्रावधान के अनुसार क्रमशः राष्ट्रपति एवं राज्यपाल को प्रस्तुत करता है और फिर इन प्रतिवेदनों को क्रमशः संसद व राज्य विधानमण्डलों के समक्ष रखा जाता है। इन प्रतिवेदनों के माध्यम से विगत वर्षों के दौरान अनेक वित्तीय अनियमिततायें तथा घोटाले सामने आये है। यह तो निश्क्षित तौर पर कहा जा सकता है कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक देश में वित्तीय प्रबंधन की स्थिति को सुधारने में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है, परन्तु कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो लेखापरीक्षण के कार्य को चुनौतीपूर्ण बना रहे ही इन मुठे में से कुछ मुद्दे हैं, जैसे कि लेखापरीक्षण के निष्कषों की अधिक नकारात्मक प्रवृत्ति का होना, वित्तीय अनियमितताओं के घटने और लेखापरीक्षण के माध्यम से उनके पकड़ में आने के बीच समय का काफी अंतराल होना, सरकारों द्वारा लेखापरीक्षण के निष्कर्षो पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाना, लेखापरीक्षकों के साथ लोक कार्मिकों का प्रायः कम सहयोगपूर्ण रवैया होना आदि।

अभ्यास प्रश्न

1. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) अधिनियम के खण्ड .... में संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किये जाने संबंधी उपबंध किये गये हैं।

2. ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान लेखापरीक्षक का पद कब अस्तित्व में आया?

3. स्वतंत्र भारत के प्रथम नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक कौन थे?

4. संविधान के अनुच्छेद- 148 (1) में यह प्रावधान किया गया है कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जायेगा जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। सत्य/असत्य

5. भारत सरकार (लेखापरीक्षण ओर लेखा) आदेश कोन से वर्ष में जारी किया गया था?

क) 1936 ख)1938 ग)1940 घ)1942

7.8 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आपको यह ज्ञात हो चुका है कि भारत में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक लेखापरीक्षण के तंत्र का सर्वोच्च प्राधिकारी होता है। इस पद का अस्तित्व ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान हुआ और समय के साथ इस की स्वतंत्र स्थिति सुदृढ़ होती गयी। संविधान के प्रभावी होने के साथ ही यह पद संवैधानिक हो गया। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा वित्तीय मामलों में लोक प्राधिकारियों के संबंध में जो भूमिका निभायी जा रही है, वह एक प्रकार से प्रहरी की तरह होती है। वह लोक लेखा समिति एवं लोक उपक्रम समिति का मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक होता है। उसके प्रतिवेदन समय-समय पर वित्तीय अनियमितताओं तथा घोटालों को प्रकाश में लाते रहे हैं। इस इकाई का अध्ययन करने से आपका मनन नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के बारे गहन हो सकता हो।

7.9 शब्दावली

लोक निगम- लोक या संविधिक निगम लोक उद्यम का वह प्रकार होता है जो संसद या राज्य विधानमंडल के किसी विशेष अधिनियम के द्वारा स्थापित किया जाता है। लोक निगम की शक्तियां एवं कार्य सुस्पष्ट होते है और उसके कार्यकरण में स्वायत्ता होती

सरकारी कम्पनी- कम्पनी अधिनियम, 2013 की अनुच्छेद- 2 (45) के अनुसार सरकारी कम्पनी वह कम्पनी होती है, जिसकी प्रदत्त अंश पूंजी का कम से कम 51 प्रतिशत केन्द्र सरकार के द्वारा, या किसी राज्य सरकार या किन्हीं राज्य सरकारों के द्वारा, या आंशिक रूप से केन्द्र सरकार के द्वारा तथा आंशिक रूप से एक या अधिक राज्य सरकारों के द्वारा धारण किया जाता है और इसमें वह कम्पनी सम्मिलित होती हैं जो ऐसी किसी सरकारी कम्पनी की सहायक कम्पनी होती है।

स्वायत्त निकाय- स्वायत्त निकाय एक प्रकार से स्वशासी निकाय होता है, जिसके पास अपने नियमों को बनाने व अपने कार्यकलापों का प्रबंधन करने की स्वतंत्रता होती है।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- खण्ड 10; 2- वर्ष 1858; 3- वी. नरहरी राव; 4-सत्य; 5-क

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी, अमरेश्वर एवं श्रीराम महेश्वरी, (1994) Public Administration, बीसवां संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

2. कारपोरेट कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, (2013) कम्पनी अधिनियमा

3. www.mca.gov.in/Ministry/pdf/Companies Act2013.pdf

4. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, नई दिल्ली, पूर्व नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षका

5. https://www.cag.gov.in/former-cag

6. http://www.cag.gov.in/former-cag?page=1

7. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, नई दिल्ली, (जनवरी 2014) भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971 पर विवरणिका।

8. https://www.cag.gov.in/sites/default/files/cag pdf/DPC2014new.pdf

9. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, नई दिल्ली, हमारा मिशन, दृष्टि और मूल्या

10. https://www.cag.gov.in/hi

11. राष्ट्रपति सचिवालय, राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली, (जुलाई 26, 1979) वरीयता तालिका।

12. https://mha.gov.in/sites/default/files/table of precedence.pdf

13. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) Indian Fublic Administration: Institutions and Issues, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली

2. द्वितीय प्रशासनिक आयोग, भारत सरकार, (अप्रैल 2009) चौदहवां प्रतिवेदनः वित्तीय प्रबंधन प्रणाली को मजबूत बनाना, नई दिल्ली।

3. लाल, जी. एस., (जनवरी 1987) Public Finance and Financial Administration in India, एच. पी. जे. कपूर, नई दिल्ली

4. सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई.पी.ए.-05, वित्तीय प्रशासन, 7-लेखा और लेखापरीक्षण, नई दिल्ली।

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के पद के विकास को समझाईये।
2. नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की सेवा-शर्तों का वर्णन कीजिये।
3. नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कर्तव्यों एवं शक्तियों की विवेचना कीजिये।

इकाई - 8 मत्रिमण्डल सचिवालय, केन्द्रीय सचिवालय, प्रधानमंत्री सचिवालय

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 केन्द्रीय सचिवालय

    8.3.1 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

8.4 कैबिनेट(मत्रिमण्डल) सचिवालय

    8.4.1 कैबिनेट (मत्रिमण्डल) सचिवालय के कार्य

8.5 प्रधानमंत्री कार्यालय

    8.5.1 प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य

8.6 सारांश

8.7 शव्दावली

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों में विभाजित किया गया है जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नितियों का निर्माण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गई है जो मंत्रिमण्डल के कार्यो में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमण्डल सचिवालय देश के एक नीति निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है।

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री को शासन कार्यो में कार्यालयीन सहायता करने के लिए 15 अगस्त, 1947 को प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यो का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।
2. मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।
3. प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे

8.3 केन्द्रीय सचिवालय

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों में विभाजित किया गया है जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नितियों का निर्माण किया जाता है। नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए संलग्न, अधीनस्थ तथा क्षेत्रीय कार्यालय होते है। इस प्रकार सचिवालय एक अवधारणा है जिसका अभिप्राय केन्द्र सरकार के स्तर पर गठित मंत्रालयों एवं विभागों के समुच्चय से है जिनका राजनीतिक अध्यक्ष मंत्री होता है एवं प्रशासनिक अध्यक्ष सचिव होता है।

केन्द्रीय सचिवालय की अवधारणा दो विचारधाराओं पर आधारित है-

1 **राजनीतिक-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा**:- जिसके अन्तर्गत नीति निर्माण को नीति क्रियान्वयन से पृथक किया गया है। इसके अन्तर्गत सचिवालय की भूमिका को नीति निर्धारण से जोड़ा गया है एवं क्रियान्वयन हेतु क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है।

2 **अवधि प्रणाली की विचारधारा**:- केन्द्रीय सचिवालय केन्द्र सरकार के मुख्यालय की हैसियत से नीति निर्माण के लिए उत्तरदायी है परन्तु नीति के क्रियान्वयन के लिए केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है। केन्द्र सरकार के स्तर पर क्षेत्रीय संस्थान मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है-

1.**संबंधित कार्यालय या संलग्न कार्यालय**:- इसके दो मौलिक कार्य है। पहला, नीति निर्माण की प्रक्रिया में तकनीकी परामर्श प्रस्तुत करना एवं दूसरा नीति के क्रियान्वयन का परिवीक्षण करना।

2.**अधीनस्थ कार्यालय**:- यह केन्द्र सरकार की नीति के वास्तविक एवं क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी माना गया है।

इन दोनों के अतिरिक्त क्षेत्रीय संस्थान निम्नांकित प्रकार के भी हो सकते हैं, जैसे - विभागीय उपक्रम, लोक निगम सरकारी कंपनी आदि। ये तीनों मौलिक स्वरूप है। जिनके माध्यम से सरकार वाणिज्यिक एवं व्यावसायिक कार्यो का संचालन करती है।
केन्द्रीय सचिवालय का संगठन:- केन्द्रीय सचिवालय में अनेक मंत्रालय और विभाग है जिनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है। इसके संगठन को निम्नांकित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

पदाधिकारी	**स्तर**
मंत्री	मंत्रालय का राजनीतिक अध्यक्ष
सचिव	मंत्रालय का प्रशासनिक अध्यक्ष
विशेष या अतिरिक्त सचिव	----------------------
अधिकारी वर्ग संयुक्त सचिव	उपविभाग का अध्यक्ष
उपसचिव/निदेशक	प्रभाग का अध्यक्ष
अवर सचिव	शाखा
अनुभाग अधिकारी	अनुभाग
सहायक	अनुभाग अधिकारी का सहायक
कार्यालय	ग्रुप- ब कर्मचारी
ग्रुप- क कर्मचारी	

इस प्रकार निदेशक तथा उपसचिव के पदों को समान स्तर का मानते हुए केन्द्रीय सचिवालय के ढांचे को सचिव से लेकर निम्न श्रेणी तक 9 ग्रेडों में रखा गया है। सचिवालय में अधिकारियों की ये श्रेणियाँ अधिदित सिद्धान्त पर आधारित हैं जिसके अन्तर्गत प्रत्येक श्रेणी के अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि वह जितना अधिक कार्य कर सके, उतना करे और केवल महत्वपूर्ण मामले ही उच्च स्तर पर पहुँचे।

अधिकारी वर्ग प्रायः भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य होते हैं। इन अधिकारीयों की भर्ती केन्द्रीय सरकार के द्वारा विभिन्न राज्यों की भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में से कार्यकाल पद्धति के अन्तर्गत की जाती है। यह पद्धति 1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई। इस वर्ग में भर्ती के दूसरे स्रोत केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया । केन्द्रीय सचिवालय सेवा के अधिकारीयों को मंत्रालयों एवं विभागों से इसलिए सम्बद्ध किया जाता है ताकि सचिवालयी कार्यो में निरन्तरता बनी रही। सन् 1957 से केन्द्रीय सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारीयों की नियुक्ति हेतु केन्द्रीय स्टाफिंग योजना प्रारंभ की गई है।

8.3.1 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

सरकारी हैण्डबुक के अनुसार सचिवालय के प्रमुख कार्य निम्नांकित है-

1. नीति का निर्धारण तथा समय -समय पर आवश्यकतानुसार नीति के संशोधन में मंत्री की सहायता करना।
2. नियम, विधान तथा विनिमय बनाना।
3. क्षेत्रीय कार्यक्रम और योजना तैयार करना।
4. मंत्रालय या विभाग के कार्यो के सन्दर्भ में बजट तैयार करना और व्यय पर नियन्त्रण करना।
5. प्रारम्भ होने वाले कार्यक्रमों और योजनाओं की वित्तीय तथा प्रशासनिक अनुमति देना और उनमें आवश्यक संशोधन करना।
6. कार्यपालिका विभागों एवं अर्द्ध स्वायत्त क्षेत्रीय अभिकरणों द्वारा निर्मित नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण करना।
7. नीतियों की व्याख्या करना एवं उनमें समन्वय लाना।
8. मंत्रालय या विभाग में कार्यरत कर्मचारियों एवं संगठन की क्षमता बढ़ाने के लिए कदम उठाना।
9. मंत्री को उसके संसदीय उत्तरदायित्व को पूरा करने में सहायता देना।

इस प्रकार सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय ही है।

सचिवालय कार्यप्रणाली की आलोचना:- भारत में सचिवालय प्रशासन की रीढ़ है फिर भी सचिवालय की कार्यप्रणाली की निम्नांकित आधारों पर आलोचना की जाती है -

1 अनावश्यक रूप से बढ़ता हुआ आकार।

2 सचिवालय के कर्मियो की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि कि वह एक भीड़ भरा संगठन बन गया है।

3 अत्यन्त खर्चिला।

4 विलम्बकारी प्रकिया।

5 विलंब की समस्या से प्रजातंत्र के स्वरुप में भ्रष्टाचार का उदय।

6 सचिवालय यद्यपि नीति निर्माण करने वाली संस्था है तथापि आजकल यह कार्यकारी विभागों के कार्यो का संचालन अधिकाधिक मात्रा में करने लगा है, परिणामस्वरूप एक ओर तो सचिवालय अपना ध्यान नीति निर्माण के कार्य पर क्रेन्द्रित नहीं कर पाता और दूसरी ओर कार्यकारी इकाईयों की शक्ति में हरास होता जा रहा है।

7 वर्तमान समय में सचिवालय अपना क्षेत्राधिकार बढ़ाने की मनोवृत्ति से पीड़ित।

8 सचिवालय के कार्यकारी अपने आपको इकाईयों के कार्मिकों से अधिक योग्य मानने की प्रवृति से पीड़ित दिखाई देते हैं ।

सचिवालय सुधार के लिये प्रयास एवं सुझाव

भारत सरकार सचिवालय के दोषों को दूर करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रही है। प्रशासनीक सुधार आयोग के सुझावों पर आवश्यकतानुसार अमल किया गया है, जैसे -

1. निर्णय प्रक्रिया में पदसोपानों की संख्या में कमी करने की दिशा में कदम उठाए गये है।
2. निम्न स्तर पर प्रशासनिक कुशलता लाने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है।
3. सचिवालय में अनावश्यक नियुक्तियों को तथा अनावश्यक व्ययों को हतोत्साहित किया जा रहा है।
4. कर्मचारियों की पदोन्नति के नये नियम लागू हो रहे हैं और यह समझा जाने लगा है कि वरिष्ठ पदों को भरने के लिए आयु को अनावश्यक महत्व न दिया जाए।
5. यह भी सुझाव दिया गया है कि एक मंत्रालय के साथ संलग्न सचिव को दोवर्ष के स्थान पर लगातार पांच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए।

इस के अतिरिक्त सचिवालय की कार्य पद्धति को सरल एवं गतिमान बनाया गया है और लालफीताशाही को समाप्त करने पर जोर दिया जा रहा है। सचिवालय सुधार के लिए कुछ सुझाव निम्नांकित है-

1. सचिवालय की कार्य प्रणली को अधिक गति दने के लिए यह आवश्यक है कि सचिवालय केवल नीति निर्माण का ही कार्य करें।
2. सचिवालय के कार्यो में कुशलता लाने के लिए विभागाध्यक्ष, सचिव तथा मंत्री तीनों के मध्य की दूरीयाँ कम की जाए।
3. प्रशासनिक विभागों की अध्यक्षता हेतु विशेषज्ञ अधिकारियों को प्राथमिकता दी जाए।

अवधि प्रणाली:- अवधि प्रणाली की शुरूवात लार्ड कर्जन के द्वारा 1905 में की गई। इसके अर्न्तगत क्षेत्रीय संस्थान के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारियों को एक निर्धारित अवधि के लिए मुख्यालय के स्तर पर पद स्थापित किया जाता था। आजादी के उपरांत अवधि प्रणाली से राज्य सरकार के स्तर पर कार्य कर रहे अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों को एक निश्चित समय तक कन्द्रीय सचिवालय में पद स्थापित किया जाता है। अपने इस कार्यकाल को पूरा करने के उपरान्त उन्हें पुनः संबधित राज्य सरकार की सेवा में वापिस भेज दिया जाता है।

अवधि प्रणाली के पक्ष में तर्क (गुण)-

1. केन्द्र एवं राज्य के वीच अधिक प्रभावी प्रशासनिक समन्वय प्राप्त किया जा सकता है।
2. अवधि प्रणाली केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों के लिए फायदे मन्द है। केन्द्र सरकार अधिक वास्तविक तरीके से स्थानीय अनुभव के आधार पर नीति का निर्माण कर सकती है क्योंकि राज्य सरकार के स्तर कार्य करने वाले अधिकारियों के पास जिला प्रशासन का वास्तविक अनुभव होता

है। राज्य सरकार इन अधिकारियों के माध्यम से अपनी प्रशासनिक गतिविधियों में व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्राप्त कर सकती है।

3. भारतीय प्रशासन में समरूपता प्राप्त करने के दृिष्टिकोण से अवधि प्रणाली का विशेष योगदान है।

4. अवधि प्रणाली देश की एकता एवं अखण्डता बनाये रखने में सहयोगी है।

5. अवधि प्रणाली की विचारधारा भारतीय संघवाद की विचारधारा से मेल रखती है।

6. अवधि प्रणाली अधिकारियों के बीच समानता के अवसर उपलब्ध कराती है।

7. राज्य सरकार के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारी अधिक राजनीतिक निष्पक्षता के साथ अपने कार्यो का संचालन कर सकते है अर्थात् लोक सेवा के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष कार्यो के सन्दर्भ में अवधि प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण है।

8. अवधि प्रणाली के माध्यम से केन्द्र सरकार अपनी नीतियों पर जनता की सामान्य प्रतिक्रया को प्राप्त कर सकती है।

अवधि प्रणाली के विपक्ष में तर्क -

1. जब राज्य प्रशासन के अधिकारी केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत किसी पद को ग्रहण करते हैं तो ऐसी परिस्थिति में संबंधित मंत्रालय की कार्यपद्धति से परिचित न होने के कारण उस अधिकारी की निर्भरता कार्यालय पर बनी रहती है। अतः जिस अवधि प्रणाली के माध्यम से अधिकारियों की कार्यकुशलता को अधिक करने का प्रयास किया गया है उससे वैसा हो पाना संभव नहीं हो रहा है।

2. केन्द्र सरकार के स्तर पर कुछ एसी गतिविधियाँ संचालित की जाती है जिनमें जिला प्रशासन का स्थानीय अनुभव अनिर्वाय नहीं है। अतः ऐसे क्षेत्रों में अवधि प्रणाली की उपयोगिता काफी सीमित हो जाती है।

3. कई परिस्थितियों में ऐसा भी देखने को मिलता है कि राज्य प्रशासन के अधिकारी जब अवधि प्रणाली के अन्तर्गत केन्द्र सरकार के स्तर पर सेवा प्रदान करने जाते है तो इसके उपरांत पुनः राज्य प्रशासन की सेवा में वापिस जाने में दिलचस्पी नही रखते। अतः अवधि प्रणाली के माध्यम से जो लाभ राज्य प्रशासन को होना चाहिए वह संभव नही हो पाता।

4. केन्द्रीय सचिवालय सेवा को स्थापित करने के उपरांत अनुभाग अधिकारी पदोन्नति के माध्यम से उच्चतर अधिकारी वर्ग में शामिल किये जाते है। ऐसा होने के कारण अवधि प्रणाली के अन्तर्गत राज्य प्रशासन के अधिकारियों को सीमित अवसर प्राप्त होते है।

5. अवधि प्रणाली के अंतर्गत केन्द्रीय सचिवालय के स्तर पर आने वाले अधिकारियों की संख्या में अनिश्चितता बनी रहती है।

6. सचिवालय सेवा के अधिकारियों के पदोन्नति के अवसर कम, मनोबल प्रभावित, समन्वय की समस्या

8.4 मंत्रिमण्डल सचिवालय

मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गई है जो मंत्रिमण्डल के कार्यो में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमण्डल सचिवालय देश के एक नीति निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है। भारतीय शासन प्रणाली के अन्तर्गत मंत्रिमण्डल प्रमुख नीति निर्माणकर्ता अभिकरण है। अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय के द्वारा सरकार की नीतियों का अंतिम निर्धारण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में अपने कार्यो को सम्पन्न करता है। प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल के अध्यक्ष के रूप में मंत्रिमण्डल सचिवालय से परामर्श एवं सहयोग प्राप्त करता है जिसकी अध्यक्षता मंत्रिमण्डल सचिव के द्वारा की जाती है। मंत्रिमण्डल सचिव पूरे देश का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी है। विभिन्न मंत्रालयों के बीच समन्वय को प्राप्त करने के लिए मंत्रिमण्डल सचिवालय को उत्तरदायी माना गया है।

जब प्रधानमंत्री सरकार के अध्यक्ष के रूप में अपने कार्यो का निष्पादन करते हैं तो दैनिक प्रशासनिक सहयोग प्रधानमंत्री कार्यालय के द्वारा प्रदान किया जाता है। ऐसी स्थिति में मंत्रिमण्डल सचिवालय एवं प्रधानमंत्री कार्यालय के बीच आजादी के उपरान्त ही समय समय पर विवादस्पद मुद्दे उठते रहे है। संसदीय प्रणालीकी विचारधारा के अनुसार भारतीय शासन में मंत्रिमण्डलीय सचिवालय की भूमिका निर्णायक होनी चाहिए, परन्तु प्रधानमंत्री के बदलते हुए व्यक्तित्व के संदर्भ में मंत्रिमण्डल सचिवालय की निर्णायक भूमिका प्रधानमंत्री कार्यालय में देखने को मिलती है।
संगठन:- मंत्रिमण्डल सचिवालय सीधे प्रधानमंत्री के अधीन कार्य करता है। इसका सचिव कैबिनेट, सचिव होता है जो कि प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। उसकी सहायता के लिए अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी नियुक्त किये जाते है ।

8.4.1 कैबिनेट सचिवालय के कार्य

कैबिनेट सचिवालय केन्द्रीय प्रशासन का केन्द्र-बिन्दु है। भारत में कैबिनेट की कार्यकुशलता तथा प्रशासन की सुव्यवस्था बहुत हद तक मंत्रिमण्डल सचिवालय की क्षमता पर निर्भर करती है। मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्यो का विवरण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत दिया जा सकता है-

1. कैबिनेट सचिवालय के रूप में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल तथा उसकी समितियों को दैनिक कार्य से संबंधित सचिवालय सहायता प्रदान कराना।

कैबिनेट की बैठकों की कार्यसूची तैयार करना, वाद-विवाद तथा निर्णयों का अभिलेख रखना।

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल, उसकी समितियों, राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति कोविभिन्नसरकारी संस्थाओं से संबंधित आवश्यक सूचनायें उपलब्ध कराना।

मंत्रिमण्डल की बैठकों के निर्णयों की सूचना संबंधित विभागों को पहुँचाना।

2. प्रारम्भकर्ता के रूप में:- इस रूप में कैबिनेट सचिवालय तीन प्रकार के प्रारम्भिक कार्य करता है-

मंत्रिपरिषद के मंत्रियों की नियुक्तियाँ, उनके बीच विभागों के वितरण, शपथ ग्रहण, त्यागपत्र आदि से संबंधित समस्त कार्य।

ऐसे कानूनों का निर्माण करना जो सरकार के कार्यो को सुविधापूर्वक सम्पन्न करने में सहायता करते हों।

सरकार की नितियों को लागू करने तथा उनमें समन्वय लाने से सम्बन्धित विभागों की देखरेख रखना।

3. समन्वयकर्ता विभाग के रूप में:- केन्द्रीय प्रशासनिक स्तर पर कैबिनेट सचिवालय एक प्रमुख समन्वय संस्था है। इस रूप में यह निम्नांकित कार्य करता है-

भारत सरकार में कार्यरत विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों आदि के बीच समन्वय स्थापित करना।

सरकार की प्रमुख नीतियों और गतिविधियों में समन्वय।

केन्द्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों के बीच समन्वय।

कैबिनेट सचिव विभिन्न समितियों का अध्यक्ष होने के नाते विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. मंत्रिमण्डल के निर्णयों को क्रियान्वित करने के रूप में-

प्रधानमंत्री तथा मंत्रियों को समय-समय पर महत्वपूर्ण विषयों से सम्बंधित नीतियों के निरूपण एवं निष्पादन के विषय में परामर्श देना।

मंत्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत सभी विषयों के सम्बन्ध में मंत्रिमण्डल की सहायता और कार्यवाही करना जैसे -संसद में व्यवस्थापन के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव तैयार करना, सार्वजनिक जांच समितियों की नियुक्ति, संसद के अधिवेशन प्रारम्भ करने, समाप्त करने आदि पर विचार, विदेशों के साथ सन्धियां एवं समझौते इत्यादि।

कैबिनेट सचिवालय का एक महत्वपूर्ण कार्य यह देखना भी है कि मंत्रिमण्डल या उसकी समितियों द्वारा लिये गये निर्णय लागू हो रहे है या नहीं। इस कार्य हेतु यह सचिवालय मासिक प्रतिवेदन तैयार करता है।

इस प्रकार प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमण्डल सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है। फिर भी मंत्रिमंडल सचिवालय, मंत्रिमण्डल के सचिवालय सम्बन्धी कार्यों के लिए स्टाफ भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।

मंत्रिमण्डल सचिव –

कैबिनेट सचिवालय का प्रमुख कैबिनेट सचिव होता है जो प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहता है। कैबिनेट सचिव द्वारा मंत्रिमण्डल सचिवालय की एवं सचिवों के सम्मलेन की अध्यक्षता की जाती है। कैबिनेट सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम सदस्य होता है। इसे भारतीय प्रशासन का सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित पद माना जाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार-

1. योग्यतम एवं वरिष्ठतम अधिकारियों को ही कैबिनेट सचिव बनाया जाता है।

2. इस पद को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि इसकी अवधि 3 या 4 वर्ष की हो।

3. कैबिनेट सचिव को अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के वेतन का अधिकतम वेतनमान का अधिकतम वेतन दिया जाये।

4. आयोग के अनुसार महत्वपूर्ण नीति निर्धारक विषयों में उसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए, क्योकि वह प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल तथा मंत्रिमण्डलीय समितियों का प्रमुख सलाहकार होता है।

देशमुख टीम के अनुसार इस पद को अन्य सचिवों की तुलना में अधिक वेतनमान दिया जाए। यह टीम इस पद के क्रियान्वयन के तरीके से संतुष्ट नहीं थी और उसने इस पद की गरिमा एवं भूमिका में सुधार के लिए अनेक सिफारिशें की, जैसे -

1 दो या अधिक मंत्रालयों के बीच मतभेद की स्थिति में उन मामलों को कैबिनेट सचिव के पास भेजा जाना चाहिए।

2 कौन सा मामला किस मंत्रालय से संम्बंधित है इसका निराकरण कैबिनेट सचिव पर छोड़ देना चाहिए। साथ ही कैबिनेट सचिव को समय-समय पर अन्य सचिवों से सम्पर्क स्थापित करते रहना चाहिए।

मंत्रिमण्डल सचिवालय एवं मंत्रिमण्डल सचिव की स्थिति पर प्रतिकुल प्रभाव डालने वाले कारण -

1. मंत्रीमण्डलीय सचिव को प्रधानमंत्री का अपेक्षित संरक्षण न मिलना।

2. मंत्रियो और सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारियों में पारस्परिक हितों के लिए गठजोड़, जिसका प्रभाव मंत्रिमण्डलीय सचिव के समन्वय सम्बधि कार्यो पर।

3. कार्मिक प्रशासन मंत्रालय का प्रधानमंत्री के नियंत्रण में रखा जाना और कई महत्वपूर्ण विषयों के सन्दर्भ में इस मंत्रालय का हस्तक्षेप तथा मंत्रिमण्डल सचिव की उपेक्षा।

4. प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के पश्चात कई बार प्रधानमंत्री की मंत्रिमण्डलीय सचिवालय के बजाय प्रधानमंत्री कार्यालय पर अधिक निर्भरता।

5. कई अवसरों पर मंत्रिमण्डलीय सचिवों की नियुक्ति, सेवा विस्तार कार्य आदि के सम्बन्ध में राजनीतिक हस्तक्षेप।

मंत्रिमंण्डल सचिव की कार्यात्मकता को सुदृढ़ करने हेतु कुछ सुझाव:- मंत्रिमण्डल सचिवालय एक प्रभावकारी समन्वयकर्ता निकाय है किन्तु यह प्रभावशाली समन्वय में उतना सक्षम नही हो पाता है। इसके पुनर्गठन और क्षमता के विकास के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं-

1. प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार सांख्यिकी विभाग को वित्तीय विभाग में मिला देना चहिए तथा सैन्य शाखा को रक्षा मंत्रालय को सौप देना चाहिए। ऐसा करने से इस सचिवालय के पास अधिकांशतः मंत्रिमण्डल मामलों से सम्बंधित विभाग ही बचे रहेगें।

2. कैबिनेट सचिव के पद का कार्यकाल तीन या चार साल किया जाना चाहिए।

3. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति के पहले विभिन्न पदों पर प्राप्त प्रशासनिक अनुभव जैसे किसी राज्य में मुख्य सचिव की भूमिका, आदि पर ध्यान देना चाहिए।

4. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति के लिए वरिष्ठता के साथ-साथ योग्यता, प्रभावशीलता, कर्त्तव्य-निष्ठा इत्यादि को ध्यान में रखा जाना चहिए।

5. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति, सेवा-विस्तार आदि के सन्दर्भ में राजनैतिक कारकों को कम से कम किया जाना चाहिए।

6. प्रधानमंत्री कार्यालय और मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्य क्षेत्र को और अधिक स्पष्ट किया जाना चाहिए।

7. मंत्रिमण्डलीय सचिवालय एवं सचिव को प्रधानमंत्री का उपयुक्त संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।

8.5 प्रधानमंत्री कार्यालय

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री को शासन कार्यो में कार्यालयीन सहायता करने के लिए 15 अगस्त, 1947 को प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यो का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था। ज्ञातव्य है कि प्रधानमंत्री ने इसी तिथि से वह सभी कार्य

अपने हाथों में लिए, जो इसके पहले गवर्नर जनरल सरकार की कार्यपालिका के प्रमुख के रूप में किया करता था।

स्वतंत्रता के पश्चात विकास:- आजादी के उपरान्त पंडित नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। नेहरू संसदीय प्रजातान्त्रिक विचारधारा का आदर करते थे एवं मंत्रिमंडल के सामूहिक निर्णय पर विश्वास करते थे। अतः प्रधानमंत्री कार्यालय का सम्बन्ध सीमित दैनिक प्रशासनिक कार्यो से था जो कि प्रधानमंत्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में चाहिए था। अतः इस समय महत्व की दृष्टि से प्रधानमंत्री कार्यालय, कैबिनेट सचिवालय के बाद आता था और प्रधानमंत्री कार्यालय को निर्णयकारी भूमिका प्राप्त नहीं थी।

जब लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने, तब उनके पास प्रशासनिक दक्षता नही थी। अतः शास्त्री ने कार्यालय की भूमिका को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस समय प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका देश के उच्चतर नीति निर्णायक अभिकरण के रूप में स्थापित हुई और शास्त्री के कार्यालय में एल. के. झा. जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले प्रशासनिक अधिकारी को प्रधानमंत्री कार्यालय का सचिव नियुक्त किया गया। झा काफी प्रभावशाली हो गये और उन्हें 'सुपर सचिव' की संज्ञा दी जाने लगी। शास्त्री के समय यह अत्यन्त शक्तिशाली होकर उभरा और प्रधानमंत्री कार्यालय का नामकरण प्रधानमंत्री सचिवालय कर दिया गया।

इन्दिरा गांधी द्वारा प्रधानमंत्री का पद ग्रहण करते समय उनके पास भी प्रशासनिक अनुभव तथा ज्ञान नहीं था अतः स्वाभाविक रूप से उनकी निर्भरता प्रधानमंत्री सचिवालय पर अधिक थी। देश की आर्थिक नीति एवं विदेश नीति जैसी जटिल विषय वस्तु पर इन्दिरा गांधी काफी हद तक प्रधानमंत्री सचिवालय पर निर्भर करती थी। ऐसी दशा में इन्दिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में शास्त्री द्वारा शुरू की गई परम्परा को और अधिक प्रोत्साहन मिला और इस समय प्रधानमंत्री सचिवालय के आकार एवं भूमिका दोनों में वृद्धि हुई, विशेष कर राष्ट्रीय आपातकाल के समय प्रधानमंत्री सचिवालय एक वास्तविक प्रशासनिक सत्ता के एक अतिरिक्त संवैधानिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। प्रधानमंत्री सचिवालय एक निर्णायक अभिकरण के रूप में स्थापित हुआ एवं मंत्रिमण्डल सचिवालय एक ऐसा अभिकरण बन गया, जिसका कार्य प्रधानमंत्री सचिवालय के निर्णयों को लागू करना था।

जनता सरकार के समय प्रधानमंत्री सचिवालय का नामकरण पुनः प्रधानमंत्री कार्यालय के रूप में किया गया। इसकी भूमिका सत्ता एवं आकार दोनों की दृष्टि से सीमित करते हुए मंत्रिमण्डल सचिवालय को एक उचित नीति निर्णायक अभिकरण माना गया तथा प्रधानमंत्री कार्यालय की राष्ट्रीय मामलों में नीति निर्धारण की कोई भूमिका नही रही। यहां तक रॉ संगठन को भी इससे हटा दिया गया। कैबिनेट सचिवालय का कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग जो लोक सेवाओं पर

नियंत्रण रखता है, पहले के समान गृह मंत्रालय को और राजस्व जांच विभाग वित्त मंत्रालय को लौटा दिया गया।

1980 में इन्दिरा गांधी पुनः प्रधानमंत्री बनी और उनके द्वारा जनता सरकार के समय किये गये अनेक कार्यो में परिवर्तन किये गये। साथ ही प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका में बढ़ोत्तरी भी हुई, लेकिन प्रधानमंत्री कार्यालय वह स्थान प्राप्त न कर सका जो उसे पहले प्राप्त था।

1984 में राजीव गांधी के प्रधानमंत्री बनने के उपरान्त प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रमुख प्रशासनिक विषयवस्तुओं पर परामर्शदाताओं की नियुक्ति की गई, जिससे भारतीय प्रशासनिक तंत्र में प्रधानमंत्री कार्यालय का प्रभाव अधिक हुआ। राजीव गांधी के पास भी प्रशासनिक दक्षता की कमी होने के कारण प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता बनी रही। अतः इस समय मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनो दृष्टियों से विस्तार हुआ और वह अपनी खोई शक्ति एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त करने में सफल हुआ। नरसिंहाराव के प्रधानमंत्रित्व काल में विशेषकर अंतिम वर्षो में प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका पुनः अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई। नरसिंहाराव के द्वारा एक अल्पमत सरकार का नेतृत्व किया गया। अतः प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता का अत्यधिक होना स्वाभाविक था।

इण्डिया टुडे के अनुसार वाजपेयी के नेतृत्व में प्रधानमंत्री कार्यालय केवल सजावटी चीज बन कर रह गया है। वैसे सर्वशक्तिमान प्रधानमंत्री कार्यालय को निष्प्रभाव करने का फैसला खुद वाजपेयी ने किया था। वाजपेयी के मित्रों का मानना है कि प्रधानमंत्री ने निगरानी और सुधार तंत्र को प्रभावी तरीके से विकसित किए बगैर अपने मंत्रियों को आजादी देकर गलती की। इससे जहां नियमों की चकाचौंध और उनका असर खत्म हो गया, वही वाजपेयी की निजी छवि को चोट पहुची। प्रधानमंत्री और उनके प्रमुख सचिव की रूचि अधिकतर रक्षा और विदेशी मामलों में होने से मौजूदा प्रधानमंत्री कार्यालय पहले के मुकाबले अन्य मामलों में बहुत कम हस्तक्षेप करता है। इसकी वजह आर्थिक मामले है जहां वाजपेयी कमजोर पड़ जाते है लेकिन धीरे-धीरे प्रधानमंत्री की सरकार पर पकड़ मजबूत होने के साथ ही प्रधानमंत्री कार्यालय की एवं प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव ब्रजेश मिश्र की भूमिका में वृद्धि हुई । रक्षा, विदेश के अतिरिक्त अन्य कई मामलों में प्रधानमंत्री का हस्तक्षेप देखा गया एवं प्रधानमंत्री कार्यालय तथा प्रधान सचिव गतिविधियों में प्रत्यक्ष रूप से भूमिका निभाते नजर आये ।

संयुक्त सरकार की विचारधारा के अन्तर्गत प्रधानमंत्री एक राजनैतिक असुरक्षा की भवना में कार्य करते हैं ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त संयुक्त सरकार में कई अन्य राजनैतिक दलों के सदस्यों को मिलाकर मंत्रिपरिषद का निर्माण किया जाता है। अतः प्रधानमंत्री विश्वसनीय परामर्शो के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय पर ज्यादा निर्भर होते है

लेकिन संयुक्त सरकार में प्रधानमंत्री संतुलन एवं अवरोध के नियम के अर्न्तगत अपने कार्यो का संचालन करते है। ऐसी अवस्था में प्रधानमंत्री की तुलना में मंत्रिमण्डल का विशेष महत्व होता है। अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय की भूमिका का विशेष महत्व होना स्वभाविक है।

संयुक्त सरकार के सन्दर्भ में प्रधानमंत्री कार्यालय गोपनीय विचार हेतु प्रधानमंत्री के लिए एक आरक्षित एवं सुरक्षित स्थान नही माना जाता है। अतः सत्ता का हस्तांतरण प्रधानमंत्री कार्यालय के निवास की ओर देखने को मिल रहा है।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध है। प्रधानमंत्री कार्यालय जो केन्द्रीय सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा है मंत्रिमण्डल सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमंत्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो, तो वह अधिक उपयोगी होगा।

संगठन:- प्रधानमंत्री कार्यालय का शीर्षस्थ अधिकारी प्रधान सचिव कहलाता है अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया जाता है। प्रधानमंत्री अपनी पसन्द के किसी भी व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त कर सकते हैं और यह पद कार्याकाल पद्धति से मुक्त है। उपसचिव और उसे उपर के पदों पर नियुक्ति मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति की स्वीकृति से होती है। अवर सचिव और नीचे के पद गृह मंत्रालय द्वारा भरे जाते है।

8.5.1 प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य:-

साधारणतः प्रधानमंत्री कार्यालय के क्षेत्राधिकार में वह सभी विषय आते हैं जो कि व्यक्तिगत विभाग या मंत्रालय को नही सौंपे गये है। प्रधानमंत्री कार्यालय की निम्नांकित भूमिकाएं है-

1. प्रधानमंत्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में या मुख्य कार्यापालिका के रूप में कार्य करते समय प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सहयोग देता है।

2. यदि कोई प्रशासनिक विषयवस्तु किसी मंत्री को न सौंपी गई हो, तो उस विषयवस्तु का कार्यभार प्रधानमंत्री पर होता है एवं उन विषयवस्तुओं पर प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सहयोग देता है।

3. इस कार्यालय के माध्यम से प्रधानमंत्री अन्य केन्द्रीय मंत्रियों, राष्ट्रपति,राज्यपालों, मुख्यमंत्रियों, राजदूतों आदि से सम्पर्क सूत्र स्थापित करता है।

4. यदि जनता की कोई शिकायत प्रधानमंत्री के पास भेजी जाए, तो प्रधानमंत्री कार्यालय उन शिकायतों का निराकरण सुनिश्चित करता है।

5. प्रधानमंत्री कार्यालय में ससंद में सामान्य विषयों पर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर किया जाता है जिन्हें किसी मंत्रालय को नही सौपा गया है।

6. प्रधानमंत्री के आवश्यक रिकार्ड रखना, उनके अतिथियों के स्वागत सत्कार की व्यवस्था करना तथा प्रधानमंत्री द्वारा मांगी गई सूचना प्रदान करना प्रधानमंत्री कार्यालय के उत्तरदायित्व है।

7. प्रधानमंत्री के आदेश एवं संदेश को मंत्रिमण्डलीय सचिवालय को सूचित करना भी प्रधानमंत्री कार्यालय का कार्य है। आजकल यह प्रधानमंत्री के महत्वपूर्ण भाषण तैयार करने, राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था की देखरेख करने तथा प्रधानमंत्री के विदेश यात्रा के कार्यक्रम बनाने का भी कार्य करने लगा है।

इसके अतिरिक्त भूकंप, बाढ़, सूखा आदि संकटों के समय या अन्य अवसरों पर प्रधानमंत्री कोष से राज्यों या व्यक्तियों को जो आर्थिक सहायता पहुचाई जाती है उसका लेखा-जोखा भी प्रधानमंत्री कार्यालय रखता है।

अभ्यास प्रश्न

1.केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया ।सत्य/असत्य

2.भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में कार्यकाल पद्धति ,1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई। सत्य/असत्य

3.राजीव गांधी किस सन में प्रधानमंत्री नियुक्त किये गए थे। सत्य/असत्य

8.6 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि, सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय है।

इसके साथ ही प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमण्डल सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है। फिर भी मंत्रिमंडल सचिवालय, मंत्रिमण्डल के सचिवालय सम्बन्धी कार्यों के लिए स्टाफ भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कायों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध है। प्रधानमंत्री कार्यालय जो केन्द्रीय सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा है मंत्रिमण्डल सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमंत्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो, तो वह अधिक उपयोगी होगा। लेकिन यदि प्रधानमंत्री कार्यालय समानांतर

सरकार का प्रतिरूप ग्रहण करने का प्रयास करता है तो उसके प्रशासनिक दृष्टि से लाभकारी परिणाम नहीं होगें।

8.7 शब्दावली

सचिवालय:- सरकार को नीति निर्माण में सहयोग करने वाला निकाय है। नीति निर्माण के उपरान्त, उसके क्रियान्वयन के संबंध में प्रमुख कार्यपालिका निकाय है।

प्रधानमंत्री कार्यालय:- प्रधानमंत्री को उनके कार्यो के सम्पादन में (कार्यपालिका प्रमुख के रूप में) सहयोग करने वाला निकाय है।

मंत्रिमंडलीय सचिवालय:- भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों के बीच समन्वय स्थापित करने वाला निकाय है।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची -

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्रप्रतापसिंह

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।
2. मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।
3. प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।

इकाई - 9 राजनीति और प्रशासन में सम्बन्ध

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 राजनीति का अर्थ एवं महत्व
9.4 राजनीति की चिरसम्मत धारणा
9.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताएँ
9.6 प्रशासन
9.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 संदर्भ ग्रन्थ
9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

राजनीतक चिंतक आज के युग में राजनीति को मनुष्य की एक विशेष गतिविधि मानता है। मनुष्यों की यह गतिविधि समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है। इसके क्षेत्र में वही सत्ता आती है जिसका प्रयोग या तो शासन स्वयं करता है अथवा जिसका प्रयोग शासन को प्रभावित करने के लिए होता है।

वर्तमान में शासन को प्रभावित करने के लिए जन लोकपाल एवं भ्रष्टाचार पर राजनीति विशेष रूप से हो रही है। प्रशासन का अर्थ कार्यों को प्रबन्ध करने से है। यद्यपि राजनीति एवं प्रशासन के सम्बन्ध को इस अध्याय में विस्तृत चर्चा की गई है।

प्रशासन एवं राजनीति एक दूसरे के पूरक है। दोनों में ही सत्ता एवं शक्ति का प्रयोग होता है। पूर्व में दोनों में काफी अन्तर एवं भेद की चर्चा होती थी परन्तु वर्तमान में यह भेद लगभग समाप्त हो चुका है और दोनों ही एक दूसरे के अंगीकार बन गये हैं।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1.राजनीति का अर्थ एवं महत्व को जान सकेंगे।
2.राजनीति की चिरसम्मतधारणा को जान सकेंगे।
3.राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
4.राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध में जान सकेंगे।

9.3 राजनीति का अर्थ एवं महत्व

राजनीति शब्द का व्यवहार सामाजिक समूह के लिए किया जाता है जो क्लबों और परिवार जैसे छोटे मानव समूहों से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक व्याप्त है। मानव समाज में यूनानी दार्शनिक प्लेटो से लेकर अब तक के जितने चिंतक आदर्श लोक की कल्पना करते रहे हैं वे सभी अंत में समाज के राजनीतिक पुनर्गठन की बात किसी न किसी रूप में करते हैं। सामाजिक सहयोग, संघर्ष और प्रतिस्पर्धा नामक गतिविधियों को राजनीति कहते हैं।

अरस्तू ने कहा है कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है। इसका अर्थ है कि मनुष्य किसी न किसी राज्य ;पोलिस के अन्तर्गत रहता है, अर्थात् एक सामूहिक सत्ता के माध्यम से अपने जीवन को व्यवस्थित करता है ताकि एक नैतिक प्राणी के नाते वह सदजीवन और आत्म सिद्धि प्राप्त कर सके। अतः अरस्तू की दृष्टि में राजनीति मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को समेट लेती है। मनुष्यों की गतिविधियॉ समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है, जैसे राजनीतिक दलों के द्वारा। राष्ट्रों में यह गतिविधि शांति के समय राजनय के रूप मे व्यक्त होती है और अशांति के समय युद्ध के रूप में। परन्तु युद्ध राजनीति का उपयुक्त तरीका नहीं है । युद्ध का सहारा तब लिया जाता है जब राजनीति विफल हो जाती है। युद्ध के नियमों का पालन राजनीति का विषय अवश्य है। निष्कर्ष में राजनीतिक गतिविधि शक्ति के संघर्ष के रूप में व्यक्त होती है, यह संघर्ष अनेक राष्ट्रों के बीच हो सकता है, एवं एक ही राष्ट्र के भीतर विभिन्न समूहों के बीच भी चल सकता है। दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा की स्थिति में, समाज के दुर्लभ संसाधनों पर अपना प्रभुत्व और नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास को राजनीति की संज्ञा दी जाती है। राजनीति के क्षेत्र में सत्ता वह कहलाती है जिसका प्रयोग या तो शासन स्वयं करता है, या जिसका प्रयोग शासन को प्रभावित करने के लिए होता है अरस्तू द्वारा रचित प्रसिद्ध कृति पालिटिक्स में इस तर्क का खंडन भी किया है कि सत्ता का स्वरूप एक ही होता है परन्तु सभी तरह की सत्ता एक जैसी नहीं होती है। मैक्स वेबर जो जर्मन समाज वैज्ञानिक थे उन्होंने भी सत्ता को वैधानिक एवं तार्किक बताया है। अरस्तू ने सत्ता, शक्ति को राजनीतिक सम्बन्ध का आवश्यक लक्षण माना है, वहीं मैक्स वेबर ने भी सत्ता के प्रयोग क्षेत्र की ओर संकेत किया है।

राजनीति शब्द दैनिक जीवन में बहुत प्रचलित है। राजनीतिक गतिविधियों को लेकर समाज मानता है कि इसका सरोकार केवल सार्वजनिक क्षेत्र से है। अर्थात् संसदों विधायकों, चुनावों और मंत्रिमंडलों से है। आम आदमी राजनीति को संकुचित दायरे में रखकर सोचता है। वह तो इसे या तो केवल मंत्रियों और विधायकों की गतिविधि समझ लेता है अथवा राजनितिज्ञों का चातुर्यपन और चुनाव के पैतरों के साथ जोड़ता है। परन्तु यदि हम राजनीति से घृणा करते हुए उससे दूर भागेंगे तो यह डर है कि राजनीति सचमुच गलत लोंगों के हाथों में चली जायेगी और सार्वजनिक समस्याओं का समाधान नहीं हो सकेगा। वर्तमान में राजनीति ऐसे ही लोगों के द्वारा की जा रही है।

9.4 राजनीति की चिरसम्मत धारणा

प्लेटों, अरस्तू एवं उनके समकालिक विचारकों का मत है कि राज्य मनुष्य के जीवन के लिए अस्तित्व में आता है और सदजीवन के लिए बना रहता है। राज्य के बगैर किसी मनुष्य को मनुष्य रूप में नहीं पहचाना जा सकता। राज्य में सद्जीवन की प्राप्ति के लिए मनुष्य जो कुछ भी करता है, जिन जिन गतिविधियों में भाग लेता है एवं जो नियम संस्थाएं और संगठन को निर्मित करता है, उन सबको अरस्तू ने राजनीति का विषय माना है। इसे ही राजनीति को चिरसम्मतधारणा कहते हैं। मनुष्य के समस्त सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन राजनीति के अन्तर्गत होता था। अरस्तू ने राजनीति को सर्वोच्च विज्ञान का रूतवा दिया। मानव समाज के अन्तर्गत विभिन्न सम्बन्धों को व्यवस्थित करने में राजनीति निर्णायक भूमिका निभाता है। परन्तु आज के युग में राजनीति जनसाधारण के समर्थन पर आश्रित हो गई है, इसलिए यह जन साधारण के जीवन के साथ निकट से जुड़ गई है।

राजनीति की आधुनिक धारणा

राजनीति की चिरसम्मत धारणा के विपरीत, आज के युग में राजनीति का प्रयोग क्षेत्र तो सीमित हो गया है, परन्तु इसमें भाग लेने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई है। राजनीति के अध्ययन में मनुष्य के सामाजिक जीवन की समस्त गतिविधियों पर विचार नही किया जाता, बल्कि केवल उन गतिविधियों पर विचार किया जाता है जो सार्वजनिक नीति और सार्वजनिक निर्णयों को प्रभावित करती हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सर्वाजनिक नीतियॅा और निर्णय इन गिने शासकों, विधायकों या सत्ता धारियों की इच्छा को व्यक्त नहीं करते बल्कि समाज के भिन्न भिन्न समूहों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप उभरकर सामने आते है। इस तरह राजनीति जन साधारण की उन गतिविधियों का संकेत देती है जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न समूह अपने-अपने परस्पर विरोधी हितों में तालमेल स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

परम्परागत राजनीति शास्त्र का मुख्य सरोकार 'राज्य' से था, इसीलिए इसको राज्य के विज्ञान से भी परिभाषित करते हैं। उस काल के राजनीति शास्त्र के विद्वानों एवं लेखकों के लेख में भी इन्हीं बातों का अभिलेख मिलता है। इन लेखों में लेखकों ने अपना ध्यान निम्नलिखित समस्याओं पर ही केन्द्रित किया, जैसे राज्य के लक्षण, मूलतत्व एवं संस्थाएं, सर्वगुण सम्पन्न राज्य परन्तु आधुनिक काल में उपरोक्त विचारों के अतिरिक्त और भी पक्षों का समावेश किया है। उदाहरणार्थ 'राजनीति' मनुष्य की व्यापक क्रिया है, यह केवल राज्य की परिधि में हो नहीं निहित है वरन सम्पूर्ण सामाजिक संगठन के साथ जुड़ी रहती हैं। इसीलिए राजनीति को आज के संदर्भ में एक सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है।

9.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताएँ

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो गया कि राजनीति एक विशेष मानवीय क्रिया है। इन क्रियाओं के कार्यान्वयन में मनुष्य का ही योगदान है तथा क्रियान्वित कार्य राजनीतिक स्थिति कहलाती है। इसके समर्थन में भिन्न विद्वानों ने अपने मत भी प्रकट किये हैं। जैसे एलेन बाल द्वारा रचित पुस्तक 'मार्डन पालिटिक्स एण्ड गवर्नमेंट' के अन्तर्गत लिखा हैः राजनीतिक क्रिया में मतभेद और उन मतभेदों का समाधान निहित होता है। जे. डी. बी. मिलर ने अपनी पुस्तक 'द नेचर और पालिटिक्स' में लिखा है कि राजनीतिक स्थित में संघर्ष के समाधान के लिए शासन या सरकार का प्रयोग किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि राजनीतिक गतिविधि मतभेद की स्थिति से पैदा होती है और इसका सरोकार परिवर्तन की दिशा में या परिवर्तन की रोकथान के लिए संघर्ष के समाधान में प्रयोग से है। इस तरह राजनीतिक प्रक्रिया में दो बातों का होना आवश्यक है, पक्षों में मतभेद या संघर्ष की मौजूदगी एवं सरकार की सत्ता माध्यम से उस संघर्ष के समाधान का प्रयास।

राजनीति का संबंध समाज में 'मूल्यों' के आधिकारिक आवंटन से है। इस परिभाषा में तीन महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया है ये शब्द हैं मूल्य, आधिकारिक एवं आवंटन । मूल्य का अभिप्राय समाज में मिलने वाली वे वस्तुएं जो दुर्लभ है जैसे रोजगार, स्वास्थ्य सेवा, परिवहन सेवा, शिाक्षा, मनोरंजन, मान प्रतिष्ठा इत्यादि से है। इसको ऐसे भी समझा जा सकता है कि वे अभीष्ट वस्तुएं, लाभ अथवा सेवायें जिन्हें हर कोई पाना चाहता है, परन्तु वे इतनी कम है कि उनहें सभी नहीं पा सकते हैं।'आवंटन' शब्द का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों या समूहों में इन वस्तुओं का वितरण या बंटवारें से है। इस बटवारें के लिए निर्णयन प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। निर्णय तो नीति के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। निर्णय का अर्थ है, अनेक में से एक का चयन। नीति में निर्णय तक पहुँचना और उसे कार्यान्वित करना भी शामिल है।

उपरोक्त दो शब्दों की व्याख्या के बाद 'आधिकारिक' शब्द की विवेचना करना भी आवश्यक है। नीति जिन लोगों के लिए बनाई जाती है, और वही जोग जब नीति का पालन करना आवश्यक समझते हैं तब वह नीति आधिकारिक होती है। इस प्रकार से सम्पूर्ण प्रक्रिया में सरकार का ही योगदान है। शासन सत्ता पक्ष के द्वारा ही किया जाता है, सत्ता वैधानिक होती है एवं सत्ता में शक्ति भी निहित होती है। किसी विशेष निर्णय या कार्यवाही को लागू करने के लिए लोगों से सत्ता सहर्ष आज्ञापालन सुनिश्चित कराने की क्षमता रखता है। जब हम राजनीति की परिभाषा मूल्यों के आधिकारिक आवंटन के रूप में देखते है तब हम उसे सार्वजनिक सामाजिक घटना के रूप में पहचानते हैं, अथवा राजनीति एक विश्वव्यापी गतिविधि है। समाज में अभीष्ट वस्तुए, लाभ और सेवाएं, इत्यादि थोड़ी होती है और उनकी मांग करने वाले लोग ज्यादा होते हैं। अतः वहाँ ऐसी आधिकारिक सत्ता की आवश्यकता पड़ती है जो परस्पर विरोधी मांगों को सामने रखकर कोई एक रास्ता निकाल सके और जिसे सब लोक स्वीकार कर लें। इसका अर्थ यह नहीं है कि सबके माँगे पूरी कर दी जाती है या कोई समाधान हमेशा के लिए स्वीकार कर लिया जाता है। वास्तव में एक सामधान स्वीकार करने के पश्चात नई मांगे नये-नये रूपों में प्रस्तुत की जाती है, और फिर नए

समाधान की तलाश की जाती है। अतः राजनीति एक निरंतर प्रक्रिया है। राजनीति के इस दृष्टिकोण को हम साधारणतयः उदारवादी दृष्टिकोण के रूप में पहचानते या पुकारते है। राजनीति का यह आधुनिक दृष्टिकोण है।

राजनीति के प्राचीन दृष्टिकोण के अन्तर्गत सामाजिक जीवन का लक्ष्य या ध्येय पूर्व में ही निर्धारित रहता था और समाज के सदस्यों को पूर्व निर्धारित व्यवस्था के ही अन्तर्गत अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। परन्तु आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत संघर्ष को सामाजिक जीवन का स्वाभाविक लक्षण माना जाता है। इसे बल पूर्वक दबाने की चेष्टा नहीं की जाती है वरन इसका समाधान ढूढने पर बल दिया जाता है।

किसी भी मतदभेद या संघर्ष के समाधान के लिए आधिकारिक सत्ता का प्रयोग आवश्यक होता है। इस सत्ता के प्रयोग के कारण ही आधिकारिक नीतियॉ, नियम एवं निर्णय समाज में स्वीकार किये जाते हैं और प्रभावशाली ढंग से लागू भी किये जाते हैं। सत्ता के दो मुख्य घटक होते हैं, शक्ति और वैधता। पहले भी इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया जा चुका है परन्तु अब विस्तार से इनकी व्याख्या यहां पर की जा रही है। वैधता से तात्पर्य है कि सरकार द्वारा लिए गये निर्णय और उनके अनुरूप बनाये गये नियम सारे समाज में लिए उपयुक्त और कल्याणकारी है इसलिए समाज के सभी वर्ग उसे मन से स्वीकार करते हुए और उन नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करने की तत्पर रहते हैं। शक्ति का अर्थ है समाज की इच्छा के विरूद्ध किसी नियम या निर्णय को बल पूर्वक आदेशानुसार पालन करवाना। समाज में व्यवस्था स्थापित रखने के लिए वैधता और शक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। चूंकि राजनीति में सत्ता का प्रयोग आवश्यक हे, और शक्ति के बिना सत्ता अधूरी है इसलिए राजनीति में शक्ति का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनीति में शक्ति के तीन प्रकार हैं राजनीतिक शक्ति, आर्थिक शक्ति और विचारात्मक शक्ति। राजनीतिक शक्ति का अर्थ है नीतियॉ एवं कानून का निर्माण करना, कानून को लागू करना, कर लगाना, और वसूल करना, कानून का पालन न करने वालों को दण्डित करना तथा शत्रुओं एवं आक्रमण कारियों को नष्ट करने से है। साधारणतः राजनीतिक शक्ति का उपयोग सरकार के तीन विभिन्न अंगों द्वारा किया जाता है, विधान मण्डल, कार्यपालिका एवं न्याय पालिका इन्हें शक्ति के औपचारिक अंग कहते हैं। परन्तु इनके अलावा कुछ अनौपचारिक अंग भी है जैसे विभिन्न दबाव समूह, राजनीतिक दल आदि। ये अपने ढंग से राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करते हैं।

आर्थिक शक्ति का अर्थ है, धन सम्पदा, उत्पादन के साधनों या अन्य दुर्लभ साधनों के स्वामित्व के बल पर निर्धन लोगों या निधर्न राष्ट्रों के जीवन की परस्थितियों पर नियन्त्रण स्थापित करने से है। आर्थिक शक्ति राजनीति पर व्यापक प्रभाव डालती है। उदार लोकतंत्र के अन्तर्गत बडे-बड़े जमीदार, उद्योगपति और व्यापारिक घराने सार्वजनिक नीतियों और निर्णयों को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं और विकास की प्राथमिकताएं निर्धारित करने में अपने हित को सर्वोपरि रखते हैं। बड़े बड़े

पूंजीपति अक्सर अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों और चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को भारी वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। ऐसी सहायता पाने वाले राजनीतिज्ञ ऊपरी तौर पर जनसाधारण के हितों की दुहाई देते हैं परन्तु भीतर से वे अपने वित्तदाताओं के हितों के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।
विचारात्मक शक्ति राजनीतिक शक्ति का एक गूढ़ आधार प्रस्तुत करती है। विचारात्मक शक्ति शासन की व्यवस्था को समाज की दृष्टि में उचित ठहराती है और इसीलिए उसे बैद्यता प्रदान करती है। समाज में शासक वर्ग सर्वोत्तम शासन प्रणाली के बारे में विचारों को बढ़ावा देते हैं जिन्हें राजनीतिक विचारधारा कहते हैं। आज के युग में भिन्न भिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक व्यवस्थाएं प्रचलित है और उन्हें उचित ढहराने के लिए पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, लोकतंत्रीय समाजवाद आदि सर्वोत्तम शासन प्रणाली सिद्ध करने को तत्पर रहती हैं ये सारे वाद विभिन्न विचारधाराओं के ही उदाहरण है।

9.6 प्रशासन

अंग्रेजी शब्द एडमिनिस्ट्रेसन की रचना लैटिन के दो शब्दों से मिलकर हुई है । वे शब्द है एड एवं मिनिस्टर, जिसका अर्थ है प्रबन्ध करना। अंग्रेजी शब्दकोष के अनुसार प्रशासन शब्द का अर्थ है कार्यों का प्रबन्ध। शासन करने से तात्पर्य है प्रबन्ध करना, निर्देशन करना इत्यादि। प्रशासन शब्द को विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है।
पाल. एच. एपिलबी - यदि प्रशासन न हो तो सरकार तो केवल वाद विवाद का क्लब मात्र बन कर रह जायेगी बर्शते इस स्थिति में वह जीवित रह सके ।
ई. एन. ग्लेडन के अनुसार प्रशासन का अर्थ है ष्लोगों की परवाह करना या देखभाल करना, कार्यों का प्रबन्ध करना, किसी जाने बूझे कार्य की पूर्ति के लिए उठाया जाने वाल सुनिश्चित पग।
नीग्रो -किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य तथा सामग्रियों का जो संगठन तथा उपयोग किया जाता है उसे प्रशासन कहा जाता है।
एल. डी. व्हाइट ने प्रशासन को कुछ इस प्रकार पारिभाषित किया है किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए बहुत से व्यक्तियों के निर्देशन, समन्वय तथा नियंत्रण को ही प्रशासन की कला कहते हैं।
फिफनर ने प्रशासन की परिभाषा इस प्रकार की है वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मानवीय तथा भौतिक साधनों का संगठन तथा निर्देशन ही प्रशासन है।
हरबर्ट साइमन के शब्दों में प्रशासन सबसे अधिक व्यापक अर्थ में, समान लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वर्गों द्वारा मिलकर की जाने वाली क्रियाओं को प्रशासन कहा जा सकता है ।
लूथर गूलिक के अनुसार प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों के करवाने से, निश्चित उद्देश्य की पूर्ति कराने से है।
उपरोक्त परिभाषाओं से विदित है कि प्रशासन सर्वमान्य लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सहयोग करने वाले वर्गों की क्रियाओं से तात्पर्य है। दूसरे शब्दों में प्रशासन में वे सभी क्रियाएं आती है जो किसी उद्देश्य या ध्येय की प्राप्ति के लिए की जाती है। प्रशासन शब्द का प्रयोग संकीर्ण अर्थ में भी किया जाता है

जिसका अभिप्राय व्यवहार के उन सभी प्रतिरूपों से है जो विभिन्न प्रकार सहयोगी समूहों में एक जैसे होते है और जो उन निश्चित उद्देश्यों पर आधारित नहीं होते जिनके लिए वे परस्पर सहयोग करते हैं और न ही वे उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग की जा रही निश्चित पद्धतियों पर आधारित होते हैं।

9.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध

प्रशासन को राजनीति से भिन्न रखने में आरम्भिक दौर के चिंतकों ने काफी भेद किया। उनकी दृष्टि में राजनीति नीतियों का निर्माण करती है, और प्रशासन का कार्य है कि वह यथासंभव कुशलता एवं मितव्ययिता से उन नीतियों को लागू करे। अतः क्रियाओं की दृष्टि से राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र पृथक एवं भिन्न हैं। लोक प्रशासन के पितामह 'वुडरो विल्सन' ने अपने लेख 'स्टडी आफ एडमिनिस्ट्रेसन' में लिखा है कि प्रशासन का उचित क्षेत्र राजनीति से बाहर है।प्रशासनिकप्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं होते। यद्यपि प्रशासन के ध्येय राजनीति निश्चित करती है, किन्तु यह अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि वह प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप करें। ब्लंटश्ली को समर्थन देते हुए उन्होंने ब्लंटश्ली के शब्दों को दोहराया,राजनीतिमहान और सर्वव्यापी विषयों में राज्य की क्रिया है। अतः राजनीत राजमर्मज्ञ का विशेष क्षेत्र है और प्रशासन तकनीकी अधिकारी का विशेष क्षेत्र है।

कालान्तर में राजनीति एवं प्रशासन के भेद की काफी आलोचना हुई। प्रशासन के अराजनीतिक दृष्टिकोंण पर इतना बल दिया गया कि इसने प्रशासन को अपरिवर्तनीय परिभाषा बना दिया जो अपने स्वतंत्र सिद्धान्तों का अनुसरण करता है, चाहे सरकार का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, और जिन राजनीतिक मूल्यों के अधीन इसे काम करना है वे कैसे ही क्यों न हों। यह दृष्टिकोंण पूर्णतया गलत है, क्यों कि किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था उसकी प्रशासन व्यवस्था से न तो बाहर है और न असम्बन्धित, अपितु यही तो इसका ताना बाना है। राजनीति और प्रशासन के बीच सम्बन्धों का विकास कालान्तर में हुआ। जान लाक तथा मांटेस्क्यू के समय से लेकर आजतक विद्वान, प्रशासक राजनीतिज्ञ इस विषय पर वाद विवाद करते रहे हैं। अपने गणतंत्र के प्रारम्भिक समय से ही अमेरिका के राजनेता नीति-निर्माण तथा प्रशासनिक विषयों में भेद करते आये हैं। इससे राजनीति और प्रशासन में द्विभाजन का विकास हुआ। यद्यपि इस धारणा का द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात अन्तिम तौर पर परित्याग कर दिया गया।

प्रशासन व राजनीति में भेद को लेकर काफी आलोचना हुई और लोक प्रशासन के विद्वानों ने इस भेद को अस्वीकृत कर दिया एवं एक सिरे से नकार दिया। तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्रशासन का नीति निर्माण या निर्धारण के कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह इसमें सक्रिय भाग लेता है। यह एक पूर्णतया अतार्किक तर्क है कि नीति निर्धारण कार्य प्रशासनिक अधिकारी वर्ग की सहायता या परामर्श के बिना भी सम्पन्न किया जा सकता है। मन्त्री गण अधिकांश विधेयक अपने उच्च प्रशासनिक अधिकारी के प्रेरणा पर ही पारित करते हैं। हस्तांरित विधान की सम्पूर्ण धारणा राजनीति व प्रशासन के विभाजन को अर्थहीन एवं तथ्यहीन सिद्ध करती है। तथ्यों व आंकडों के अभाव में किसी भी सफल नीति का निर्धारण असम्भव है। ये तथ्य तथा आंकड़े प्रशासनिक

अधिकारी ही प्रदत्त करते हैं। कानूनों व नीतियों की व्यावहारिकता तथा अव्यावहारिकता प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि पग-पग पर राजनीति एवम प्रशासन परस्पर मिश्रित प्रतीत होते हैं, हर पल प्रशासन राजनीति को प्रभावित करता है। एपिलबी का कहना था कि नीति का निर्माण ही लोक प्रशासन है। उपरोक्त विचारों से यह सिद्ध हो गया कि राजनीति एवं प्रशासन अविभाज्य है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित तथ्य उसके साक्षी है।

राजनीतिक नेता को जटिल और तकनीकी विषयों पर नीति सम्बन्धी निर्णय करने के लिए ज्ञानपूर्ण परामर्श हेतु सर्वथा स्थायी कर्मचारियों पर आश्रित होना पड़ता है।

पेचीदा स्थितियों में नीति निर्माण तथा नीति परिपालन एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।प्रायः नीतियों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या हो सकती है। ऐसी स्थिति में जो प्रशासक एक नीति का परिपालन करने के लिए उत्तरदायी होते है, उस नीति की व्याख्या करते हुए स्वेच्छा-निर्णय का प्रयोग भी करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. राज्य के चार तत्व होते है ।सत्य/असत्य
2. राजनीति का सम्बन्ध नीति निर्माण से होता है। सत्य/असत्य
3. प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के क्रियान्वयन से होता है। सत्य/असत्य

9.8 सारांश

उपरोक्त लेख अध्ययन करने के बाद राजनीति एवं प्रशासन शब्द से भली भाँति परिचित हो चुके होंगे। कानूनों व नीतियों की व्यावहारिकता तथा अव्यावकारिकता, प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि राजनीति एवं प्रशासन मिश्रित प्रतीत होते हैं।

इससे स्पष्ट है की नीति निर्माण और नीति क्रियान्वयन एक दूसरे से पूरी तरह से पृथक नहीं किये जा सकते है। क्योंकि मंत्री विभागाध्यक्ष होते हैं जो अपनी अनुभवहीनता और और विशेषज्ञता के अभाव में काफी हद तक प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श पर निर्भर करते है।

9.9 शब्दावली

राज्य –एक **निश्चित भूभाग** में रहने वाली **जनसंख्या**,जिसकी अपनी **सरकार** हो, जो अपने आंतरिक और वाह्य मामलों में पूरी तरह से स्वतन्त्र हो(संप्रभुता) ।

आवंटन - व्यक्तियों या समूहों में वस्तुओं का विवरण

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. सत्य २. सत्य ३. सत्य

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

1.गावा, ओ. पी. - राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा

2.जैन पुखराज - राजनीति विज्ञान

9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 .शर्मा एवं सडाना- लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार

2 .एन. सी. ई. आर. टी.

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजनीति को परिभाषित करते हुए विभिन्न धारणाओं की व्याख्या कीजिए।
2. राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।
3. राजनीति एवं प्रशासन से आप क्या समझते हैं, दोनों के मध्य सम्बन्धों पर अपनी समीक्षा कीजिए

इकाई- 10 पंचायतीराज, 73वां संविधान संशोधन अधिनियम

इकाई की रुपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज
10.3.1 बलवंत राय मेहता समिति
10.3.2 अशोक मेहता समिति
10.3.3 जी.वी.के. समिति
10.3.4 डा. एल. एम. सिंघवी समिति
10.3.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति
10.4 73वें संविधान संशोधन की सोच
10.4.1 73वां संविधान अधिनियम
10.4.2 73वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं
10.5 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें
10.6 सांराश
10.7 शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

स्वतन्त्रता पूर्व पंचायतों की मजबूती व सुदृढ़िकरण हेतु विशेष प्रयास नहीं हुए इसके विपरीत पंचायती राज व्यवस्था लड़खड़ाती रही। मध्य काल में मुस्लिम राजाओं का शासन भारत के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। यद्यपि स्थानीय शासन की संस्थाओं की मजबूती के लिए विशेष प्रयास नहीं किये गये परन्तु मुस्लिम शासन ने अपने हितों में पंचायतों का काफी उपयोग किया। जिसके फलस्वरूप पंचायतों के मूल स्वरूप को धक्का लगा और वे केन्द्र के हाथों की कठपुतली बन गई। सम्राट अकबर के समय स्थानीय स्वशासन को पुनः मान्यता मिली। उस काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयां कार्यशील बनी। स्थानीय स्तर पर शासन के सारे कार्य पंचायतें ही करती थीं और शासन उनके महत्व को पूर्णतः स्वीकार करता था। लेकिन मुस्लिम काल के इतिहास को अगर समग्र रूप में देखा जाए तो इस काल में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को मजबूती नहीं मिल सकी।

ब्रिटिश काल के दौरान भी प्राचीन पंचायत व्यवस्था लड़खड़ाती रही। अंग्रजों शासन काल मे सत्ता का केन्द्रीकरण हो गया और दिल्ली सरकार पूरे भारत पर शासन करने लगी। केन्द्रीकरण की नीति के तहत अंग्रेज तो पूरी सत्ता अपने कब्जे में करके एक-क्षत्र राज चाहते थे। भारत की विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था उन्हें अपने मनसूबों को पूरा करने में एक रुकावट लगी। इसलिये अंग्रेजों ने हमारी सदियों से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की परम्परा व स्थानीय समुदाय की ताकत का तहस-नहस कर शासन की अपनी व्यवस्था लागू की। जिसमें छोट-छोटे सूबे तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं कमजोर बना दी गई या पूरी तरह समाप्त कर दी गई। धीरे धीरे सब कुछ अंग्रेजी सरकार के अधीन होता गया। सरकार की व्यवस्था मजबूत होती गई और समाज कमजोर होता गया। परिणाम यह हुआ कि यहां प्रशासन का परम्परागत रूप करीब-करीब समाप्त प्राय हो गया और पंचायतों का महत्व काफी घट गया। अंग्रेजी राज की बढ़ती ताकत व प्रभाव से आम आदमी दबाव में था। समाज में असंतोष बढ़ने लगा, जिसके कारण 1909 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक विकेन्द्रीकरण कमीशन की नियुक्ति की गई। 1919 में ''मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार'' के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतो को फिर से स्थापित करने का काम प्रांतीय शासन पर छोड दिया। अंग्रेजों की नियत तब उजागर हुई जब एक तरफ पंचायतों को फिर से स्थापित करने की बात कही और दूसरी तरफ गाँव वालों से नमक तक बनाने का अधिकार छुड़ा लिया। इसी क्रम में 1935 में लार्ड वैलिंग्टन के समय भी पंचायतों के विकास की ओर थोड़ा बहुत ध्यान दिया गया लेकिन कुल मिलाकर ब्रिटिशकाल में पंचायतों को फलने-फूलने के अवसर कम ही मिले।

हम नब्बे के दशक में भारत सरकार द्वारा पंचायतों को नया स्वरूप देने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में किये गये 73वें संशोधन अधिनियम के बारे में पढ़ेंगे। प्राचीन समय में भी देश के गांवों

का पूरा कामकाज पंचायतें ही चलाती थी। लोग इस संस्था को गहरी आस्था व सम्मान की की दृष्टि से देखते थे, इसलिये इसका निर्णय भी सब को मान्य होता था। इसी धारणा को ध्यान में रख कर व सामान्य व्यक्ति की शासन में भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों को संवैधानिक स्थान देने की आवश्यकता हुई। जिसके लिए संविधान का 73वॉ संविधान संशोधन किया गया। जिसका विस्तृत अध्ययन आप इस अध्याय में करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

1.स्थानीय स्वशासन के बारे में जान पायेंगे।

2.स्थानीय स्वशासन को वैधानिक रुप देने के लिए संविधान में 73वां संविधान संशोधन के विषय में जान पायेंगे।

3.73वें संविधान संशोधन के पिछे सोच के कारणों ज्ञान होगा।

4.संविधान में मौज़ुद मुख्य बिन्दुओं की जानकारी मिलेगी ।

10.3 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचायतों के पूर्ण विकास के लिये प्रयत्न शुरू हुए। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी स्वराज और स्वावलम्बन के लिये पंचायती राज के प्रबलतम समर्थक थे। गांधी जी ने कहा था- ”सच्चा स्वराज सिर्फ चंद लोगों के हाथ में सत्ता आ जाने से नहीं बल्कि इसके लिये सभी हाथों में क्षमता आने से आयेगा। केन्द्र में बैठे बीस व्यक्ति सच्चे लोकतन्त्र को नहीं चला सकते। इसको चलाने के लिये निचले स्तर पर प्रत्येक गांव के लोगों को शामिल करना पड़ेगा।“ गांधी जी की ही पहल पर संविधान में अनुच्छेद-40 शामिल किया गया। जिसमें यह कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों को सुदृढ़ करने हेतु कदम उठायेगा तथा पंचायतों को प्रशासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिये आवश्यक अधिकार प्रदान करेगा। यह अनुच्छेद राज्य का नीति निर्देशक सिद्धान्त बना दिया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिये विभिन्न कमीशन नियुक्त किये गये, जिन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को पुर्नजीवित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया।

भारत में सन1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये। किन्तु प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिल सकी, इसका मुख्य कारण जनता का इसमें कोई सहयोग व रुचि नहीं थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सरकारी कामों के रुप में देख गया और गॉववासी अपने उत्थान के लिए स्वयं प्रयत्न करने के स्थान पर सरकार पर निर्भर रहने लगी। इस कार्यक्रम के सूत्रधार यह आशा करते थे कि जनता इसमें आगे आये और दूसरी ओर उनका

विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही यह कार्यक्रम सफल हो सकता है। कार्यक्रम जनता ने चलाना था, लेकिन वे बनाये उपर से जाते थे। जिस कारण इन कार्यक्रमों में लोक कल्याण के कार्य तो हुए लेकिन लोगों की भागीदारी इनमें नगण्य थी। ये कार्यक्रम लोगों के कार्यक्रम होने के बजाय सरकार के कार्यक्रम बनकर रह गये। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के असफल हाने के कारणों का अध्ययन करने के लिए एक कमेटी गठित की गयी, जिसका नाम बलवन्त राय मेहता समिति था।

अभ्यास प्रश्न-1

1. 1919 के किस सुधार के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतो को फिर से स्थापित करने का काम प्रांतीय शासन पर छोड दिया।
2. पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने के लिए संविधान में........संविधान संशोधन किया गया।
3. भारत में किस सनमें सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये।

क. 1950 ख. 1952 ग. 1954 घ. 1956

10.3.1 बलवंत राय मेहता समिति

1957 में सरकार ने पंचायतों के विकास पर सुझाव देने के लिए श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की इस रिपोर्ट में यह सिफारिश की गयी कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त स्थानपा की जानी चाहिए। इसे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया गया। मेहता कमेटी के अपनी निम्नलिखित शिफारिशें रखी।

1. ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड(ब्लाक) स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। अर्थात् पंचायतों की त्रिस्तरीय संरचना बनायी जाये।
2. पंचायती राज में लोगों को सत्ता का हस्तान्तरण किया जाना चाहिए।
3. पंचायती राज संस्थाएं जनता के द्वारा निर्वाचित होनी चाहिए और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधिकारी उनके अधीन होने चाहिए।
4. साधन जुटाने व जन सहयोग के लिए इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।
5. सभी विकास संबंधी कार्यक्रम व योजनाएं इन संगठनों के द्वारा लागू किये जाने चाहिए।
6. इन संगठनों को उचित वित्तीय साधन सुलभ करवाये जाने चाहिए।

राजस्थान वह पहला राज्य है जहां पंचायती राज की स्थापना की गयी। 1958 में सर्वप्रथम पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 2 अक्टूबर को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का दीपक प्रज्जवलित किया और धीरे धीरे गांवों में पंचायती राज का विकास शुरू हुआ। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह पहला कदम था। 1959 में आन्ध्र प्रदेश में भी पंचायती राज लागू

किया गया। 1959 से 1964 तक के समय में विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को लागू किया गया और इन संस्थाओं ने कार्य प्रारम्भ किया। लेकिन इस राज से ग्रामीण तबके के लोगों का नेतृत्व उभरने लगा जो कुछ स्वार्थी लोगों की आँखों में खटकने लगा, क्योंकि वे शक्ति व अधिकारों को अपने तक ही सीमित रखना चाहते थे। फलस्वरूप पंचायती राज को तोड़ने की कोशिशें भी शुरू हो गयीं। कई राज्यों में वर्षो तक पंचायतों में चुनाव ही नहीं कराये गये। 1969 से 1983 तक का समय पंचायती राज व्यवस्था के ह्रास का समय था। लम्बे समय तक पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव नहीं करवाये गये और ये संस्थाएं निष्क्रीय हो गयी।

10.3.2 अशोक मेहता समिति

जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद पंचायतों को मजबूत करने के उद्देश्य से 12 दिसम्बर 1977 को पंचायती राज संस्थाओं में आवश्यक परिवर्तन सुझाने के लिए में श्री "अशोक मेहता" की अध्यक्षा में 13 सदस्यों की कमेटी गठित की गई। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं मे आई गिरावट के लिए कई कारणों को जिम्मेदार बताया। इसमें प्रमुख था कि पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग रखा गया है। अशोक मेहता समिति ने महसूस किया कि पंचायती राज संस्थाओं की अपनी कमियां स्थानीय स्वशासन को मजबूती नहीं प्रदान कर पा रही हैं। इस समिति द्वारा पंचायतों को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये गये-

1.समिति ने दो स्तरों वाले ढाँचे- जिला परिषद को मजबूत बनाने और ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचायत की सिफारिश की। अर्थात पंचायती राज संस्थाओं के दो स्तर हों, जिला परिषद व मंडल परिषद।

2.जिले को तथा जिला परिषद को समस्त विकास कार्यों का केन्द्र बनाया जाए। जिला परिषद ही आर्थिक नियोजन करें और जिले में विकास कार्यों में सामन्जस्य स्थापित करें और मंडल पंचायतों को निर्देशन दें।

3.पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन में जिला परिषद को मुख्य स्तर बनाने और राजनैतिक दलों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया।

4.पंचायतों के सदस्यों के नियमित चुनाव की सिफारिश की। राज्य सरकारों को पंचायती चुनाव स्थगित न करने व चुनावों का संचालन मुख्य चुनाव आयुक्त के द्वारा किये जाने का सुझाव दिया।

5.कमेटी ने यह सुझाव भी दिया कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने के लिये संवैधानिक प्रावधान बहुत ही आवश्यक है।

6.पंचायती राज संस्थाएं समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यों का सम्पादन करें।

7.राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

8.देश के कई राज्यों ने इन सिफारिशों को नहीं माना, अतः तीन स्तरों वाले ढाँचे को ही लागू रखा गया।

इस प्रकार अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार लाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण शिफारिशें की, किन्तु ग्राम पंचायतों को समाप्त करने की उनकी शिफारिश पर विवाद पैदा हो गया। ग्राम पंचायतों की समाप्ति का मतलब था, ग्राम विकास की मूल भावना को ही समाप्त कर देना। समिति के सदस्य सिद्धराज ढ़ड्डा ने इस विषय पर लिखा कि ''मुझे जिला परिषदों और मंडल पंचायतों से कोई आपत्ति नहीं है किन्तु समिति ने ग्राम सभा की कोई चर्चा नहीं की, जबकि पंचायती राज संस्थाओं की आधारभूत इकाई तो ग्राम सभा को ही बनाया जा सकता था।'

10.3.3 जी.वी.के. समिति

पंचायतों के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया में सन1985 में जी.वी.के. राव समिति गठित की गई। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देकर उन्हें सक्रिय बनाने पर बल दिया। साथ ही यह सुझाव भी दिया कि योजना निर्माण व संचालित करने के लिये जिला मुख्य इकाई होना चाहिये। समिति ने पंचायतों के नियमित चुनाव की भी सिफारिश की।

10.3.4 डा. एल. एम. सिंघवी समिति

1986 में डा. एल.एम. सिंघवी समिति का गठन किया गया। सिंघवी सामिति ने 'गांव पंचायत'(ग्राम-सभा) की सिफारिश करते हुये संविधान में ही नया अध्याय जोड़ने की बात कही जिससे पंचायतों की अवहेलना ना हो सके। इन्होंने ने गांव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की भी सिफारिश की।

10.3.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति

1988 में सरकारिया आयोग बैठाया गया जो मुख्य रुप से केन्द्र व राज्यों के संबंधों से जुड़ा था। इस आयोग ने भी नियमित चुनावों और ग्राम पंचायतों को वित्तीय व प्रशासनिक शक्तियां देने की सिफारिश की। 1988 के अंत में ही पी0 के0 थुंगर की अध्यक्षता में संसदीय परामर्श समिति की उपसमिति गठित की गयी। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की शिफारिश की।

भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. राजीव गांधी की सरकार ने गांवों में पंचायतों के विकास की ओर अत्यधिक प्रयास करने शुरू किये। श्री राजीव गांधीं का विचार था कि जब तक गांव के लोगों को विकास प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनाया जाता, तब तक ग्रामीण विकास का लाभ ग्रामीण जनता को नहीं मिल सकता। पंचायती राज के द्वारा वे गांव वालों के, खासकर अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में बदलाव लाना चाहते थे। उन्होंने इस दिशा में कारगर

कदम उठाते हुये 64वां संविधान विधेयक ससंद में प्रस्तुत किया। लोकसभा ने 10 अगस्त 1988 को इस विधेयक को अपनी मंजूरी दे दी। मगर राज्य सभा में सिर्फ पांच मतों की कमी रह जाने से यह पारित न हो सका। फिर 1991 में तत्कालीन सरकार ने 73वां संविधान संशोधन विधेयक को संसद में पेश किया। लोक सभा ने 2 दिसम्बर 1992 को इसे सर्व सम्मति से पारित कर दिया। राज्य सभा ने अगले ही दिन इसे अपनी मंजूरी दे दी। उस समय 20 राज्यों की विधान सभाएं कार्यरत थीं। 20 राज्यों की विधान सभाओं में से 17 राज्यों की विधान सभाओं ने संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर दिया। 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति ने भी इस विधेयक को मंजूरी दे दी। तत्पश्चात 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल से लागू हो गया।

10.4 73वें संविधान संशोधन की सोच

पंचायतों को मजबूत, अधिकार सम्पन्न व स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में स्थापित करने हेतु संविधान में 73वां संशोधन अधिनियम एक क्रान्तिकारी कदम है। 73वें संविधान संशोधन के पीछे निम्न सोच है-

1.निर्णय को विकेन्द्रीकृत करना तथा स्थानीय स्तर पर संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक प्रकिया शुरू करना।

2.स्थानीय स्तर पर पंचायत के माध्यम से निर्णय प्रक्रिया, विकास कार्यों व शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।

3.ग्राम विकास प्रक्रिया के नियोजन, क्रियान्वयन तथा निगरानी में गांव के लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना व उन्हें अपनी जिम्मेदारी का अहसास कराना।

4.लम्बे समय से हासिये पर रहने वाले तबकों जैसे महिला, दलित एवं पिछड़ों को ग्राम विकास व निर्णय प्रक्रिया में शामिल करके उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना।

5.स्थानीय स्तर पर लोगों की सहभागिता बढ़ाना व लोगों को अधिकार देना।

10.4.1 73वां संविधान अधिनियम

स्वतन्त्रता पश्चात देश को सुचारू रूप से चलाने के लिये हमारे नीति निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान में नियमों के अनुरूप व एक नियत प्रक्रिया के अधीन जब भी कुछ परिवर्तन किया जाता है या उसमें कुछ नया जोड़ा जाता है अथवा हटाया जाता है तो यह संविधान संशोधन अधिनियम कहलाता है। भारत में सदियों से चली आ रही पंचायत व्यवस्था जो कई कारणों से काफी समय से मृतप्रायः हो रही थी, को पुर्नजीवित करने के लिये संविधान में संशोधन किये गये। ये संशोधन तिहत्तरवां व चौहत्तरवां संशोधन अधिनियम कहलाये। तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की

गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहां स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात "नया पंचायती राज अधिनियम" प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुँचाने का एक उपकरण है। गांधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

लोकतंत्र को मजबूत करने के लिये नई पंचायत राज व्यवस्था एक प्रशंसनीय पहल है। गांधी जी का कहना था कि "देश में सच्चा लोकतंत्र तभी स्थापित होगा जब भारत के लाखों गांवों को अपनी व्यवस्था स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त होगा। गांव के लिये नियोजन, प्राथमिकता चयन लोग स्वयं करेंगे। ग्रामीण अपने गांव विकास सम्बन्धी सभी निर्णय स्वयं लेंगे। ग्रामविकास कार्यक्रम पूर्णतया लोगों के होंगे और सरकार उनमें अपनी भागीदारी देगी"। गांधी जी के इस कथन को महत्व देते हुये तथा उनके ग्राम-स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिये भारतीय सरकार ने पंचायतों को बहुत से अधिकार दिये हैं। तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है -

1.73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।

2.नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।

3.यह तीन स्तरों - ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।

4.एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।

5.इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।

6.अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।

7.पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।

8.पंचायत 6 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 6 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।

9.इस संशोधन के अन्तर्गत पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।

10.73वें संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अन्तर्गत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।

11.हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।

12.उक्त संशोधन के अर्न्तगत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।

13.पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।

14.हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

अतः संविधान के 73वें संशोधन ने नयी पंचायत व्यवस्था के अर्न्तगत न केवल पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर व शोषित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

10.4.2 73वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

73वां संविधान संशोधन पंचायती राज से संबंधित है, जिसमें पंचायतों से संबंधित व्यवस्था का पूर्ण विधान किया गया है। इसकी निम्न लिखित विशेषताएं हैं---

1- संविधान में ‘‘ग्राम सभा‘‘ को पंचायतीराज की आधारभूत इकाई के रुप में स्थान मिला है।

2- पंचायतों की त्रीस्तरीय व्यवस्था की गयी है। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, क्षेत्र स्तर पर (ब्लाक स्तर) क्षेत्र पंचायत व जिला स्तर पर जिला पंचायत की व्यवस्था की गयी है।
3- प्रत्येक स्तर पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान के द्वारा की जाने की व्यवस्था है। लेकिन क्षेत्र व जिला स्तर पर अध्यक्षों के चुनाव चुने हुए सदस्यों में से, सदस्यों द्वारा किये जाने की वयवस्था है।
4- 73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या में उसके प्रतिशत के अनुपात से सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। महिलाओं के लिए कुल सीटों का एक तिहाई भाग प्रत्येक स्तर पर आरक्षित किया गया है। अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में ही आरक्षण की व्यवस्था है। प्रत्येक स्तर पर अध्यक्षों के कुल पदों का एक-तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है।
5- अधिनियम में पंचायतों का कार्यकाल(पॉच वर्ष) निश्चित किया गया है। यदि कार्यकाल से पहले ही पंचायत भंग हो जाय तो 6 माह के भीतर चुनाव कराने की व्यवस्था है।
6- अधिनियम के द्वारा पंचायतों से संबंधित सभी चुनावों के संचालन के लिए राज्य चुनाव आयोग को उत्तरदायी बनाया गया है।
7- अधिनियम के द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया है, ताकि पंचायतो के पास पर्याप्त साधन उपलब्ध हो। जिससे विभिन्न विकास कार्य किये जा सके।

10.5 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थायें हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आयी हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही हैं। चूंकि पंचायतें स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं, और इन्हें संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है, अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का एक अचूक तरीका है। ये संवैधानिक संस्थाएं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं ग्रामसभा के साथ मिलकर बनायेंगी व उसे लागू करेंगी। गांव के लिये कौन सी योजना बननी है, कैसे क्रियान्वित करनी है, क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा, ये सभी कार्य पंचायतें गांव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी जब लोग मिलजुलकर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले

भी लोग स्वयं अपने संसाधनों का, अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला है। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत और स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें ताकि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक बन सकें।

गांवों का विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गांव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गांव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी तब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्रामसभा और ग्रामपंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

अभ्यास प्रश्न-2

1. बलवंत राय समिति का गठन किया गया।

क .1952 ख .1955 ग .1957 घ .1960

2. पंचायतों के विकास के लिए गठित किस समिति ने त्रीस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की बात - कही।

3. राजस्थान वह पहला राज्य है जहां पंचायती राज की स्थापना की गयी। सत्यअसत्य/

4. ....ने 2 अक्टूबर को राजस्थान के जिले में .... पंचायती राज का शुभारम्भ किया।

5. किस समिति ने पंचायतों की दो स्तरीय व्यवस्था की सिफारिश की थी?

6. जी राव समिति कब गठित .के.वी.की गई?

क .1985 ख .1988 ग .1990 घइनमें से कोई नहीं .

7. किस समिति ने गांव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की सिफारिश की थी?

कपी .राव समिति ग .के.वी.जी .बलवंत राय समिति ख .0 के0 थुंगर घसिंघवी .एम .एल .डा . समिति

10.6 सांराश

वैदिक काल से चली आ रही पंचायत व्यवस्था देश में लगभग मृतप्राय हो चुकी थी, जिसे गांधी जी, बलवन्त राय मेहता समिति, अशोक मेहता रिपोर्ट, जी. के. राव. समिति, एल.एम.सिंघवी रिपोर्ट के प्रयासों ने नवजीवन दिया। जिसके फलस्वरूप 73वां संविधान संशोधन विधेयक संयुक्त संसदीय

समिति की जांच के बाद पारित हुआ। 73वें संविधान संशोधन से गांधी जी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को एक नई दिशा मिली है। गांधी जी हमेशा से गांव की आत्मनिर्भता पर जोर देते रहे। गांव के लोग अपने संसाधनों पर निर्भर रह कर स्वयं अपना विकास करें, यही ग्राम स्वराज की सोच थी। 73वें सविधान संशोधन के पीछे मूलधारणा भी यही थी कि स्थानीय स्तर पर विकास की प्रक्रिया में जनसमुदाय की निर्णय स्तर पर भागीदारी हो। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम वास्तव में एक मील का पत्थर है जिसके द्वारा आम जन को सुशासन में भागीदारी करने का सुनहरा मौका प्राप्त हुआ है।

10.7 शब्दावली

सुदृढ़िकरण- सुधार और मजबूत करने की प्रक्रिया
प्रबलतम- मजबूत
स्वावलम्बन- आत्मनिर्भरता
नगण्य- नहीं के बराबर (अनुपस्थित)
हस्तांतरण- एक स्थान से दुसरे स्थान
त्रीस्तरीय - तीन स्तर पर (गाम पंचायत, क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत)

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1
1. मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार 2. 73वां संविधान संशोधन 3. ख
अभ्यास प्रश्न-2
1. ग 2. बलवंत राय मेहता समिति 3. सत्य 4. पंडित जवाहर लाल नेहरू, नागौर जिला
5. अशोक मेहता समिति 6. क 7. घ

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम
2. पंचायत सन्दर्भ सामाग्री, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर

10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के. के. शर्मा

2. रोल ऑफ पंचायत इन वैलफेयर स्टेट- अब्राहम मैथ्यू
3. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी
4. पंचायती राज में प्रमाण पत्र- डॉ0 घनश्याम जोशी एवं डॉ0 छाया कुंवर(उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल)
5. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम किससे संबंधित है, इस अधिनियम में मौजुद मुख्य बातों को स्पष्ट करें?
2. 73वें संविधान संशोधन की मुख्य बातों की विस्तार से चर्चा कीजिए

इकाई – 11 नगरीय स्थानीय सरकार: 74वॉं संवैधानिक संशोधन

इकाई की रुपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन का उद्देश्य
11.3.1 संविधान संशोधन की आवश्यकता
11.3.2 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन के पीछे सोच
11.3.3 नगर निकायों का गठन एवं संरचना
11.3.4 नगर निकायों का कार्यकाल
11.3.5 नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियाँ
11.3.6 नगरीय निकायों में वित्तीय प्रबंधन
11.3.7 नगर निकायों में बजट की आवश्यकता व महत्ता
11.3.8 नगरीय निकायों में लगाये जाने वाले कर
11.3.9 मूल्यांकन, छूट एवं वसूली
11.3.10 नगर-निकायों में वार्ड कमेटियाँ
11.3.11 नगर-निकायों से संबंधित विषय
11.3.12 नगर-निकायों के कार्य एवं शक्तियॉं
11.4 सांराश
11.5 शब्दावली
11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.9 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में संविधान का 73वां और 74वां संविधान संशोधन एक महत्वपूर्ण और निर्णायक कदम हैं । 74वां संविधान संशोधन नगर निकायों में सत्ता विकेन्द्रीकरण का एक मजबूत आधार है। अतः इस अध्याय का उद्देश्य 74वें संविधान संशोधन की आवश्यकता और 74वें संविधान संशोधन में मौजूद उपबंधों और नियमों को स्पष्ट करना है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। इस लोक तंत्र का सबसे रोचक महत्वपूर्ण पक्ष है सत्ता व शक्तियों का विकेन्द्रीकरण। अर्थात केन्द्र स्तर से लेकर स्थानीय स्तर पर गांव इकाई तक सत्ता व शक्ति का बंटवारा ही विकेन्द्रीकरण कहलाता है। विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही भारत में विद्यमान थी। राजा/महाराजाओं के समय भी सभा, परिषद, समितियां सूबे आदि के माध्यम से शासन चलाया जाता था। लोगों को उनकी जरुरतें पूरी करने के लिए निर्णयों में हमेशा महत्वपूर्ण सहभागी माना जाता था। लेकिन जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, लोगों को शासन व लोक विकास में भागीदारी से अलग कर दिया गया तथा उनके अपने हित व विकास के लिए बनाई जाने वाले कार्यक्रम व नीतियों पर केन्द्र सरकार या राज्य सरकार का नियंत्रण होता गया।

परन्तु यह प्रक्रिया जनता की जरूरतों को पूरी नहीं कर पाती थी, विकास गतिविधियों को चलाने में लोगों की सहभागिता को प्रोत्साहित नहीं करती थी एवं लोगों को भी यह नहीं लगता था कि लागू की जा रही योजना अथवा कार्यक्रम उनका अपना है। इसलिए यह महसूस किया गया कि लोगों को कार्य योजनायें स्वयं बनानी चाहिए, क्योंकि उन्हें अपनी आवश्यकताओं का पता होता है कि किस प्रकार वे अपने जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं एवं वे अपने विकास में सहभागी बन सकते हैं। अतः यह महसूस किया गया कि लोगों के लिए योजना बनाने की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से नीचे से उपर की ओर होनी चाहिये क्योंकि लोगों को अपनी ज़रूरतों की पहचान होती है जिससे वे योजनाओं के वरीयता क्रमों को निर्धारित करते हुए योजना बना सकते हैं। कार्यक्रम क्रियान्वित करने वाले कार्मिक जनता/समुदाय की योजनाओं को समेकित कर सकते हैं। शासन के सबसे छोटे स्तर से लोगों की सहभागिता व शासन में सीधी भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए संविधान का 73वां व 74वां संविधान संशोधन एक प्रमुख कदम है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

1.चौहत्तरवें संविधान संशोधन के अन्तर्गत नगर निकायों के विषय में दी गयी धाराओं के विषय में जान पायेंगे।

2.नगर निकायों के वित्तीय प्रबन्ध, गठन, कार्यकाल, उसकी बैठक और कार्यवाहियों को स्पष्ट करना।

3.नगर निकायों से संबंधित विषय, उनके कार्य एवं शक्तियां के विषय में जान पायेंगे।

11.3 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन का उद्देश्य

1.देश में नगर संस्थाओं जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।

2.नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।

3.नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जन प्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।

4.समाज की कमजोर वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिलें।

5.प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करें। जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।

6.सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

11.3.1 संविधान संशोधन की आवश्यकता

पूर्व की नगरीय स्थानीय स्वशासन व्यवस्था लोकतन्त्र की मंशा के अनुरूप नहीं थी। सबसे पहली कमी इसमें यह थी कि इसका वित्तीय आधार कमजोर था। वित्तीय संसाधनों की कमी होने के कारण नगर निकायों के कार्य संचालन पर राज्य सरकार का ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण था। जिसके कारण धीरे-धीरे नगर निकायों के द्वारा किये जाने वाले अपेक्षित कार्यों/या उन्हें सौंपे गये कार्यों में कमी होनी लगी। नगर निकायों के प्रतिनिधियों की बरखास्ती या नगर निकायों का कार्यकाल समाप्त होने पर भी समय पर चुनाव नहीं हो रहे थे। इन निकायों में कमजोर व उपेक्षित वर्गों (महिला, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति)का प्रतिनिधित्व न के बराबर था। अतः इन कमियों को देखते हुए संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम में स्थानीय नगर निकायों की संरचना, गठन, शक्तियों, और कार्यों में अनेक परिवर्तन का प्राविधान किया गया ।

11.3.2 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन के पीछे सोच

1.संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगर-प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

2.इस संशोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गई है

3.नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित की गई है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक नगर व शहरों में रहने वाली आम जनता की पहुंच बढ़ाई गई है।

4.समाज कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का प्रतिशतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

5.74वें संशोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।

6.इस संविधान की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्शिता व लोगों की आवाज पहुंचाना सुनिश्चित करना है।

11.3.3 नगर निकायों का गठन एवं संरचना

1.अधिक आबादी वाले/महानगरीय क्षेत्रों में - नगर निगम का गठन होगा (एक लाख से ज्यादा जनसंख्या वाले नगर)

2.छोटे नगरीय क्षेत्रों में- नगरपालिका परिषद का गठन होगा (50 हजार से एक लाख तक जनसंख्या वाले नगर)

3.संक्रमणशील क्षेत्रों में, नगर पंचायत का गठन होगा। (50 हजार तक जनसंख्या वाले नगर)

नगर निगम, नगर पालिका परिषद व नगर पंचायत स्तर पर जनता द्वारा एक अध्यक्ष निर्वाचित किया जायेगा

नगरीय क्षेत्र के प्रत्येक वार्ड से प्रत्यक्ष रूप से सदस्य निर्वाचित किये जायेंगे जिनकी संख्या वार्डों की संख्या के आधार पर राज्य सरकार द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार होगी।

पदेन सदस्य के रूप में नगर निकायों में लोकसभा एवं राज्य विधान सभा के ऐसे सदस्य शामिल किये जायेंगे, जो नगरीय निकाय क्षेत्र (पूर्णतः या भागतः) के निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पदेन सदस्य के रूप में राज्य सभा व राज्य विधान परिषद के ऐसे सदस्य जो नगरीय निकाय क्षेत्र के अन्दर निर्वाचकों के रूप में पंजीकृत हैं।

नगरपालिका प्रशासन में विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले निर्दिष्ट/नामित सदस्य स्थानीय निकायों में शामिल किये जायेंगे।

संविधान के अनुच्छेद 243-एस. के प्रस्तर (5) के अधीन स्थापित समितियों के अध्यक्ष यदि कोई हो।

11.3.4 नगर निकायों का कार्यकाल

नगर निगम, नगर पालिका, एवं नगर पंचायतों का कार्यकाल पहली बैठक के दिन से पांच वर्ष तक रहेगा। अगर किसी कारणवश 74वें संविधान संशोधन के नियमों के अनुरूप नगर निकाय अपनी जिम्मेदारियों व उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं करते या उनमें अनियमतता पायी जाती है तो पांच वर्ष पूर्व भी राज्य सरकार इन्हें भंग या बर्खास्त कर सकती है। बर्खास्त/भंग करने के 6 माह के अन्दर अनिवार्य रूप से चुनाव करवाकर नया बोर्ड गठित किया जाना आवश्यक है। नगर निकायों को भंग करने से पूर्व सुनवाई का एक न्यायोचित अवसर दिया जायेगा।

11.3.5 नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियाँ

कार्यपालक पदाधिकारी द्वारा निश्चित दिन तथा नियत समय पर एक माह में कम से कम एक बैठक आयोजित की जाएगी। अध्यक्ष के निर्देश पर अन्य बैठकें भी कार्यपालक अधिकारी द्वारा बुलायी जा सकती हैं। यदि नगर निकाय के पास कार्यपालक पदाधिकारी नहीं है तो अध्यक्ष बैठक आयोजित करेगा। आवश्यकता पड़ने पर किसी भी दिन या समय पर नोटिस देने के बाद अध्यक्ष द्वारा आपातकालीन बैठक बुलायी जा सकती है। आपातकालीन बैठकों के अतिरिक्त अन्य बैठकों हेतु नोटिस को कम से कम 3 दिन पूर्व सभी सदस्यों को भेजा जाना अनिवार्य होगा। नोटिस की अवधि 3 दिन से अधिक भी हो सकती है। आपातकालीन बैठकों के मामले में यह अवधि कम से कम 24 घंटे की होनी चाहिए। बैठक हेतु प्रत्येक सूचना में बैठक की तिथि, समय तथा स्थान का उल्लेख आवश्यक है। बैठक की गणपूर्ति कुल सदस्यों के एक तिहाई सदस्यों की उपस्थिति मानी जायेगी। गणपूर्ति के अभाव में बैठक स्थगित कर दी जायेगी तथा तय की गई तिथि को बैठक आयोजित की जाएगी। जिसकी सूचना आयोजन के कम से कम तीन दिन पूर्व दी जाएगी। बैठक की कार्यवाही को कार्यवाही पुस्तिका में अंकित किया जाएगा जिस पर अध्यक्ष का हस्ताक्षर होगा कार्यवाही की

प्रतियों को राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा निदेशित प्रधिकारी को तुरन्त भेज दी जाएगी। पारिस्थितियों की अनुकूलता के आधार पर अधिशासी अधिकारी अथवा सचिव द्वारा बैठक से पूर्व सभी सदस्यों को बैठक से सम्बन्धित अभिलेख, पत्राचार जो उस बैठक में विचार किये जायेगें, दिखाये जायेंगे जब तक कि अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष द्वारा अन्यथा निर्देशित किया गया हो।

अभ्यास प्रश्न-1

1. संविधान का 74वां संविधान संशोधन..................................से संबंधित है।
2. एक लाख ये अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में नगर निगम गठित होंगे। सही/गलत
3. पचास हजार से एक लाख तक की जनसंख्या वाले क्षेत्रों में गठित होंगे।
   क. नगर निगम ख. नगर पालिकाएं ग. नगर पंचायतें घ. इनमें से कोई नहीं
4. पचास हजार तक की जनसंख्या वाले क्षेत्रों में नगर पंचायतों का गठन होगा। सही/गलत
5. नगर निकायों का कार्यकाल होता है।
   क. 4 साल ख. 5 साल ग. 8 साल घ. 10 साल

11.3.6 नगरीय निकायों में वित्तीय प्रबंधन

74वें संविधान संशोधन के उपरान्त अब नगर निकायों के आय के निम्नलिखित सा्रेत हैं।

1. राज्य वित्त आयोग के द्वारा निर्धारित धनराशि।
2. नगर निकायों द्वारा वसूले गये करों से प्राप्त धनराशि।
3. राष्ट्रीय वित्त आयोग के द्वारा निर्धारित धनराशि ।

राज्य सरकार द्वारा नगरीय निकायों में समय-समय पर अनुदान देने की प्रथा को समाप्त कर राज्य सरकार द्वारा प्राप्त कुल करों में नगरीय स्थानीय निकायों के अंश का निर्धारण किया गया।

स्थानीय निकायों को दी जाने वाली राशि के वितरण का आधार 80 प्रतिशत जनसंख्या एवं 20 प्रतिशत क्षेत्र के आधार पर निर्धारित किया गया है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक केन्द्रीय वित्त आयोग प्रतिवर्ष शहरी स्थानीय निकायों के लिए धन आवंटित करता है।

आयोग के निर्देशानुसार केन्द्रीय वित्त आयोग द्वारा दी गई राशि का उपयोग वेतन, मजदूरी में नहीं किया जाएगा बल्कि यह सामान्य सुविधाएं जैसे जल निकासी, कूड़ा निकासी, शौचालयों की सफाई, मार्ग-प्रकाश इत्यादि में ही इसका उपयोग किया जाएगा।

74वें संविधान संशोधन अधिनियम में 12वीं अनुसूची के अन्तर्गत जो 18 कार्य/दायित्व शहरी स्थानीय निकायों को दिये गये हैं राज्य सरकार को उन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नगर निकायों आवश्यक राशि दी जायेगी।

नगरपालिका के आय का एक मुख्य स्रोत इसके द्वारा लगाये गये विभिन्न कर एवं शुल्क भी हैं।

11.3.7 नगर निकायों में बजट की आवश्यकता व महत्ता

वित्तीय प्रबन्धन के लिए आय-व्ययक अनुमान/आगणन अर्थात बजट तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है। बजट आय तथा व्यय का एक अनुमान है जो कि अपने संसाधनों के उपयोग के लिए एक प्रकार से मार्ग दर्शक, नीतियों के निर्धारण, व्यय संबंधी निर्णय लेने के लिए मार्ग दर्शक, वित्तीय नियोजन का एक यंत्र तथा संप्रेषण का एक माध्यम है। बजट वित्तीय प्रबन्धक का एक महत्वपूर्ण अवयव है, इसे मात्र औपचारिकता के रूप में नहीं लेना चाहिए।

नगर निकायों में बजट एक विधिक आवश्यकता है, क्यों कि जब तक वित्तीय वर्ष का बजट बोर्ड द्वारा पारित नहीं किया जाता है, तब तक कोई खर्चा नहीं किया जा सकता है। बजट तैयार कर लेने से लक्ष्यों व उद्देश्यों के निर्धारण तथा नीतिगत निर्णय लेने में सहायता मिलती है।बजट के द्वारा वास्तविकता आधारित कार्य नियोजन आसानी से किया जा सकता है अर्थात योजनाओं व कार्यक्रम की प्राथमिकतायें निर्धारित करने में सहायता मिलती है। इससे कार्य कलापों पर वित्तीय नियन्त्रण रखा जा सकता है और धन का अपव्यय भी रोका जा सकता है। अगर नगर निकाय आय-व्यय का विधिवत व उचित दस्तावेजीकरण करते हैं व उसको आधार मानकर अपना बजट बनाते हैं तो अंशदान, अनुदान, सहायता प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

बजट आवश्यकता आधारित होना चाहिए व इस हेतु ''जीरो बेस बजटिंग''(शून्य आधारित बजट) प्रक्रिया को अपनाना चाहिए न कि पिछले आय व्ययक अनुमान पर कुछ प्रतिशत बढोतरी या घटोतरी करें। अगले वित्तीय वर्ष का बजट वर्तमान वित्तीय वर्ष के अन्तिम माह अर्थात मार्च की 15 तारीख तक बोर्ड द्वारा विचारोपरान्त पारित पारित कर लिया जाना चाहिए। अतः बजट तैयार करने की प्रक्रिया प्रत्येक दशा में अंतिम तिमाही के पूवार्द्ध में ही पूर्ण कर ली जानी चाहिए व इस पर बोर्ड बैठक में विस्तृत चर्चा करनी चाहिए जिससे कि नीतिगत निर्णय, प्राथमिकता निर्धारण तथा जनता के हित में उचित वित्तीय निर्णय लिये जा सकें। चूंकि बोर्ड सभासदों से ही बना है, अतः बजट के माध्यम से सभासदों के बहुमत निर्णय से नीतियों व रणनीतियों का निर्धारण होता है।

11.3.8 नगरीय निकायों में लगाये जाने वाले कर

1.भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर कर।

2.नगर पालिका की सीमा के अन्तर्गत व्यापार पर कर जिन्हें नगर पालिका की सेवाओं से विशेष लाभ मिलता है।

3.व्यापार, पेशों तथा व्यवसायों पर कर जिसमें सभी रोजगार जिनके लिये वेतन या शुल्क मिलता है वह सम्मिलित हैं।

4.मनोरंजन कर।

5.नगरपालिका के अंदर भाड़े पर चलने वाली गाड़ियों या उसमें रखी गई गाड़ियों पर कर।

6.नगरपालिका के अन्दर रखे कुत्तों पर कर।

7.नगर पालिका के अन्दर रखे सवारी, चालन या बोझे के पशुओं पर कर।

8.व्यक्तियों पर सम्पत्तियों या परिस्थितियों के आधार पर कर।

9.भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर जल कर।

10.भवन के वार्षिक मूल्य पर उर्तक मूल्य पर उत्प्रवाह कर।

11.सफाई कर।

12.शोचालयों, मूत्रालयों तथा गड्ढ़ों से उत्प्रवाह तथा प्रदूषित जल के एकत्रीकरण, हटाने तथा खात्मा करने के लिए कर।

13.नगर पालिका की सीमा के अन्तर्गत स्थित सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कर।

14.संविधान के अन्तर्गत कोई अन्य कर जो राज्य विधायिका द्वारा राज्य में लागू किया जा सके।

कर का प्रावधान- 3 व 8 के कर एक साथ नहीं लगाए जा सकते हैं। 10 व 12 के कर एक साथ नहीं लगाए जा सकते हैं। 13 के अन्तर्गत नगर पालिका के अन्तर्गत अचल सम्पति के हस्तांतरण पर कर नहीं लगाया जा सकता है। (यदि वह सम्पति नजूल की हो) 5 का कर मोटर गाड़ी, पर नहीं लगाया जा सकता है।

11.3.9 मूल्यांकन, छूट एवं वसूली

भवन या भूमि दोनों पर कर लगाने के लिए नगर निकाय एक मूल्यांकन सूची तैयार कर एक सार्वजनिक स्थल पर प्रदर्शित कर सकते हैं ताकि जिन लोगों को आपति हो वह एक महीने के अन्दर

दाखिला कर सकें। जब आपतियों का निवारण हो जाता है तब मूल्याँकन सूची को प्रमाणित किया जाता है। प्रमाणित मूल्याँकन सूची नगर निकाय कार्यालय में जमा कर दी जाती है तथा उसे जनता द्वारा निरीक्षण के लिये खुला घोषित कर दिया जाता है। सामान्यतः नई मूल्याँकन सूची पाँच वर्ष में एक बार तैयार की जाती है। नगर निकाय किसी समय मूल्यांकन सूची को बदल सकते हैं या उसमें संशोधन कर सकते हैं। यदि कोई भवन या भूमि वर्ष में 90 या अधिक दिनों तक लगातार खाली रहती है तो नगर पालिका उस अवधि में कर छूट देती है। उस भवन या भूमि के पुनः कब्जे के लिए उस सम्पत्ति के मालिक को 15 दिनों के अंदर नगरपालिका को सूचना देनी होती है। अगर कोई ऐसा नहीं करता तो वह दंड का भागी होता है। दण्ड की राशि वास्तविक कर की दुगुनी राशि से दस गुना राशि से भी अधिक हो सकती है।

नगर पालिका करों से संबंधित अपीलें नगर पालिका कार्यालय में दायर की जा सकती है। साथ ही साथ इसकी एक प्रति जिलाधिकारी के यहाँ भी जाती है। सामान्यतः किसी भी अवधि के लिए देय कर या शुल्क का भुगतान उसकी अवधि के शुरू होने से पूर्व करना होता है। जब व्यक्ति कर का भुगतान समय पर नहीं करता तो उसके विरूद्व नगरपालिका द्वारा वारंट जारी हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के अहाते से सम्पति को जब्त कर उसे नीलामी द्वारा बेचा जा सकता तथा बकायों की वसूली की जा सकती है। जब कोई व्यक्ति किसी कर का बकायेदार हो तो नगरपालिका कलेक्टर से प्रार्थना कर सकती है कि वह ऐसे धन को भू-राजस्व की भाँति वसूल करें, जिसमें कार्यवाही का खर्च शामिल नहीं होगा। कलेक्टर जब बकाया धन से संतुष्ट हो जाता है तो उसे वसूल करने की कार्यवाही करता है।

11.3.10 नगर-निकायों में वार्ड कमेटियाँ

स्थानीय लोग स्थानीय विकास में भागीदारी निभा सकें इसलिए संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत स्थानीय नगरीय सरकार के लिए शक्तियों एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया गया है। संशोधन के माध्यम से विकेन्द्रीकरण के द्वारा ऐसे संस्थागत ढ़ांचे का निर्माण करने का प्रयास किया गया जिससे सभी स्तर के लोग स्थानीय विकास में भागीदारी निभा सकें। नगरीय निकायों के इस ढ़ाचे को हम स्थानीय स्वशासन की दो स्तरों पर की गई व्यवस्था के रूप में जानते हैं।

पहला स्तर नगर निकाय स्तर पर चयनित सरकार है जिसमें स्थानीय लोग प्रतिनिधि के रूप में चुनकर आते हैं जो स्थानीय समस्याओं की बेहतर समझ के साथ स्थानीय विकास के लिए प्रयास करते हैं। दूसरे स्तर पर वार्ड कमेटियों के गठन का प्रावधान है जिससे कि वार्ड के स्तर पर भी लोग विकास के लिए नियोजन से लेकर निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं विकास कार्यों के क्रियान्वयन में अपनी भागीदारी निभा सकें।

74वें संविधान संशोधन की धारा 243(1) के अनुसार यह व्यवस्था केवल उन शहरों में लागू होती है जिनकी जनसंख्या तीन लाख या उससे अधिक हो। जिन शहरों की जनसंख्या तीन लाख है या उससे कम है, वहाँ पर राज्य सरकार अन्य समितियों को गठित करने को स्वतंत्र है। वार्ड कमेटी पाँच या उनसे अधिक वार्डों से मिलकर बनती है, जिसमें एक अध्यक्ष तथा जितने भी वार्ड उस कमेटी में हैं, के चयनित प्रतिनिधि/सदस्य उसके होते हैं।

नगरीय स्थानीय स्वशासन के तीन व्यक्ति जो इससे संबंधी मुद्दों/समस्याओं के बारे में विशेष ज्ञान रखते हों उसके वार्ड के नामित सदस्य होते हैं। उन्हीं में से किसी एक व्यक्ति का चुनाव एक वर्ष के लिए अध्यक्ष के पद के लिए होता है। जो यदि चाहे तो दुबार अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ सकता है।

वार्ड कमेटी का कार्यकाल उक्त नगर निकाय की अवधि के साथ समाप्त होता है।

संविधान के 74वें संशोधन के अनुसार वार्ड कमेटियों काव्यावहारिकरूप में वह स्वरूप नहीं बन पा रहा है जिसकी कल्पना की गई थी। एक सशक्त वार्ड कमेटी की भूमिकाओं में वार्ड/वार्डों की समस्याओं की पहचान कर उनकी प्राथमिकताएं तय करना, नगर निकायों के द्वारा कराये जा रहे कार्यों का निरीक्षण, नियोजन एवं विकासात्मक गतिविधियों का संचालन, वार्षिक आम सभा का आयोजन, म्यूनिसीपल वार्ड की जवाबदेही एवं इनके कार्यों में पारदर्शिता इत्यादि हो सकती है।

11.3.11 नगर-निकायों से संबंधित विषय

12वीं अनूसूची (अनुच्छेद,243-ब)

नगर निकायों के कृत्यों से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख संविधान की 12वीं अनुसूची में किया गया है जो निम्नवत है-

1. नगर के नियोजन सहित शहरी नियोजन।
2. भू-उपयोग का विनियम और भवन-निर्माण
3. आर्थिक व सामाजिक उन्नयन को ध्येय से नियोजन।
4. सड़क एवं पुल।
5. घरेलू उपयोग व औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए जलापूर्ति।
6. जन स्वास्थ्य, स्वच्छता, जल-प्रबन्धन एवं कूड़ा-कचरा निस्तारण।
7. अग्निशमन सेवाएं।
8. परिस्थितिकीय एवं पर्यावरण संरक्षण के ध्येय से शहरी वनीकरण।
9. शाररिक व मानसिक विकलांगों सहित समाज के कमजोर वर्गों का हित संरक्षण।

10. मलिन बस्ती सुधार एवं उन्नयन।
11. शहरी गरीबी निवारण।
12. नागरिक जन-सुविधाओं जैसे पार्क, उद्यान, और क्रीडा मैदानों की व्यवस्था करना।
13. सांस्कृतिक, शैक्षणिक व सौंदर्यपूर्ण विकास।
14. शव-गृह, कब्रिस्तान और विद्युत शव-दाह-गृह।
15. पशुओं के लिए पीने के पानी के तालाब और पशुओं के प्रति क्रूरता की रोकथाम।
16. जन्म-मृत्यु के आंकडों सहित महत्वपूर्ण सांख्यि की सूचना।
17. गलियों, पार्किंग स्थल और स्टापों के पथ-प्रकाश(लाईट) की सुविधाओं की व्यवस्था और जल-प्रबन्धन।
18. पशु वधशालाओं और चर्मशोधनालाओं का विनियमन; ।

11.3.12 नगर-निकायों के कार्य एवं शक्तियॉं

प्रत्येक नगर निकाय का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने क्षेत्र के भीतर निम्नलिखित व्यवस्था करे-

1.सार्वजनिक सड़कों और स्थानों पर पीने का पानी।
2.सार्वजनिक सड़कों और स्थानों पर रोशनी।
3.नगरपालिका की सीमा का सर्वेक्षण करना और सीमा चिन्ह लगाना।
4.सार्वजनिक सड़कों, स्थानों और नालियों की सफाई करना, हानिकारक वनस्पति को हटाना।
5.संतापकारी, खतरनाक या आपत्तिजनक, व्यापार, आजीविका या प्रथा का विनियमन करना।
6.आवारा व खतरनाक पशुओं को परिरूद्व कराना, हटाना या नष्ट करना।
7.लोक सुरक्षा, स्वास्थ्य या सुविधा के आधार पर सड़कों या सार्वजनिक स्थानों में अवांछनीय और अवरोध प्रक्षेप हटाना।
8.खतरनाक भवनों या स्थानों को सुरक्षित बनाना या हटाना।
9.मृतकों के निस्तारण के लिये स्थान अर्जित, अनुरक्षित, परिवर्तित और विनियमित करना।
10.सार्वजनिक सड़कों, पुलियों, बाजारों व वधशालाओं, शोचालयों, संड़ासों, मुत्रालयों, नालियों, जलोत्सारण, निर्माणकार्यों तथा सीवर व्यवस्था सम्बन्धी निर्माण कार्यों का निर्माण, परिवर्तन और अनुरक्षण करना।
11.घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जलापूर्ति उपलब्ध करना।
12.सड़क के किनारे तथा सार्वजनिक स्थानों में वृक्ष लगाना और उनका अनुरक्षण करना।
13.ऐसे स्थानों में, जहां वर्तमान जल सम्भरण के अप्रर्याप्त या अस्वास्थ्यप्रद होने से वहां के निवासियों के स्वास्थ्य को संकट हो, शुद्व और स्वास्थ्यप्रद जल के पर्याप्त सम्भरण की व्यवस्था

करना, मनुष्यों के उपयोग के लिए प्रयुक्त होने वाले जल को प्रदूषित होने से बचाना और प्रदूषित जल के ऐसे उपयोग को रोकना।

14.जल सम्भरण हेतु सार्वजनिक कुंओं को ठीक हालत में रखना उनके जल को प्रदूषित होने से बचाना तथा उसे मनुष्यों के उपयोग योग्य बनाये रखना।,

15.जन्म और मृत्यु का पंजीकरण सुनिश्चित करना।

16.सार्वजनिक टीका लगाने की प्रणाली की स्थापना तथा उसका अनुरक्षण।

17.सार्वजनिक चिकित्सालयों और औषधालयों की स्थापना तथा उनका अनुरक्षण या उनकी सहायता करना और सार्वजनिक चिकित्सा सम्बन्धी सहायता की व्यवस्था करना।

18.प्रसूति केन्द्रों, शिशु कल्याण, और जन्म नियंत्रण क्लीनिकों की स्थापना, अनुरक्षण और सहायता करना और जनसंख्या नियन्त्रण, परिवार कल्याण और छोटे परिवार के मानकों को प्रोत्साहित करना।

19.पशु चिकित्सालयों का अनुरक्षण करना या अनुरक्षण हेतु उन्हें सहायता देना।

20.प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना और उनका अनुरक्षण करना।

21.आग बुझाने में सहायता देना और आग लगने पर जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करना।

22.नगरपालिका में निहित या उसके प्रबंधन में सौंपी गई सम्पत्ति की सुरक्षा करना, उसका अनुरक्षण तथा विकास करना।

23.शासकीय पत्रों पर तत्काल ध्यान देना और ऐसे विवरण और रिपोर्ट तैयार करना जिन्हें राज्य सरकार नगर पालिका से प्रस्तुत करने की अपेक्षा करे।,

24.विधि द्वारा उस पर अधिरोपित किसी बाध्यता की पूर्ति करना।

25.चर्म-शोधनशालाओं को निनियमित करना।

26.पार्किंग स्थल, बस स्टाप और जन सुविधाओं का निर्माण और अनुरक्षण करना।

27.नगरीय वानिकी और परिस्थितिकी पहलुओं की अभिवृद्धि और पर्यावरण का संरक्षण करना।

28.समाज के दुर्बल वर्गों के जिनके अन्तर्गत विकलांग और मानसिक रूप से मन्द व्यक्ति हैं हितों का संरक्षण करना।

29.सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सौन्दर्यपरक पहलुओं की अभिवृद्धि करना।

30.कांजी हाउस का निर्माण और अनुरक्षण करना और पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण करना।

31.मलिन बस्ती सुधार और उन्नयन।

32.नगरीय निर्धनता कम करना व नगरीय सुख-सुविधाओं, जैसे पार्क, उद्यान और खेल के मैदानों की व्यवस्था करना।

स्वैच्छिक कार्य

उपरोक्त बाध्यकारी कर्तव्यों के अतिरिक्त संविधान में कुछ ऐसे कर्तव्यों का भी उल्लेख है जो बाध्यकारी न होकर स्व-विवेकानुसार की श्रेणी में निम्नवत हैं-

1. उन क्षेत्रों में, जिनमें चाहे पहले निर्माण किया गया हो या नहीं, नवीन सार्वजनिक सड़कों का विन्यास और इस प्रयोजन के लिए भूमि अर्जित करना।

2. मास्टर-प्लान तैयार करना और उसे निस्पादित करना।

3. पुस्तकालय, संग्रहालय, वाचनालय, रेडियो संग्राहों केन्द्रों, कुष्ठाश्रम, अनाथालय, शिशु सदन और महिला उद्वार गृह, पागलखाना हाल, कार्यालय, धर्मशाला, विश्राम-गृह, दुग्धशाला, स्नानगार, स्नानघाट, धोबियों के धुलाई-स्थल, पीने के पानी का स्रोत (ड्रिंकिंग फाउन्टेन), तालाब, कुआं, तथा अन्य लोकोपयोगी निर्माण कार्यों का निर्माण, उनकी स्थापना तथा उनका अनुरक्षण में अंशदान देना।

4. प्राथमिक स्कूलों की स्थापना और उनके अनुरक्षण से भिन्न उपायों द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का प्रसार करना।

5. जनगणना करना और ऐसी सूचना के लिये इनाम देना, जिससे जन्म-मृत्यु के आंकड़ों का सही रजिस्ट्रीकरण सुनिश्चित हो सके।

6. ऐसी सूचना के लिये इनाम देना जिससे इस अधिनियम के आधीन आरोपित कर के अपवर्चन का या नगर निकाय में निहित या उसके प्रबन्ध या नियन्त्रण में सौंपी गई सम्पत्ति को हानि पहुंचाने या उस पर अतिक्रमण करने का पता लगे।

7. स्थानीय विपत्ति पड़ने पर, सहायता कार्यों की स्थापना और उनका अनुरक्षण करके या अन्य प्रकार से सहायता करना।

8. धारा-298 के शीर्षक छः के उपशीर्षक (क) के आधीन उल्लिखित किसी व्यापार या निर्माण के कार्यान्वयन के लिये उपयुक्त स्थान प्राप्त करना या प्राप्त करने में सहायता देना।

9. सीवेज के निस्तारण के लिये फार्म या कारखाना स्थापित करना और उसका अनुरक्षण करना।

10. कूड़ा-करकट की कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिए प्रबन्ध करना।

11. पर्यटक यातायात की अभिवृद्धि करना।

12. मेले और प्रदर्शिनियां लगाना।

13. गृह और नगर नियोजन योजनाएं तैयार करना और उनका निष्पादन।

14. व्यापार और उद्योग की अभिवृद्धि के लिये उपाय करना।

15. अपने कर्मचारियों के लिये श्रम कल्याण केन्द्र स्थापित करना और ऐसे कर्मचारियों के किसी ऐसोशियेशन संघ या क्लब की सामान्य उन्नति के लिए अनुदान अथवा ऋण देकर उसके कार्याकलापों में सहायता देना।

16. नगर पालिका संघों को संगठित करना और उन्हें अंशदान देना।

17. धारा-7 में या इस धारा के पूर्वगामी उपबन्धों में निर्दिष्ट उपायों से भिन्न ऐसे उपाय करना, जिनसे लोक सुरक्षा, स्वास्थ्य या सुविधा में अभिवृद्धि होने की सम्भावना हो।

18. भिक्षा-वृति पर नियंत्रण के लिये उपाय करना।

19. कोई ऐसा कार्य करना जिसके सम्बन्ध में व्यय राज्य सरकार द्वारा या नगरपालिका द्वारा विहित प्राधिकारी की स्वीकृति से, नगर पालिका निधि पर समुचित प्रभार घोषित किया जाए।

अभ्यास प्रश्न-2

1. 74वें संविधान संशोधन में 12वीं अनुसूची के अन्तर्गत शहरी स्थानीय निकायों कोदिये गये हैं।....................

2. नगर निकायों के कार्यों से संबंधित विषयों का वर्णन संविधान की 12वीं अनुसूची में किया गया है। सहीगलत/

11.4 सांराश

सरकार के 74वें संविधान संशोधन के माध्मय से पुनः नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय लोगों को निर्णय लेने के स्तर पर सक्रिय व प्रभावशाली सहभागिता बनाने का प्रयास किया गया है। संविधान का 74वां संशोधन में नगर निकायों - नगर पलिका, नगर निगम और नगर पंचायतों में शहरी लोगों की भागीदारी बढ़ाने में मदद की है। इस संशोधन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अब शहरों, नगरों, मोहल्लों की भलाई उनके हित व विकास संबंधी मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार केवल सरकार के हाथ में नहीं है। अब नगरों व शहर के ऐसे लोग जो शहरी मुद्दों की स्पष्ट सोच रखते हैं व नगरों, कस्बों व उनमें निवास करने वाले लोगों की नागरिक सुविधाओं के प्रति संवेदनशील है, निर्णय लेने की स्थिति में आगे आ गये हैं। महिलाओं व पिछड़े वर्गों के लिए विशेष आरक्षण व्यवस्था ने हमेशा से पीछे रहे व हाशिये पर खड़े लोगों को भी बराबरी पर खड़े होने व निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का अवसर दिया है। 74वें संशोधन ने सरकार (लोगों का शासन) के माध्मय से आम लोगों की सहभागिता स्थानीय स्वशासन में सुनिश्चित की है। हर प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णयों में स्थानीय लोगों को सम्मिलित करने से निणर्य प्रक्रिया प्रभावी, पारदर्शी व समुदाय के प्रति संवेदनशील हो जाती है।

11.5 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण- एक केन्द्र में न रहना, विस्तारित होना

संक्रमणशील- ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित होने वाले क्षेत्र

गणपूर्ति- किसी भी कार्यवाही की पूर्ति हेतु उपस्थित अनिवार्य सदस्यों की संख्या

कांजी हाऊस- जहॉ आवारा पशुओं को पकड़ कर रखा जाता है

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. नगर निकाय 2. सही 3. ख 4. सही 5. ख

अभ्यास प्रश्न- 2

1. 18 कार्य/उत्तर दायित्व 2. सही

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हार्क नगरीय स्वशासन प्रशिक्षण मार्गदार्शिका।

2. चौहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम।

3. कुछ आम सवाल - नगरीय स्वशासन,यहां मिलेंगे उनके जवाब,2005, संसर्ग पटना एवं प्रिया नई दिल्ली।

11.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के. के. शर्मा

2. रोल ऑफ पंचायत इन वैलफेयर स्टेट- अब्राहम मैथ्यू

3. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी

4. पंचायती राज में प्रमाण पत्र- डॉ0 घनश्याम जोशी एवं डॉ0 छाया कुंवर(उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल)

5. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी

11.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.नगर निकायों के गठन एंव संरचना को स्पष्ट करें ।

2.नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियों को स्पष्ट करें।

3.नगर निकायों के वित्तीय प्रबन्ध को विस्तार से बतलाइये।

4.नगर निकायों से संबंधित विषय बतलाइये।

5.नगर निकायों की कार्य एंव शक्तियां एवं स्वैछिक कार्य बताएं

इकाई - 12 संघ लोक सेवा आयोग

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 कार्मिक अभिकरण : अर्थ एवं उद्देश्य
12.3 भारत में कार्मिक अभिकरण
12.4 संघ लोक सेवा आयोग
12.4.1 संघ लोक सेवा आयोग का उद्भव एवं विकास
12.4.1.1 प्रथम काल (1926-37)
12.4.1.2 द्वितीय काल (1937-50)
12.4.1.3 तृतीय काल(1950 से अब तक)
12.4.2 संघ लोक सेवा आयोग का संगठन
12.4.3 संघ लोक सेवा आयोग के कार्य
12.4.4 संघ लोक सेवा आयोग की सलाहकार भूमिका
12.4.5 संघ लोक सेवा आयोग की भूमिका का मूल्यांकन
12.5 कर्मचारी चयन आयोग
12.5.1 कर्मचारी चयन आयोग के गठन सम्बन्धी प्रावधान
12.5.2 कर्मचारी चयन आयोग का संगठन
12.5.3 कर्मचारी चयन आयोग के कार्य
12.5.4 कर्मचारी चयन आयोग की भूमिका का मूल्यांकन
12.6 कार्मिक अभिकरणों की भूमिका का मूल्यांकन
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन की क्रियाओं को संपादित करने के लिए एक विस्तृत तंत्र की आवश्यकता होती है और तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्मिकों की विशाल संख्या की जरूरत पड़ती है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है । लोक सेवकों के पदों की भर्ती के लिए एक ऐसे निकाय की आवश्यकता होती है जो राजनीतिक एवं प्रशासनिक दबाव से मुक्त होकर कार्य कर सके। विकासशील एवं प्रजातांत्रिक देशों में इस कठिन एवं दुरूह कार्य को लोक सेवा आयोग द्वारा संपन्न किया जाता है। लोक सेवा आयोग लोक सेवाओं में योग्यता को एकमात्र मापदंड मानकर उसे अन्य राजनीतिक संस्थाओं के संभावित दबाबों से बचाता है तथा निष्पक्षता बनाए रखता है। यद्यपि इस प्रकार के आयोग परामर्श दात्री संस्थाओं के रूप मे कार्य करती है, फिर भी इनकी सिफारिशें स्वीकार नहीं की जाती। भारत में संघ लोक सेवा आयोग के महत्व को देखते हुए संविधान निर्माताओं ने इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया है।

कार्मिक ऐसी धुरी हैं जिनके इर्द-गिर्द चारों ओर प्रशासन घूमता रहता है। भारत मे संघ लोक सेवा आयोग को केन्द्रीय लोक सेवकों की नियुक्ति का कार्य सौंपा गया है तथा राज्य स्तर पर गठित राज्य लोक सेवा आयोग राज्य के लोक सेवकों की नियुक्ति करता है। इसी प्रकार प्रशासन के निचले स्तर के कार्मिकों की नियुक्ति कर्मचारी चयन आयोग के माध्यम से होता है।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में लोक सेवाओं के विविध कार्मिक अभिकरणों से परिचय कराना है। इसमें संघ लोक सेवा आयोग एवं कर्मचारी चयन आयोग के उद्भव एवं विकास, संगठन, कार्य एवं भूमिका के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा ।

भारत के कार्मिक अभिकरणों की आवश्यकता, क्रम-विकास आदि मुद्दों पर चर्चा से भी पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

1. भारत के विविध कार्मिक अभिकरणों के महत्व एवं कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
2. साथ ही आपको संघ लोक सेवा आयोग के उद्भव एवं विकास, संगठन, कार्य एवं भूमिका के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे। तथा
3. कर्मचारी चयन आयोग के गठन सम्बन्धी प्रावधान, कार्य एवं भूमिका से भी आप अवगत होंगे।

12.2 कार्मिक अभिकरण: अर्थ एवं उद्देश्य

किसी संगठन को ऐसे योग्यता प्राप्त कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की व्यवस्था करना आवश्यक होता है जो उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विभिन्न कार्य कर सके। कर्मचारियों की पूर्ति के इस कार्य को भर्ती तथा चयन द्वारा संपन्न किया जाता है। किसी संगठन में लोक सेवकों का चयन सर्वाधिक आवश्यक कार्य है। राज्य के स्वरूप और गतिविधियों के विस्तार के साथ प्रशासन का महत्व भी बढ़ता गया है। आज के संदर्भ में राज्य केवल सतही और विनियामक कार्य ही नहीं करता बल्कि वह लोगों की राज्य के प्रति आकांक्षाओं के अनुरूप आर्थिक विकास को गति देता है और सामाजिक और संस्कृति प्रगति को भी एक परिवर्तित रूप देता है । सरकार के कार्य, परिस्थितियों के अनुसार विगत कई दशकों से परिवर्तित हुए हैं और अब प्रशासन एक गतिमूलक, परिवर्तनमूलक और उद्देश्यमूलक प्रणाली का रूप ले चुका है। इस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था में कार्मिक अति महत्वपूर्ण हो जाते हैं। कार्मिकों को व्यवसायिक और प्रेरणात्मक रूप से तैयार करने के लिए एक ठोस संगठनात्मक प्रणाली का विकसित होना अत्यावश्यक है और ऐसी संगठनात्मक संरचना की छवि हमें केंद्रीय कार्मिक अभिकरण में दिखाई पड़ती है। केंद्रीय कार्मिक अभिकरण ऐसे ही माध्यम हैं जो सभी महत्वपूर्ण कार्मिक गतिविधियों को क्रियान्वित करते हैं तथा भावी नीतियों को बनाने में और विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने में सही दिशा भी प्रदान करते हैं। कार्मिक अभिकरण सक्रिय कार्मिक नीति बनाने और कार्मिक संबंधी आधुनिक प्रयोगों को लागू करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

12.3 भारत में कार्मिक अभिकरण

भारत जैसे विशाल देश में कार्मिक अभिकरणों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। भारत चीन के बाद विश्व की सबसे घनी आबादी वाला देश है। पर्याप्त श्रमिक बल, कुशल स्नाकतकों की अपार संख्याव तथा तेज़ी से विकसित होती अर्थव्यवस्था के चलते, रोजगार के अवसरों की ज़रूरत में अत्यधिक वृद्धि हुई है। स्वतंत्रता के पश्चात कार्मिक संबंधी कार्यों का निष्पादन केंद्र स्तर पर गृह मंत्रालय अपनी सेवा तथा स्थापना शाखा के अधिकारियों के माध्यम से करता था। भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसाओं के पश्चात वर्ष 1970 में कार्मिक विभाग की स्थापना की गई थी। उस समय यह मंत्रिमंडल सचिवालय में स्थित था और प्रधानमंत्री के नियंत्रण में कार्य करता था। विविध अध्ययन दलों तथा आयोगों की अनुशंसा के आधार पर इसमें समयानुसार परिवर्तन भी किए गए। अनंतर अखिल भारतीय सेवाओं तथा केंद्रीय सेवाओं के कार्मिकों को नियंत्रित एवं निर्देशित करने, संघीय कार्यालयों के विरुद्ध जन शिकायतों का निवारण करने तथा केंद्र सरकार के सेवानिवृत्त कार्मिकों को पेंशन संबंधी मामलों में कार्रवाई करने के लिए कार्मिक, लोक शिकायत एवं

पेंशन मंत्रालय की स्थापना 1985 में की गई थी। 1985 में केंद्रीय सचिवालय के मंत्रालयों में पुनर्गठन करते हुए कार्मिक लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय की स्थापना की गई । यह मंत्रालय प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कार्य करता है, जिसकी सहायता के लिए राज्यमंत्री और उप मंत्री नियुक्त होते हैं। कार्मिक, प्रशिक्षण, प्रशासनिक सुधार, लोक शिकायत एवं पेंशन भोगी कल्याण मंत्रालय में तीन अलग-अलग विभाग शामिल हैं: कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग तथा पेंशन और पेंशन भोगी कल्याण विभाग।

इसके साथ ही, भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 315 के अधीन गठित एक संवैधानिक प्राधिकरण के रूप में संघ लोक सेवा आयोग उच्च सिविल सेवा के अधिकारियों तथा संघ सरकार के संबंधित अन्य पदों की परीक्षा और साक्षात्कार के माध्यम से अधिकारियों की भर्ती करने के अलावा केंद्रीय कार्मिक प्रशासन की संरचना में एक सलाहकार की भूमिका भी निभाता है। राज्य स्तर पर यह व्यवस्था राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा संपादित की जाती है। संघ लोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग और कर्मचारी चयन आयोग विभिन्न सेवाओं एवं पदों पर भर्ती के लिए प्रतियोगी परीक्षाएं आयोजित करते हैं।

भारत के संविधान में लोक सेवा आयोगों के तीन वर्गो पर विचार किया है। संविधान के अनुच्छेद 315 से 323 में एक 'संघीय लोक सेवा आयोग' और राज्यों के लिए 'राज्य लोक सेवा आयोग' के गठन का प्रावधान है। संघ लोक सेवा आयोग संघ सरकार की सेवाओं संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा, एक संयुक्त लोक सेवा आयोग दो या अधिक राज्यों की और राज्य लोक सेवा आयोग एक राज्य की सेवाओं संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा। संघ लोक सेवा आयोग और राज्य लोक सेवा आयोग तो सांविधानिक निकाय हैं, परन्तु संयुक्त लोक सेवा आयोग का निर्माण संसद के अधिनियम द्वारा ही हो सकता है।

12.4 संघ लोक सेवा आयोग

लोक सेवकों की नियुक्ति के संबंध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एक निष्पक्ष संस्था की स्थापना है, जो राजनीतिक और प्रशासनिक दबाव से मुक्त होकर कार्य करे। साथ ही नियुक्तियां समय पर हो तथा मापदंड योग्यता पर आधारित हो, इन्हीं सारी बिंदुओं के परिप्रेक्ष्य में भारत में संघ लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई है तथा इसे संवैधानिक दर्जा भी प्रदान किया गया है। संघ लोक सेवा आयोग एक स्वतंत्र संस्था है, जो कार्मिक प्रशासन के मामले में सरकार के एक निष्पक्ष और सुविज्ञ परामर्शदाता की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका हमारी कार्य पद्धति में एक महत्वपूर्ण स्थान है और यह एक दक्ष और निष्पक्ष लोक सेवा बनने में सरकार की सहायता करता है। भारतीय शासन अधिनियम, 1919 द्वारा सर्वप्रथम एक लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई थी यद्यपि यह

आयोग 1926 में स्थापित हो पाया। अनंतर 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के द्वारा संघ में लोक सेवा आयोग की स्थापना के अतिरिक्त प्रांतों में भी लोक सेवा आयोग की व्यवस्था का प्रावधान रखा गया। स्वतंत्र भारत में संविधान के लागू होते ही संघीय सरकार के लिए एक संघ लोक सेवा आयोग तथा संघ के घटक भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए राज्य लोक सेवा आयोग का प्रावधान किया गया।

संघ लोक सेवा आयोग भारत के संविधान द्वारा स्थापित एक संवैधानिक निकाय है जो भारत सरकार के लोकसेवा के पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करती है। संविधान के अनुच्छेद 315 से लेकर 323 तक में एक संघीय लोक सेवा आयोग और राज्यों के लिए राज्य लोक सेवा आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है।

12.4.1 संघ लोक सेवा आयोग का उद्भव एवं विकास

भारत में लोक सेवा आयोग के गठन का लंबा इतिहास है। स्वतंत्रता से पूर्व इस प्रकार के आयोगों के गठन के प्रयास ब्रिटिश शासकों द्वारा किए गए थे। यहाँ तक कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी कर्मचारियों की आवश्यकता को देखते हुए इस दिशा मे प्रयास किए। लोक सेवा के सिविल कर्मचारी की संज्ञा सबसे पहले ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के उन कर्मचारियों को दी गई थी जो भारत में इसके वाणिज्यिक कार्यों के प्रशासन से संबंधित थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी तब इंग्लैंड में इसके 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' द्वारा चुने जाते थे और भर्ती किए जाते थे। भर्ती के उद्देश्य से, पूर्वी व्यापार और वाणिज्यिक लेखाओं का प्राथमिक ज्ञान उम्मीदवारों की योग्यता माना जाता था लेकिन कुल मिलाकर भर्ती प्रश्रय के आधार पर की जाती थीं। चूँकि नियुक्तियाँ निदेशकों द्वारा नामित व्यक्तियों के लिए पूर्णतः आरक्षित थी, अतः इससे सेवाओं के लिए भर्ती में और अधिक भ्रष्ट तरीके इस्तेमाल होने लगे।

सर्वप्रथम 1833 में लार्ड ग्रेनविल ने यह मांग कि उम्मीदवारों की भर्ती निदेशकों द्वारा किए गए नामांकनों के बजाए प्रतियोगिता के आधार पर होनी चाहिए। लेकिन 1853 तक इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई। फिर भी ईस्ट इंडिया कम्पनी को प्रदत्त चार्टर अधिनियम, 1833 में एक खंड जोड़ा गया कि भविष्य में सिविल सेवा के लिए पात्रता का मानदंड उपयुक्तता होगी और जाति तथा रंग का कोई भेदभाव नहीं बरता जाएगा। भारत में सिविल सेवाओं में नियुक्तियों के लिए नामांकन के संबंध में निदेशकों का अधिकार अप्रैल, 1854 के अंत तक जारी रहने दिया गया। 1833 के अधिनियम को अमल में लाने के लिए उपायों पर सलाह देने के लिए सर चार्ल्स वुड ने 1854 में लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की और इससे, सिद्धान्त रूप में ही सही, भारतीय सिविल सेवा में नियुक्तियाँ, बिना किसी भेदभाव के, प्रतियोगिता के आधार पर होने लगी। समिति ने सिफारिश की

कि प्रत्याशियों का चयन प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर होना चाहिए। कर्मचारियों की अंतिम रूप से नियुक्ति से पहले परिवीक्षा अवधि होनी चाहिए और हेलीबरी कॉलेज बंद कर देना चाहिए।

प्रतियोगी परीक्षा प्रणाली की प्रथम परीक्षा भारत में हुई और फिर धीरे-धीरे यह इंग्लैंड में भी अपनाई गई। लेकिन सेवाओं के भारतीयकरण की प्रक्रिया 1909 तक बहुत धीमी गति से चलती रही । मार्ले-मिंटो सुधार शुरू किए गए लेकिन यह सुधार भारतीयों को संतुष्ट नहीं कर सके।

संघ लोक सेवा आयोग के उद्भव एवं विकास को तीन काल खंड मे विभाजित किया जाता है-

12.4.1.1 प्रथम काल (1926-37)

लोक सेवा निकायों के स्थापना का प्रयास उन दिनों हुआ जब 1919 में तत्कालीन अंग्रेजी शासकों ने भारत के लिए स्वायत्त शासन की आवश्यकता स्वीकार की। सन 1919 के भारतीय शासन अधिनियम में इस भावना की व्यावहारिक अभिव्यक्ति मिलती है। उसमें एक सार्वजनिक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान था जिसकी सेवाओं के लिये पदाधिकारियों की भर्ती, भारत की सार्वजनिक सेवाओं का नियंत्रण तथा ऐसे अन्य कर्त्तव्य होंगे जिनका निर्देश सपरिषद भारत सचिव करेंगे। परंतु उस आयोग की स्थापना तत्काल नहीं हुई। भारत सरकार अधिनिय, 1919 तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट मांटेग्यू तथा तत्कालीन वायसराय और गवर्नर जनरल ऑफ इंडिया लार्ड चैम्सफोर्ड द्वारा प्रस्तुत संयुक्त रिपोर्ट पर आधारित था। यह भारत में लोक सेवा आयोग की स्थापना की दिशा में पहला कदम था। इस अधिनियम में एक सक्षम और स्वतंत्र सिविल सेवा रखने के महत्व को मान्यता दी गई थी। बिना किसी राजनीतिक हस्तक्षेप के सिविल कर्मचारियों की किसी विशेषज्ञ निकाय द्वारा भर्ती करने की तथा ऐसे एक स्थायी कार्यालय की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया गया। अधिनियम के निर्माताओं ने यह अवलोकन किया था कि भारत में लोक सेवा आयोग की स्थापना हो जाने पर भारतीय लोक सेवाओं में अपेक्षाकृत अधिक संख्या में आ सकेंगे और साथ ही सिविल कर्मचारियों की राजनीतिक हस्तक्षेप से सुरक्षा भी हो सकेगी। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार लाके सेवा आयोग की सदस्य संख्या, अध्यक्ष को मिलाकर, पाँच से अधिक नहीं हो सकती थी। प्रत्येक सदस्य अपने पद पर पाँच वर्ष तक रह सकता था और पुनः नियुक्ति के लिए पात्र था।

अनंतर 1923 में ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को प्रशासन की प्रत्येक शाखा के साथ सम्बद्ध स्थापित करने की अपनी घोषित नीति के अनुपालन में लार्ड ली की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया। लॉर्ड ली के नेतृत्व में नियुक्त शाही आयोग को भारतीय उच्च्च सेवाओं के संबंध मे विचार एवं विवरण प्रस्तुत करना था। उस शाही आयोग ने तत्काल उस लोक सेवा आयोग की स्थापना की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। आयोग की राय थी कि सरकार को अपनी जिम्मेदारी निभाने की दिशा में सहायता प्रदान करने के लिए लोक सेवा आयोग की स्थापना आवश्यक थी। इसका विचार

था कि लोक सेवा आयोग की स्थापना के संबंध में उसकी सिफारिश उस रिपोर्ट की एक आधारभूत विशेषता थी और सेवाओं के भविष्य के लिए उसके प्रस्तावों का पूरी संरचना का अभिन्न और अनिवार्य अंग थी। आयोग की सिफारिशों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि उन्होंने प्रान्तों के लिए ऐसे आयोगों का सुझाव नहीं दिया था और राय दी थी कि केन्द्र के लोक सेवा आयोग की विशेषज्ञता का उपयोग प्रान्तीय सरकार को भी करने दिया जाए। शाही आयोग का प्रस्ताव था कि उक्त आयोग के निम्नलिखित चार मुख्य कार्य होंगे- (क) सार्वजनिक सेवाओं के लिये कर्मचारियों की भर्ती, (ख) सेवाओं में प्रविष्ट होनेवाले व्यक्तियों की योग्यताओं का विधान तथा उचित मानक स्थापित करना, (ग) सेवाओं के अधिकारों की सुरक्षा करना तथा नियंत्रण एवं अनुशासन की व्यवस्था करना तथा (घ) सामान्य रूप से सेवा संबंधी समस्याओं पर परामर्श एवं अनुमति देना।

अनुशंसाओं के फलस्वरूप लोकसेवा आयोग की स्थापना अक्टूबर 1926 में हुई । इसका एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य थे। यह प्रावधान किया गया कि अखिल भारतीय प्रथम और द्वितीय श्रेणियों की सेवाओं के, उन प्रतियोगिता परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों के निर्धारण, जिनके द्वारा कर्मचारियों का निर्वाचन हो, उक्त सेवाओं के लिये पदोन्नति, अनुशासनीय कार्य, वेतन, भत्ते, पेंशन, प्रॉविडेंट फंड एवं पारिवारिक पेंशन विषय आदि मामलों में सरकार उससे परामर्श ले। किसी वर्ग विशेष या सभी सेवाओं के नियम तथा छुट्टी आदि के नियमों के प्रश्नों पर भी सरकार उक्त आयोग से परामर्श करेगी। इसे अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सेवा प्रथम श्रेणी में भर्ती से संबंधित सभी विषयों पर गवर्नर जनरल इन काउंसिल को सलाह देनी थी। आयोग को सौंपे गए कार्य मात्र परामर्शी स्वरूप के थे। ली आयोग चाहता था कि जहाँ तक भारत में सेवाओं में भर्ती का संबंध है, लोक सेवा आयोग का प्राधिकार अंतिम होना चाहिए। लेकिन तब भारत सरकार ने उसकी सिफारिशों पर कोई ध्यान नहीं दिया और इसलिए लोक सेवा आयोग को केवल परामर्शी शक्तियों सहित गठित किया गया।

लंदन में 1930 में सम्पन्न पहली गोलमेज कांफ्रेंस में एक प्रस्ताव रखा गया था कि, प्रत्येक प्रान्त में और केन्द्र सरकार के संबंध में, यथास्थिति, गवर्नर अथवा गवर्नर जनरल द्वारा एक सांविधानिक लोक सेवा आयोग नियुक्त किया जाएगा। ब्रिटिश सरकार के जो सांविधानिक प्रस्ताव 15 मार्च, 1933 को प्रकाशित हुए थे, उनमें भी व्यवस्था थी कि फेडरल लोक सेवा आयोग के साथ-साथ प्रान्तों में भी लोक सेवा आयोग गठित किए जाए। भारतीय सांविधानिक सुधारों पर संयुक्त समिति (1933-34) भी ऐसे प्रस्तावों पर सहमत थी और उसने भी सारे भारत के लिए एक से अधिक लोक सेवा आयोग गठित करने की आवश्यता को स्वीकार किया था।

12.4.1.2 द्वितीय काल (1937-50)

भारतीय लोक सेवा आयोग के 1930-36 के क्रियाकलापों से पता चलता है कि यह आयोग एक शक्तिशाली कार्मिक अभिकरण नही बन सका। यह कार्यपालिका से स्वतंत्र नहीं था। भारत सरकार अधिनियम, 1935, जिसके अंतर्गत प्रान्त पूर्णतया उत्तरदायी बन गए थे, ने सिविल सेवा आयोग के कार्यों का सांविधानिक प्राधिकार बढ़ा दिया था। सन 1935 के भारतीय विधान के परिच्छेद 266 में, उपर्युक्त प्रस्तावों को स्थाई रूप दिया गया। उसमें लोक सेवा आयोगों के कर्त्तव्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दिया गया। यह कहा जा सकता है कि उक्त विधान के द्वारा ही आयोगों की अंतिम एवं स्थायी रूप में रचना की गई थी। इस अधिनियम के 1937 में लागू होने से लोक सेवा आयोग का नाम फेडरल लोक सेवा आयोग रख दिया गया। इसमें यह भी व्यवस्था थी कि प्रान्त भी अपने-अपने लोक सेवा आयोग गठित करें। आज के केंद्रीय अथवा राज्यों के आयोग का संगठन, रूप एवं आधार, सब उसी पर आधारित हैं।

इस आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा किया जाना था। आयोग के सदस्यों की संख्या, उनकी पदावधि, सेवा शर्तों आदि गवर्नर जनरल पर ही निर्भर था। प्रावधान यह था कि आयोग के कम से कम आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए जिन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन के अधीन कम से कम दस वर्ष तक पद संभाला हो। इस आयोग को निम्नलिखित मामलों पर सरकार को सलाह भी देनी थी-

- सिविल सेवाओं और सिविल पदों के लिए भर्ती के तरीकों से संबंधित सभी मामले।
- सिविल सेवाओं और सिविल पदों पर नियुक्तियों करने तथा पदोन्नतियाँ करने और एक सेवा से दूसरी सेवा में अंतरण करने व ऐसी नियुक्ति, पदोन्नति अथवा अन्तरण के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता के संबंध में मामले।
- सिविल कर्मचारी की हैसियत से सेवारत व्यक्ति से संबंधित सभी अनुशासनिक मामले।
- किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा उसकी डयूटियों के निष्पादन में किए गए कार्यो के खिलाफ, यदि कोई कानूनी कार्यवाही की जाती है तो उसमें अपने बचाव के लिए किए गए व्ययों के प्रतिपूर्ति के लिए दावों से संबंधित मामले, और
- सिविल कर्मचारी की हैसियत में किसी सरकारी कर्मचारी को पहुँची क्षति के लिए पेंशन प्रदान करने संबंधी मामले, तथा गवर्नर जनरल द्वारा आयोग को भेजे गए कोई अन्य मामले।

12.4.1.3 तृतीय काल(1950 से अब तक)

फेडरल लोक सेवा आयोग अपने वर्तमान रूप में 1947 से 1950 के बीच काम करता रहा। 26 जनवरी 1950 को जब भारत का संविधान लागू हुआ तो इसका स्थान अंतिम रूप से संघ लोक सेवा आयोग ने ले लिया। भारत की स्वाधीनता कुछ दृष्टियों से संघ लोक सेवा आयोग के लिए एक नए युग का सूत्रपात हुआ। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संघ लोक सेवा आयोग को न्यायपालिका तथा नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के साथ-साथ लोकतंत्र को दृढ बनाने का साधन समझा। अतः उन्होंने इसे न केवल सांविधानिक दर्ज़ा दी, बल्कि इसकी स्वतंत्रता के बचाव के लिए विस्तृत उपायों की भी व्यवस्था की।

12.4.2 **संघ लोक सेवा आयोग का संगठन**

भारतीय संविधान में संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या तथा सेवा संबंधी शर्तों का उल्लेख नहीं किया गया है तथा इसे राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दिया गया है। लोक सेवा आयोग (संघ अथवा संयुक्त) का अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। संविधान के प्रावधानों के अनुसार राज्य आयोग के मामले में अध्यक्ष तथा अन्य सदस्य उस राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। संविधान में आयोग के सदस्यों के संख्या नियत नहीं की गई है किन्तु आयोग के आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए जिन्होंने भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अधीन कम से कम 10 वर्ष तक किसी न किसी पद पर कार्य किया हो।

सामान्यतया संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष के अतिरिक्त 10 सदस्य होते हैं जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होते हैं । सदस्यों का कार्यकाल पदभार ग्रहण करने की तिथि से 6 वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, जो भी पहले हो, होता है। सामान्यतया सदस्यों की नियुक्ति करते समय नियुक्ति करते समय प्रशासनिक योग्यता के साथ साथ उनके चरित्र, कर्तव्य निष्ठा और ईमानदारी को भी ध्यान में रखा जाता है। ये कभी भी अपना इस्तीफ़ा राष्ट्रपति को सौप सकते हैं। कार्यकाल पूर्ण होने से पहले राष्ट्रपति इन्हें पद की अवमानना या अवैध कार्यों में लिप्त होने के लिए बर्ख़ास्त कर सकता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 317 में सदस्यों के अपदस्थ करने की प्रक्रिया का वर्णन मिलता है इसके अनुसार राष्ट्रपति निम्न स्थितियों में संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या अन्य किसी सदस्य को कार्यकाल के पूर्व भी हटा सकता है - क. यदि अध्यक्ष या सदस्य दिवालिया हो गया हो, ख. यदि आयोग के सेवाकाल में उन्होंने अन्य वेतनभोगी पद स्वीकार किया हो तथा ग. यदि राष्ट्रपति के विचार में अध्यक्ष या सदस्य शारीरिक अथवा मानसिक दुर्बलता के कारण अपने पद का कार्यभार ग्रहण करने में असमर्थ हो।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त दुराचरण और कदाचार के अपराध में भी राष्ट्रपति उन्हें सर्वोच्च न्यायालय से जांच कराकर हटा सकता है। शब्द 'कदाचार' को संविधान में स्पष्ट कर दिया गया है। कोई सदस्य कदाचार का दोषी तब माना जाएगा जब (क) वह भारत सरकार या किसी राज्य सरकार की ओर से किए गए किसी करार या संविदा में उसका हित लाभ हो या वा उससे संबंधित हो अथवा (ख) वह किसी निगमित कम्पनी के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर ऐसे करार अथवा संविदा में किसी भी रूप से लाभ का भागीदार हो।

संघ लोक सेवा आयोग के लिए राष्ट्रपति आयोग के सदस्यों में से एक सदस्य को एक कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कर सकता है यदि-आयोग के अध्यक्ष का पद रिक्त हो जाये अथवा, आयोग का अध्यक्ष अनुपस्थिति या किसी अन्य कारण से अपने कार्यालय के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो।

इस तरह का सदस्य एक कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है, जब तक किसी व्यक्ति को कार्यालय के कर्तव्यों का पालन करने के लिए अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया जाये या जब तक अध्यक्ष पुनः अपना कार्य आरंभ ना कर दे, जैस भी मामला हो।

आयोग के सदस्यों के वेतन और भत्ते तथा अन्य शर्तों को तय करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्रदान किया गया है जिसे उनकी पदावधि में बदला नहीं जा सकता। 7 वें वेतन आयोग के अनुरूप संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को रु. 2,50,000 तथा तथा सदस्यों को रु. 2,25,000 मासिक वेतन मिलता है। संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन सहित अन्य सभी प्रकार के खर्चे भारत सरकार की संचित निधि से दिए जाते हैं।

इसके साथ ही आयोग का सचिवालय भी है, जिसमें अनेक प्रकार के कर्मचारी कार्यरत हैं। औपचारिक रूप से आयोग के कार्यालय को केंद्रीय सचिवालय का ही एक अंग माना जाता है। कार्यालय के कर्मचारियों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। आयोग में एक सचिव और दो अतिरिक्त सचिव होते हैं । साथ ही कार्यपालक निदेशक, सूचना प्रणाली निदेशक, परीक्षा सुधार संयुक्त सचिव, 14 उपसचिव और अनेक विशेषज्ञ अधिकारी और अन्य कार्यालय अधिकारी कार्यरत होते हैं। इनके अतिरिक्त आयोग में कार्यों की प्रकृति के आधार पर ढेर सारी नियुक्तियां भी की जाती है। संघ लोक सेवा आयोग के सचिव का दर्जा भारत सरकार के संयुक्त सचिव के समकक्ष है तथा उसका वेतनमान और अन्य सेवा शर्ते भारत सरकार के संयुक्त सचिवों के अनुरूप ही है। संविधान के अनुच्छेद-318 में संघ लोक सेवा आयोग में कर्मचारियों की संख्या एवं उनकी सेवा शर्तों के संबंध में विनियम बनाने की बनाने का अधिकार राष्ट्रपति के पास है। आयोग का कर्मचारी केंद्रीय सचिवालय के विभागों में स्थानांतरित अथवा पदोन्नत हो सकता है ।

भारत के संघ लोक सेवा आयोग का मुख्यालय धौलपुर हाउस, नई दिल्ली मे स्थित है। कुंडलाकार की यह सुन्दर इमारत इंडिया गेट के बगल में शाहजहां रोड पर स्थित है। पहले यह धौलपुर राजघराने का निवास हुआ करता था और इसका निर्माण भी नई दिल्ली के निर्माण के दौरान 1920 के दशक में किया गया था।

12.4.3 **संघ लोक सेवा आयोग के कार्य**

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-315 के अधीन गठित एक संवैधानिक प्राधिकरण के रूप में संघ लोक सेवा आयोग उच्च सिविल सेवा के अधिकारियों तथा संघ सरकार के संबंधित अन्य पदों की परीक्षा और साक्षात्कार के माध्यम से अधिकारियों की भर्ती करने के अलावा केंद्रीय कार्मिक प्रशासन की संरचना में एक सलाहकार की भूमिका भी निभाता है। समय के साथ इसके कार्यो मे विस्तार हुआ है। संघ लोक सेवा आयोग के जो कार्य संविधान में अनुच्छेद- 320 के अंतर्गत विनिर्दिष्ट किए गए हैं वे वही हैं जो भारत सरकार अधिनियम, 1935 में फेडरल लोक सेवा आयोग के लिए विनिर्दिष्ट किए गए थे। इन कार्यों को मोटे तौर पर तीन वर्गों में बाँटा गया है- यथा (1) नियामक, (2) कार्यपालक (3) अर्ध-न्यायिक

1. नियामक कार्य- नियामक कार्यों में संघ लोक सेवा आयोग सरकार को निम्नलिखित से संबंधित मामलों में सलाह देता है- भर्ती के तरीके और नियुक्तियाँ, पदोन्नतियाँ तथा एक सेवा में दूसरी सेवा में अन्तरण करने के लिए अपनाए जाने वाले सिद्धान्त। फिर भी, संयुक्त राज्य अमेरिका के लोक सेवा आयोग को जिस प्रकार का नियामक अधिकार क्षेत्र मिला हुआ है, भारत में संघ लोक सेवा आयोग को ऐसी कोई शक्तियाँ नहीं मिली हैं। संघ लोक सेवा आयोग का कार्य क्षेत्र मात्र परामर्शी है। संविधान के अनुच्छेद-320 (3) में केवल यह उल्लेख है कि यह आयोग का कर्तव्य है कि वह सरकार को सिविल सेवा में भर्ती की पद्धतियों, पदोन्नतियों और अन्तरणों से संबंधित सभी मामलो में सलाह दें। यद्यपि संघ लोक सेवा आयोग के कुछ कार्यों को प्रायः नियामक कार्य कहा जाता है, परन्तु वास्तव में वह कार्य भी मात्र सलाहकारी कार्य ही है।

2. कार्यपालक कार्य- आयोग का एक विशिष्ट सांविधानिक कर्तव्य है कि वह संघ की सेवाओं में नियुक्तियों के लिए परीक्षाएँ ले। इस प्रावधान के अधीन संघ लोक सेवा आयोग प्रति वर्ष विभिन्न वर्गो के पदों के लिए अनेक लिखित परीक्षाएँ लेती है। साथ ही विशिष्ट और अन्य वर्गों के पदों के लिए उम्मीदवारों का चयन करने के लिए साक्षात्कार भी आयोजित किए जाते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आयोग का कार्य-क्षेत्र राजपत्रित अधिकारियों तक ही सीमित रखा गया है, जिनकी संख्या सरकारी कर्मचारियों की कुल संख्या की तुलना में बहुत कम है। वस्तुतः आयोग का

कार्यपालक कार्य क्षेत्र केन्द्र सरकार के कुल कर्मचारियों के 1.9 प्रतिशत कर्मचारियों पर ही लागू होता है।

संघ लोक सेवा आयोग का दूसरा कार्यपालक कार्य है, राष्ट्रपति को प्रति वर्ष आयोग द्वारा पिछले वर्ष के दौरान किए गए कार्य की रिपोर्ट प्रस्तुत करना। राष्ट्रपति यह रिपोर्ट, एक ऐसे ज्ञापन के साथ सदन के दोनों सदनों के समक्ष रखते हैं जिसमं उन मामलो को स्पष्ट किया जाता है, जिनमें आयोग की सलाह नहीं मानी गई थी और साथ ही न मानने के कारण भी दिए जाते हैं।

3. अर्ध-न्यायिक कार्य- संघ लोक सेवा आयोग की अर्द्ध-न्यायिक अधिकार क्षेत्र और विस्तार दोनों दृष्टियों से सीमित है। वास्तव में, इसको कोई सचमुच के अपीली अधिकार नहीं है। कर्मचारियों के विरूद्ध की गई अनुशासनिक कार्रवाइयों पर यह केवल सलाह दे सकता है। संविधान के अनुसार, सरकार को निम्नलिखित मामलों में आयोग की सलाह लेनी चाहिए-

- सरकारी कर्मचारी के संबंध में, परिनिन्दा, वेतन वृद्धि अथवा पदोन्नति रोकना, निम्न वेतनमान में पदावनत करना, अनिवार्य सेवा-निवृत्ति, सेवा से हटाना अथवा पदच्युत करना आदि जैसी अनुशासनिक कार्यवाहियां।
- किसी कर्मचारी द्वारा अपनी ड्यूटी के निष्पादन में किए गए कार्यों के संबंध में उसके खिलाफ की गई कानूनी कार्यवाही में उस कर्मचारी द्वारा किए गए खर्च की प्रतिपूर्ति के दावे, और
- किसी कर्मचारी को पहुँची क्षति के संबंध में पेंशन देने के दावे और ऐसी पेंशन की राशि के संबंध में सभी प्रश्न।

संघ लाके सेवा आयोग के जो कार्य निर्धारित किए गए हैं, वे जैसा ऊपर बताया गया है कि भारत के संविधान से तो लिए ही गए हैं साथ ही अन्य स्त्रोतों से भी लिए जाते हैं। जैसे- संसद द्वारा बनाए गए कानून, कार्यपालिका के नियम, विनियम और आदेश और परिपाटियाँ। संविधान के अनुच्छेद 318 और 320 के अनुसार केन्द्र सरकार कुछ विनियमों और आदेशों के माध्यम से आयोग को कुछ कार्य सौंप सकती है। साथ ही राष्ट्रपति भी, समय-समय पर विनियमों के माध्यम से उन मामलों को भी परिनिश्चित कर सकते हैं जिनमे आयोग की सलाह आवश्यक नहीं होती।

आयोग कुछ ऐसे कार्य भी करता है जो परिपाटियों के माध्यम से उसे सौंपे गए हैं, यद्यपि संविधान में इनकी व्याख्या नहीं है। संविधान के अधीन रक्षा सेनाओं के लिए भर्ती का कार्य आयोग के अधिकार क्षेत्र में नहीं है, क्योंकि रक्षा सेवाएँ सिविल सेवाओं का अंग नहीं हैं। लेकिन 1948 से आयोग केडेटों के चयन के लिए लिखित परीक्षा ले रहा है, जो अब एक नियमित कार्यकलाप बन गया है। इसी

प्रकार संघ लोक सेवा आयोग उच्च योग्यता प्राप्त वैज्ञानिकों तथा प्रौद्योगविदों के पूल के लिए वैज्ञानिकों तथा तकनीशियनों का चयन करता है, जो केन्द्र सरकार, वैज्ञानिक संस्थानों, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं, विश्व विद्यालयों आदि में प्रतिनियुक्त किए जाते हैं। यह कार्य संघ लोक सेवा आयोग द्वारा केवल परिपाटियों के आधार पर किए जा रहे हैं।

संघ लोक सेवा आयोग संविधान के अनुच्छेद 320 और 321 के अंतर्गत संघ की सेवाओं में नियुक्तियों के लिए परीक्षाएं आयोजित करता है, जिसमें केंद्र शासित प्रदेशों की अखिल भारतीय सेवाएँ, केंद्रीय सेवाएँ, और सार्वजनिक सेवाएँ शामिल हैं। आयोग विभिन्न सेवाओ के लिए लगभग दर्जन भर परीक्षाओ का आयोजन करता है, जैसे अभियांत्रिकी, चिकित्सा, वन सेवा आदि। वर्तमान में संघ लोक सेवा आयोग सिविल सेवा परीक्षाओ के माध्यम से विविध सेवाओ के लिए अभ्यर्थियों का चयन करता है इसमें से सबसे चर्चित भारतीय प्रशासिनिक, भारतीय पुलिस सेवा व भारतीय राजस्व सेवा हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय रक्षा अकादमी और नौसेना अकादमी परीक्षा, सम्मिलित रक्षा सेवा परीक्षा, भारतीय अभियांत्रिकी सेवा, भारतीय आर्थिक और सांख्यिकी सेवा, संयुक्त चिकित्सा सेवा, विशिष्ट श्रेणी रेलवे प्रशिक्षु सेवा, भूगर्भ सेवा, विभागीय अधिकारी/आशुलिपिक (श्रेणी 'ख'/श्रेणी।) परिसीमित विभागीय प्रतियोगी परीक्षा तथा 'स्पेशल क्लास रेलवे प्रशिक्षु परीक्षा' परीक्षाओ का आयोजन करता है। यह किसी भी सेवा के लिए संयुक्त भर्ती तैयार करने और परिचालन योजनाओं में राज्यों को सहायता करता है जिसके लिए विशेष योग्यता रखने वाले उम्मीदवारों की आवश्यकता होती है, जिसके लिए दो या उससे अधिक राज्यों द्वारा अनुरोध किया गया हो।

12.4.4 **संघ लोक सेवा आयोग की सलाहकार भूमिका**

यद्यपि आयोग को महत्वपूर्ण सांविधानिक कर्तव्य और कार्य सौंपे गए हैं, फिर भी इसकी भूमिका मात्र सलाहकार और परामर्शी की है। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत संघीय लोक सेवा आयोग की भूमिका भी परामर्शी ही थी। उस समय यह विचार किया गया था कि यदि आयोग को अधिक अधिकार दिए गए तो इससे कार्यपालिका की शक्तियों के साथ हस्तक्षेप हो सकता है। संघ लोक सेवा आयोग का कार्य सरकार को केवल मात्र सलाह देना है और कार्यपालिका इसकी सलाह मानने के लिए कानूनी तौर पर बाध्य नहीं है।

लोक सेवा आयोग स्थिति के अनुसार निम्नलिखित मामलों में अपना परामर्श देगा, ये मामले हैं-

- सभी मामले सिविल सेवाओं तथा सिविल पदों की नियुक्ति के तरीके से संबन्धित।

- सिविल सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियों करने में और एक सेवा से दूसरे में स्थानांतरण तथा पदोन्नति और इस तरह की नियुक्तियों, स्थानान्तरण और पदोन्नति के लिए उम्मीदवारों की उपयुक्तता पर सिद्धांतों का अनुसरण करना।

- एक नागरिक की हैसियत से भारत सरकार के अधीन सेवारत व्यक्ति को प्रभावित करने वाले सभी अनुशासनात्मक मामले जिसमें इन मामलों से संबन्धित स्मारक या याचिकाएं शामिल हों।

- अपने आधिकारिक कर्तव्य के निष्पादन में या किए गए कृत्यों का उसके खिलाफ स्थापित कानूनी कार्यवाही की रक्षा करने में एक सिविल सेवक द्वारा उठाए गए खर्च का किसी भी प्रकार का दावा करना।

- भारत सरकार के अधीन सेवारत व्यक्ति घायल होने पर पेंशन के हक़ के लिए दावा कर सकता है और किसी भी हक़ के लिए राशि से संबन्धित कोई भी प्रश्न कर सकता है।

- कार्मिक प्रबंधन से संबंधित कोई भी मामला राष्ट्रपति द्वारा संदर्भित।

संघ लोक सेवा आयोग के प्रदर्शन से संबन्धित वार्षिक रिपोर्ट को राष्ट्रपति के समक्ष पेश किया जाता है। इसके बाद राष्ट्रपति इस रिपोर्ट को संसद के दोनों सदनों में ज्ञापन के साथ प्रस्तुत करता है जिसमें यह बताया गया होता है कि कहाँ पर आयोग की सलाह को नहीं स्वीकार किया गया और इस गैर स्वीकृति के पीछे का कारण क्या है।

यह समझा जा सकता है कि संविधान के अधीन, कुछ ऐसे मामले हैं जिन पर सरकार आयोग की सलाह लेने के लिए बाध्य है। इस प्रावधान का उल्लंघन असांविधानिक माना जाएगा। लेकिन सरकार आयोग की सलाह स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। साथ ही संविधान में एक नया अनुच्छेद- 323 जोड़कर आयोग की सलाह स्वीकार न करने पर एक सांविधानिक अवरोध लगा दिया गया है। जिन मामलों में आयोग की सलाह स्वीकार नहीं कि जाती है, उन मामलों में इस अनुच्छेद की अपेक्षाओं के अनुसार, सरकार को संसद के समक्ष एक ज्ञापन प्रस्तुत करना होता है जिसमें सलाह स्वीकार ने करने के कारण बताए जाते हैं। साथ ही, आयोग की सलाह पर, कार्यवाही करने के लिए मंत्रालय अथवा विभाग की शक्तियाँ सोच-समझकर इस तरह सीमित कर दी गई है कि वे आयोग तब तक अस्वीकार नहीं कर सकते जब तक मंत्रीमंडल की नियुक्ति समिति का अनुमोदन प्राप्त न हो जाए। आयोग की सलाह के खिलाफ कोई भी प्रशासनिक विभाग तब तक कार्रवाई नहीं कर सकता जब तक कि उसे समिति की सहमति प्राप्त न हो जाए। इन आंतरिक और बाध्य प्रतिबंधों के कारण आयोग की सलाह स्वीकार न करने के मामलों की संख्या नगण्य रही है।

12.4.5 **संघ लोक सेवा आयोग भूमिका का मूल्यांकन**

संघ लोक सेवा आयोग केंद्रीय भर्ती अभिकरण है। यह प्रतिभा प्रणाली को बनाए रखने और पदों के लिए सबसे उपयुक्त लोगों को आगे लाने के लिए उत्तरदायी है। यह परीक्षा आयोजित करता है और समूह क एव समूह ख में अखिल भारतीय सेवाओं और केंद्रीय सेवाओं में कर्मियों की नियुक्ति के लिए सरकार को अपनी सिफ़ारिश भेजता है। संघ लोक सेवा आयोग की भूमिका स्वभाव से सलाहकार की होती है और सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं होती है। हालांकि, सरकार संसद के प्रति जवाबदेह है, यदि, वह आयोग की सलाह को खारिज कर दे। इसके अलावा, संघ लोक सेवा आयोग का संबंध परीक्षा प्रक्रिया से है और ना की सेवाओं के वर्गीकरण, कैडर प्रबंधन, प्रशिक्षण, सेवा शर्तों आदि के साथ संबंध रखता है। इन मामलों को कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय के अधीन कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग द्वारा नियंत्रित किया जाता है। सरकार पदोन्नति और अनुशासनात्मक मामलों पर संघ लोक सेवा आयोग से सलाह लेती है। लेकिन कुछ ऐसे मामले हैं जो संघ लोक सेवा आयोग के कार्यक्षेत्र में नहीं आते हैं। वे इस प्रकार हैं-

- भारत के संविधान में अनुच्छेद- 335 के अंतर्गत व्यवस्था है कि विभिन्न पदों की नियुक्ति के मामलों में सरकार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावों पर विचार करेगी। अनुच्छेद- 320(4) के अनुसार, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों के लिए आरक्षणों की सीमा निर्धारित करने के संबंध में संघ लोक सेवा आयोग की सलाह लेना आवश्यक नहीं है। लेकिन एक बार ऐसी शर्तें निर्धारित हो जाने के बाद आयोग, एक भर्ती एजेंसी के रूप में, चयन की कार्य पद्धति शुरू कर देता है।

- राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे विनिमय बना सकता है जिनसे कुछ मामले संघ लोक सेवा आयोग की सलाह के कार्य क्षेत्र से बाहर रखे जा सकते है। ऐसे सभी विनियमों को अनुमोदन के लिए अधिक से अधिक चैदह दिनों की अवधि के लिए संसद के दोनों सदनों में रखा जाना अनिवार्य है। संसद, यदि आवश्यक समझे तो, इनमें संशोधन कर सकती है अथवा इन्हें रद्द कर सकती है।

जिन पदों की भर्ती के लिए संघ लोक सेवा आयोग की सलाह आवश्यक नहीं है, वे हैं- अभिकरणों, आयोगों, उच्च-अधिकार प्राप्त समितियों के सदस्यों अथवा अध्यक्षों के पद उच्च तकनीकी अथवा प्रशासनिक पद, ऐसी अस्थायी रिक्तियाँ भरना जहाँ नियुक्तियाँ एक वर्ष से कम अवधि के लिए की जाती हैं।

अपने 70 वर्ष के कार्यकाल में लोक सेवा आयोग ने अपने संविधानिक उद्देश्यों को काफी सीमा तक पूरा किया है और वास्तव में यह सिद्ध कर दिया है कि यह किसी खास वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नहीं

बल्कि निष्पक्ष और राजनीतिक रूप से किसी भी प्रकार के दबाबों से अपने आप को अछूता पाता है। आयोग ने कार्यपालिका के दबाव के विरुद्ध बिना भय या पक्षपात कर अधिक अच्छी मिसाल कायम की है।

12.5 कर्मचारी चयन आयोग

कर्मचारी चयन आयोग भारत सरकार के कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय से संबद्ध एक संस्था है। कर्मचारी चयन आयोग की स्थापना का उद्देश्य भारत सरकार के गैर तकनीकी संवर्ग के पदों पर निम्न स्तर के कर्मचारियों की भर्ती करने संबंधी व्यवस्था को युक्तिसंगत बनाना है। भारत सरकार के मंत्रालयों व विभागों और अधीनस्थ कार्यालयों में गैर तकनीकी समूह 'ग' और समूह ‘घ' के अराजपत्रित पदों में भर्ती का कार्य आयोग द्वारा किया जाता है। इसके लिए समय-समय पर आयोग द्वारा परीक्षायें आयोजित किये जाते हैं । संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग के कार्यों की अधिकता को देखते हुए तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की नियुक्ति हेतु कर्मचारी चयन आयोग की स्थापना संसद की आकलन समिति की सिफारिशों के आधार पर की गई थी।

12.5.1 कर्मचारी चयन आयोग का गठन सम्बन्धी प्रावधान

संसद की आकलन समिति ने अपनी 47वीं रिपोर्ट (1967-68) में कर्मचारी चयन आयोग की स्थापना की सिफारिश की थी जिसके आधार पर निम्न श्रेणी के पदों पर कर्मचारियों की भर्ती संबंधित परीक्षाएं आयोजित करने का दायित्व एक नई संस्था को देने का फैसला किया गया। विविध नियुक्ति संबंधी परीक्षा आयोजित करने के कारण संघ लोक सेवा आयोग द्वारा परीक्षा एवं परिणाम की घोषणा करने में अनावश्यक विलंब हो जाता था तथा निम्न स्तर के पदों पर कर्मचारियों की नियुक्ति की समस्या बनी रह जाती थी। इसलिए एक निकाय की स्थापना आवश्यकता महसूस हुई। अंतरिम तौर पर सचिवालय प्रशिक्षण विद्यालय में एक परीक्षा स्कन्ध स्थापित किया गया जिसे बाद में सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान कहा गया ।

प्रशासनिक सुधार समिति ने भी कार्मिक प्रशासन संबंधी अपनी रिपोर्ट में इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया था कि केंद्र और राज्य सरकारों के अधिकांश पद तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी से संबंध रखते हैं। नियुक्ति संबंधी व्यवस्थाओं को समान स्वरूप देने के लिए विभिन्न अनुशंसाएं की थी। आयोग की इन अनुशंसाओं के पश्चात भारत सरकार ने वर्ष 1975 में एक अधीनस्थ चयन आयोग की स्थापना का निर्णय लिया। इस आयोग द्वारा विभिन्न सरकारी एवं अधीनस्थ कार्यालयों में लिपिक आशुलिपिक एवं विविध सैनी एवं निम्न श्रेणी के पदों पर नियुक्ति संबंधी परीक्षाएं आयोजित करने और सफल परीक्षार्थियों की सिफारिश करने का उत्तरदायित्व एक नवगठित चयन आयोग को

सौंपा गया। इसे बाद मे कर्मचारी चयन आयोग का नाम दिया गया जो जुलाई 1976 से गतिमान हुआ। इसे पहले "अधीनस्थ सेवा आयोग" कहते थे। इसका पुन: नामकरण सितंबर 1977 में 'कर्मचारी चयन आयोग' के रूप में हुआ।

12.5.2 कर्मचारी चयन आयोग का संगठन

कर्मचारी चयन आयोग केंद्रीय कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग का संबंध कार्यालय है, इसमें एक अध्यक्ष और दो सदस्य होते हैं। साथ ही एक सदस्य सचिव सह-परीक्षा नियंत्रक होते हैं जिनकी नियुक्ति समय-समय पर केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित नियम एवं शर्तों के अधीन की जाती है। सदस्यों का कार्यकाल 05 वर्ष या 62 वर्ष की आयु, जो पहले हो, होता है। सदस्यों की नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा की जाती है। आयोग की अध्यक्षता अध्यक्ष द्वारा की जाती है। सचिव दोनों सदस्यों के अधीन कार्य करता है। आयोग का मुख्यालय नई दिल्ली के सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड में स्थित है। वर्तमान मे आयोग मे एक निदेशक, दो संयुक्त निदेशक, एक उप-सचिव, 9 अनु सचिव,चार उप-निदेशक, एक वित्त अधिकारी, 24 अनुभाग अधिकारी और 183 से अधिक अन्य कर्मचारी मुख्यालय में कार्यरत हैं।

इसके अतिरिक्त कर्मचारी चयन आयोग के सात क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो इलाहाबाद, मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, गुवाहाटी, बैंगलुरु और चेन्नई में स्थित हैं। इसके साथ ही, कर्मचारी चयन आयोग के दो उप-क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो रायपुर और चंडीगढ़ में स्थित है। उप-क्षेत्रीय कार्यालय मे क्षेत्रीय निदेशक प्रधान होते है, जिनकी सहायता के लियए उप निदेशक नियुक्त होते हैं। कर्मचारी चयन आयोग के क्षेत्रीय कार्यालय आयोग की नीतियों तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन, क्षेत्रीय कार्यालय के पर्यवेक्षण मे राज्य सरकार के साथ संपर्क बनाए रखने तथा अपने केंद्र में अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर रहकर परीक्षा और साक्षात्कारों का आयोजन करने में आयोग की सहायता करते हैं।

12.5.3 कर्मचारी चयन आयोग के कार्य

कर्मचारी चयन आयोग का कार्य भारत सरकार के मंत्रालयों व विभागों, संबद्ध और अधीनस्थथ कार्यालयों और महानियंत्रक एवं लेखा परीक्षक एवं महालेखाकारों के कार्यालयों में गैर-तकनीकीय समूह 'ग' और 'घ' के अराजपत्रित पदों में भर्ती करना है। अधीनस्थध सेवा आयोग की स्था पना सरकारी क्षेत्र में निम्न श्रेणी के पदों में भर्ती के लिए परीक्षाओं का आयोजन करने के लिए की गई है। कर्मचारी चयन आयोग ने सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान की परीक्षा स्कंध द्वारा आयोजित किए जाने वाले परीक्षा संबंधित सभी कार्य अपनी स्थापना के वक्त ही ले लिए थे । धीरे धीरे आयोग ने दिल्ली और दिल्ली के बाहर स्थित संपूर्ण केंद्र सरकार के संगठनों में सभी मध्य स्तरीय और अधीनस्थ स्तर के गैर तकनीकी पदों पर नियुक्ति करने का कार्य संपादित करना शुरू किया जो संपूर्ण

सरकारी पदों का लगभग 55 फीसदी है। आयोग नीतियां तैयार करने के लिए उत्तरदायी है जिसमें परीक्षाओं की एवं अन्या प्रक्रियाओं की योजना बनाना शामिल है, ताकि परीक्षाओं और चयन परीक्षणों को सुव्य वस्थित रूप से चलाया जा सके। कर्मचारी चयन आयोग संयुक्त स्नातक स्तरीय परीक्षा के साथ-साथ संयुक्त उच्चतर माध्यमिक परीक्षा, आशुलिपिक सीमित विभागीय प्रतियोगी परीक्षा, इंजीनियरिंग सहायक, कनिष्ठ अभियंता सीमित विभागीय परीक्षा और अन्य परीक्षा आयोजित करता है।

कर्मचारी चयन आयोग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

- केंद्रीय सरकार के निम्न श्रेणी के लिपिकों की भर्ती हेतु प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन।
- केंद्रीय सचिवालय के आशुलिपिक सेवा संवर्ग की भर्ती के लिए प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन।
- केंद्रीय सचिवालय के लिपिक श्रेणी तथा वर्ग चतुर्थ सेवर भारतीय में पदोन्नति के लिए विभागीय परीक्षाओं का आयोजन।
- अंग्रेजी और हिंदी की टंकण परीक्षा का आयोजन आदि।

इस प्रकार, भारत सरकार के लगभग 55 प्रतिशत पद, जो मध्य एवं अधीनस्थ स्तर के गैर तकनीकी पद होते हैं तथा उन पर नियुक्ति का कार्य कर्मचारी चयन आयोग द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान समय में इस आयोग के पास कुछ नए कार्य भी सौपे गए हैं। भर्ती के लिए योग्यताओं पर परामर्श, पद विशेषीकरण, विशेष वर्गों एवं श्रेणियों के उम्मीदवारों के लिए चयन के विशेष प्रयास, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के उम्मीदवारों के लिए नियुक्ति से पूर्व प्रशिक्षण आदि ऐसे विषय हैं, जिन पर कर्मचारी चयन आयोग कार्य करता है।

12.5.4 कर्मचारी चयन आयोग भूमिका का मूल्यांकन

स्थापना से लेकर आज तक कर्मचारी चयन आयोग की भूमिका सकारात्मक रही है। लगातार बढ़ रहे नियुक्तियों की जिम्मेदारियों का निर्वाह इस संस्था ने बखूबी किया है। विगत कुछ वर्षों में पद संबंधी अपेक्षाओं और उम्मीदवारों की उपलब्धता को देखते हुए कर्मचारी चयन आयोग ने मंत्रालयों, विभागों और संगठनों को परामर्श देने का कार्य भी अपने हाथों में ले लिया है। साथ ही जिन क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की उम्मीदवार उपलब्ध हैं, वहां आयोग ने अपने अथक प्रयास से अपनी परीक्षाओं को लोकप्रिय बनाया है और विगत कुछ वर्षों से इन वर्गों के छात्र-छात्राएं विविध परीक्षाओं के माध्यम से कर्मचारी आयोग द्वारा सम्मिलित

किए जा रहे हैं। यह आयोग शिक्षण सामग्री और शिक्षण केंद्र आदि के माध्यम से नियुक्ति पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था करके एक उत्प्रेरक अभिकरण की भूमिका भी निभाता है। कर्मचारी चयन आयोग मूक बधिर लोगों के लिए आरक्षित पदों को भरने के लिए विशेष भर्ती अभियान भी चलाता है। इस आयोग द्वारा परीक्षाएं आयोजित करने और उम्मीदवारों के चयन में अपनाई गई कार्य विधियां क्रियाएं संघ लोक सेवा आयोग द्वारा इस संदर्भ में दशकों से अपनाई गई प्रणाली पर ही आधारित है परंतु आयोग ने प्रशासनिक तंत्र की स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले सरकारी कर्मचारियों की व्यापक नियुक्ति संबंधी अपेक्षाओं के अनुरूप कुछ नए परिवर्तन भी किए हैं।

12.6 कार्मिक अभिकरणों की भूमिका का मूल्यांकन

राज्य के स्वरूप और गतिविधियों के विस्तार के साथ प्रशासन का महत्व भी बढ़ता गया है। आज के संदर्भ में राज्य केवल सतही और विनियामक कार्य ही नहीं करता बल्कि वह लोगों की राज्य के प्रति आकांक्षाओं के अनुरूप आर्थिक विकास को गति देता है और सामाजिक और संस्कृति प्रगति को भी एक परिवर्तित रूप देता है। सरकार के कार्य, परिस्थितियों के अनुसार विगत कई दशकों से परिवर्तित हुए हैं और अब प्रशासन एक गतिमूलक, परिवर्तनमूलक और उद्देश्यमूलक प्रणाली का रूप ले चुका है। इस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था में कार्मिक अति महत्वपूर्ण हो जाते हैं। कार्मिकों को व्यवसायिक और प्रेरणात्मक रूप से तैयार करने के लिए एक ठोस संगठनात्मक प्रणाली का विकसित होना अत्यावश्यक है और ऐसी संगठनात्मक संरचना की छवि हमें केंद्रीय कार्मिक अभिकरण में दिखाई पड़ती है। केंद्रीय कार्मिक अभिकरण ऐसे ही माध्यम हैं जो सभी महत्वपूर्ण कार्मिक गतिविधियों को क्रियान्वित करते हैं तथा भावी नीतियों को बनाने में और विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने में सही दिशा भी प्रदान करते हैं। कार्मिक अभिकरण सक्रिय कार्मिक नीति बनाने और कार्मिक संबंधी आधुनिक प्रयोगों को लागू करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अपने 70 वर्ष के कार्यकाल में लोक सेवा आयोग ने अपने संविधानिक उद्देश्यों को काफी सीमा तक पूरा किया है और वास्तव में यह सिद्ध कर दिया है कि यह किसी खास वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नहीं बल्कि निष्पक्ष और राजनीतिक रूप से किसी भी प्रकार के दबाबों से अपने आप को अछूता पाता है। आयोग ने कार्यपालिका के दबाव के विरुद्ध बिना भय या पक्षपात कर अधिक अच्छी मिसाल कायम की है।

अभ्यास प्रश्न-

1. केन्द्रीय कार्मिक विभाग की स्थापना कब की गई थी?
2. भारत के संविधान में लोक सेवा आयोगों के कितने वर्गों पर विचार किया गया है?

3. सम्मिलित रक्षा सेवा परीक्षा का आयोजन कौन करता है?

4. कर्मचारी चयन आयोग के कितने क्षेत्रीय कार्यालय हैं?

12.7 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने विविध केंद्रीय अभिकरण के उद्भव एवं विकास, संगठन एवं कार्यों के संबंध में व्यापक रूप से चर्चा की, जो विविध कार्मिक गतिविधियों के लिए जिम्मेदार हैं। परामर्श दात्री भूमिका तथा उन उपायों पर भी चर्चा की, जो सरकार द्वारा आयोग के परामर्श से संभावित अनादर के संबंध में संविधान में उपस्थित हैं। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रवादियों ने जो राजनीतिक आन्दोलन चलाया, उसकी एक प्रमुख मांग थी कि लोक सेवा आयोग में भर्ती भारत में हो, क्योंकि तब इसकी परीक्षा इंग्लैंड में हुआ करती थी। प्रथम लोक सेवा आयोग की स्थापना अक्तूबर 1926 को हुई। आज़ादी के बाद संवैधानिक प्रावधानों के तहत 26 अक्तूबर 1950 को लोक आयोग की स्थापना हुई। इसे संवैधानिक दर्जा देने के साथ साथ स्वायत्ता भी प्रदान की गयी ताकि यह बिना किसी दबाव के योग्य अधिकारियों की भर्ती क़र सके। स्वतंत्रता के बाद, संविधान सभा ने अनुभव किया कि सिविल सेवाओं में निष्पक्ष भर्ती सुनिश्चित करने के साथ ही सेवा हितों की रक्षा के लिए संघीय एवं प्रांतीय, दोनों स्तरों पर लोक सेवा आयोगों को एक सुदृढ़ और स्वायत्त स्थिति प्रदान करने की आवश्यकता महसूस की गई। इस नव स्थापित लोक सेवा आयोग को संघ लोक सेवा आयोग नाम दिया गया। संघ लोक सेवा आयोग भारत के संविधान द्वारा स्थापित एक ऐसी संस्था है, जो भारत सरकार के लोक सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति के लिए परीक्षाएँ संचालित करती है। आयोग की मुख्य भूमिका केंद्र तथा राज्यों (अर्थात अखिल भारतीय सेवा) के लिए सामान्य विभिन्न केंद्रीय सिविल सेवाओं तथा पदों एवं सेवाओं में नियुक्ति के लिए व्यक्तियों का चयन करना है।

संघ और राज्य लोक सेवाओं की स्थापना के अलावा वर्ष 1976 में कर्मचारी चयन आयोग का गठन किया गया जिसे सरकार के मध्य स्तरीय और गैर तकनीकी श्रेणी की अधीनस्थ कर्मचारियों की भर्ती संबंधी दायित्व सौंपा गया। इस इकाई में हमने कर्मचारी चयन आयोग के कार्यों की भी व्याख्या की है।

12.8 शब्दावली

संविधान- राजनीतिक व्यवस्था को नियमित एवं नियंत्रित करनेवाला देश का सर्वोच्च कानून, प्रश्रय-किसी पर अनुग्रह करके नियुक्ति प्रदान करने का तरीका,
ढ़ांचा – संरचना

दिवालिया- ऐसा व्यक्ति जिसके पास धन धन लौटाने के लिए पर्याप्त धन माल्या संपत्ति ना हो, **परिनिन्दा**- त्रुटियों को दर्शाने वाली टिप्पणी,

अध्यादेश- विधान मंडल की कार्यवाही न होने की स्थिति में राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा लाया गया कानून

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वर्ष 1970 में, 2. तीन, 3. संघ लोक सेवा आयोग, 4. सात

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रैशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।
3. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
2. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संघ लोक सेवा आयोग के उद्भव एवं विकास का वर्णन कीजिए।
2. संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों की समीक्षा कीजिए।
3. संघ लोक सेवा आयोग की परामर्शदात्री भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
4. कर्मचारी चयन आयोग की स्थापना के उत्तरदायी कारणों का विश्लेषण कीजिए।
5. कर्मचारी चयन आयोग के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई–13: भारत के महान्यायवादी, राज्य के महाधिवक्ता

इकाई की संरचना

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 भारत के महान्यायवादी (Attorney General of India)
    13.3.1 संवैधानिक आधार के
    13.3.2 नियुक्ति एवं योग्यता
    13.3.3 कार्यकाल एवं पदत्याग
    13.3.4 शक्तियाँ एवं कार्य
    13.3.5 अधिकार, विशेषाधिकार एवं सीमाएँ
13.4 राज्य के महाधिवक्ता (Advocate General of the State)
    13.4.1 संवैधानिक आधार
    13.4.2 नियुक्ति एवं योग्यता
    13.4.3 कार्यकाल एवं पदत्याग
    13.4.4 शक्तियाँ एवं कार्य
    13.4.5 अधिकार, विशेषाधिकार एवं सीमाएँ
13.5 भारत के महान्यायवादी एवं राज्य के महाधिवक्ता का तुलनात्मक अध्ययन
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
13.9 संदर्भ ग्रंथ
13.10

13.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान ने लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने तथा विधि के शासन (Rule of Law) को प्रभावी बनाने के लिए केंद्र एवं राज्य स्तर पर सर्वोच्च विधि अधिकारियों की व्यवस्था की है। केंद्र स्तर परभारत के महान्यायवादी (Attorney General of India)तथा राज्य स्तर परराज्य के महाधिवक्ता (Advocate General of the State) इस संवैधानिक व्यवस्था के प्रमुख स्तंभ हैं। इन दोनों पदों का उद्देश्य सरकार को विधिक मामलों में विशेषज्ञ परामर्श प्रदान करना, न्यायालयों में सरकार का प्रतिनिधित्व करना तथा संविधान एवं विधि के अनुरूप शासन संचालन सुनिश्चित करना है।

संविधान केअनुच्छेद 76में भारत के महान्यायवादी तथाअनुच्छेद 165में राज्य के महाधिवक्ता के पद का प्रावधान किया गया है। महान्यायवादी भारत सरकार के सर्वोच्च विधि अधिकारी होते हैं, जबकि महाधिवक्ता राज्य सरकार के सर्वोच्च विधि अधिकारी होते हैं। दोनों पद संवैधानिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये शासन और न्यायपालिका के मध्य एक प्रभावी विधिक सेतु का कार्य करते हैं।

यद्यपि दोनों पदों की मूल प्रकृति समान है, तथापि उनकी नियुक्ति, अधिकार-क्षेत्र, उत्तरदायित्व, कार्यप्रणाली तथा शक्तियों में कुछ महत्वपूर्ण भिन्नताएँ विद्यमान हैं। महान्यायवादी की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा तथा महाधिवक्ता की नियुक्ति संबंधित राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाती है। दोनों अपने-अपने स्तर पर सरकार के विधिक सलाहकार होने के साथ-साथ न्यायालयों में सरकार का प्रतिनिधित्व भी करते हैं।

इस इकाई में भारत के महान्यायवादी एवं राज्य के महाधिवक्ता के संवैधानिक आधार, नियुक्ति, योग्यता, कार्यकाल, शक्तियाँ, कर्तव्य, विशेषाधिकार, सीमाएँ तथा दोनों पदों का तुलनात्मक अध्ययन विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, भारतीय संघीय शासन व्यवस्था में इन दोनों संवैधानिक पदों की भूमिका एवं महत्व का विश्लेषण भी किया गया है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

1. भारत के महान्यायवादी एवं राज्य के महाधिवक्ता की संवैधानिक स्थिति का वर्णन कर सकेंगे।
2. दोनों पदों की नियुक्ति, योग्यता एवं कार्यकाल का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता की शक्तियों, कार्यों एवं विशेषाधिकारों की व्याख्या कर सकेंगे।

4. दोनों पदों के मध्य समानताओं एवं भिन्नताओं का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
5. भारतीय शासन व्यवस्था में इन दोनों संवैधानिक पदों की भूमिका एवं महत्व का मूल्यांकन कर सकेंगे।

13.3 भारत के महान्यायवादी

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने यह सुनिश्चित किया कि केंद्र सरकार को विधिक एवं संवैधानिक विषयों पर उच्च स्तरीय परामर्श उपलब्ध हो तथा न्यायालयों में सरकार का प्रभावी प्रतिनिधित्व किया जा सके। इसी उद्देश्य से संविधान केभाग V (संघ), अध्याय I (कार्यपालिका)केअनुच्छेद 76के अंतर्गतभारत के महान्यायवादी (Attorney General of India)के पद का प्रावधान किया गया है। यह भारत सरकार का सर्वोच्च विधि अधिकारी (Highest Law Officer of the Union Government) होता है और भारत सरकार को विधिक मामलों में परामर्श देने, सर्वोच्च न्यायालय एवं अन्य न्यायालयों में सरकार का पक्ष प्रस्तुत करने तथा राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए अन्य विधिक दायित्वों का निर्वहन करने के लिए उत्तरदायी होता है।

महान्यायवादी मंत्रिपरिषद का सदस्य नहीं होता, परंतु वह भारत सरकार का प्रमुख विधिक सलाहकार होने के कारण शासन-प्रशासन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह पद कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य एक प्रभावी संवैधानिक सेतु का कार्य करता है। शासन के अनेक जटिल संवैधानिक प्रश्नों, विधेयकों की वैधानिकता तथा न्यायिक विवादों में महान्यायवादी की राय अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है।

संविधान के अनुसार महान्यायवादी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। नियुक्ति के लिए वही व्यक्ति पात्र होता है, जोउच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यतारखता हो। अर्थात् वह भारत का नागरिक हो तथा या तो किसी उच्च न्यायालय में कम-से-कम पाँच वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो, अथवा किसी एक या एकाधिक उच्च न्यायालयों में लगातार दस वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो, अथवा राष्ट्रपति की दृष्टि में एक प्रतिष्ठित विधिवेत्ता (Distinguished Jurist) हो।

महान्यायवादी का कार्यकाल संविधान में निश्चित नहीं किया गया है। वहराष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त (During the Pleasure of the President)अपने पद पर बना रहता है। इसी प्रकार उसके वेतन एवं भत्तों का भी संविधान में उल्लेख नहीं है; इनका निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है। यद्यपि महान्यायवादी भारत सरकार का विधिक सलाहकार होता है, तथापि वह पूर्णकालिक सरकारी कर्मचारी नहीं माना जाता और उसे सीमित सीमा तक निजी वकालत करने की अनुमति होती है।

हालांकि वह भारत सरकार के विरुद्ध किसी भी मामले में न्यायालय में उपस्थित नहीं हो सकता तथा सरकार की अनुमति के बिना किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त का बचाव नहीं कर सकता।

महान्यायवादी के प्रमुख कार्यों में भारत सरकार को विधिक विषयों पर परामर्श देना, राष्ट्रपति द्वारा संदर्भित विधिक प्रश्नों पर अपनी राय देना, सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य न्यायालयों में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करना तथा संविधान एवं संसद द्वारा सौंपे गए अन्य विधिक कर्तव्यों का पालन करना शामिल है। इसके अतिरिक्त संविधान केअनुच्छेद 88के अनुसार महान्यायवादी को संसद के दोनों सदनों तथा उनकी समितियों की कार्यवाही में भाग लेने और अपने विचार रखने का अधिकार प्राप्त है, यद्यपि उसे मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं होता।

महान्यायवादी को अपने पद के कारण कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त होते हैं। वह भारत के किसी भी न्यायालय में उपस्थित होकर सरकार की ओर से बहस कर सकता है। संसद की कार्यवाही में भाग लेने तथा विधेयकों एवं संवैधानिक विषयों पर सरकार को विधिक परामर्श देने के कारण उसकी भूमिका भारतीय शासन व्यवस्था में अत्यंत प्रभावशाली मानी जाती है। संविधान की व्याख्या, संघ एवं राज्यों के मध्य विवादों तथा जनहित से जुड़े महत्वपूर्ण मामलों में उसकी विधिक राय सरकार के निर्णयों को दिशा प्रदान करती है।

इस प्रकार भारत का महान्यायवादी केवल सरकार का विधिक सलाहकार ही नहीं, बल्कि भारतीय संवैधानिक शासन व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण संवैधानिक पदाधिकारी भी है। उसकी निष्पक्ष विधिक सलाह तथा न्यायालयों में प्रभावी पैरवी संविधान की सर्वोच्चता, विधि के शासन तथा लोकतांत्रिक प्रशासन को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

13.3.1 **संवैधानिक आधार**

भारत के महान्यायवादी (Attorney General of India) का पद भारतीय संविधान द्वारा स्थापित एक महत्त्वपूर्ण संवैधानिक पद है। इस पद का उद्देश्य भारत सरकार को विधिक एवं संवैधानिक विषयों पर विशेषज्ञ परामर्श उपलब्ध कराना तथा न्यायालयों में संघ सरकार का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना है। महान्यायवादी का संवैधानिक आधार मुख्यतःअनुच्छेद 76में निहित है, जबकि उसके संसद संबंधी अधिकारों का उल्लेखअनुच्छेद 88 में किया गया है।

(1) **अनुच्छेद** 76 :**महान्यायवादी का प्रावधान**

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 76 के अनुसार भारत के राष्ट्रपति एक ऐसे व्यक्ति को भारत का महान्यायवादी नियुक्त करेंगे, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखता

हो। यह प्रावधान महान्यायवादी को भारत सरकार का सर्वोच्च विधि अधिकारी (Highest Law Officer of the Union Government) बनाता है।

अनुच्छेद 76 के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं—

- राष्ट्रपति भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति करते हैं।
- नियुक्त व्यक्ति में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बनने की योग्यता होना आवश्यक है।
- महान्यायवादी का कर्तव्य भारत सरकार को विधिक विषयों पर परामर्श देना है।
- राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए विधिक कार्यों का निर्वहन करना तथा संविधान एवं अन्य विधियों के अधीन निर्धारित दायित्वों का पालन करना उसकी जिम्मेदारी है।
- महान्यायवादी राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर बना रहता है।
- उसके पारिश्रमिक का निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।

(2) **अनुच्छेद** 88 :**संसद में भाग लेने का अधिकार**

संविधान के अनुच्छेद 88 के अंतर्गत महान्यायवादी को संसद के दोनों सदनों—लोकसभा एवं राज्यसभा—तथा उनकी समितियों की कार्यवाही में भाग लेने और अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है। यह अधिकार इसलिए दिया गया है ताकि सरकार को विधायी कार्यों एवं संवैधानिक प्रश्नों पर विशेषज्ञ विधिक परामर्श प्राप्त हो सके। हालाँकि, महान्यायवादी संसद का निर्वाचित सदस्य नहीं होता, इसलिए उसे किसी भी सदन में मतदान (Voting) का अधिकार प्राप्त नहीं होता।

(3) **अन्य संवैधानिक प्रावधानों से संबंध**

यद्यपि महान्यायवादी का मुख्य उल्लेख अनुच्छेद 76 में है, तथापि उसका कार्य भारतीय संविधान के अनेक अन्य प्रावधानों से भी जुड़ा हुआ है। उदाहरणस्वरूप—

• अनुच्छेद 131के अंतर्गत संघ एवं राज्यों के मध्य विवादों में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करना।

• अनुच्छेद 143के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय से प्राप्त सलाह (Advisory Jurisdiction) से संबंधित विधिक मामलों में सरकार को परामर्श देना।

• संविधान की व्याख्या, संवैधानिक संशोधनों, संघ-राज्य संबंधों तथा जनहित के महत्त्वपूर्ण मामलों में सरकार का पक्ष प्रस्तुत करना।

(4) **संवैधानिक महत्व**

महान्यायवादी का पद भारतीय संवैधानिक शासन व्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह पद कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य विधिक समन्वय स्थापित करता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि सरकार के निर्णय संविधान एवं विधि के अनुरूप हों। महान्यायवादी की विधिक राय नीतिगत निर्णयों, विधेयकों के निर्माण, संवैधानिक विवादों तथा न्यायिक कार्यवाहियों में सरकार के लिए मार्गदर्शक का कार्य करती है।

अतः स्पष्ट है कि महान्यायवादी का संवैधानिक आधार केवल उसकी नियुक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि भारतीय लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में विधि के शासन (Rule of Law), संवैधानिक सर्वोच्चता तथा उत्तरदायी शासन को सुदृढ़ करने में उसकी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

13.3.2 नियुक्ति एवं योग्यता (भारत के महान्यायवादी / Attorney General of India)

भारत के महान्यायवादी (Attorney General of India) भारत सरकार के सर्वोच्च विधिक अधिकारी होते हैं। यह पद भारत के संविधान के अनुच्छेद 76 के अंतर्गत स्थापित किया गया है। महान्यायवादी भारत सरकार को विधिक मामलों में सलाह देते हैं तथा सर्वोच्च न्यायालय एवं अन्य न्यायालयों में सरकार का पक्ष प्रस्तुत करते हैं। इस पद पर ऐसे विधि विशेषज्ञ की नियुक्ति की जाती है जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बनने की योग्यता रखता हो।

(क) नियुक्ति (Appointment)

भारत के महान्यायवादी की नियुक्तिभारत के राष्ट्रपतिद्वारा की जाती है। संविधान के अनुच्छेद 76(1) के अनुसार राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को महान्यायवादी नियुक्त करते हैं जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने की योग्यता रखता हो।

यद्यपि संविधान में नियुक्ति की विस्तृत प्रक्रिया का उल्लेख नहीं किया गया है, परंतु व्यवहार में राष्ट्रपति, केंद्र सरकार तथा विधि एवं न्याय मंत्रालयकी सलाह पर महान्यायवादी की नियुक्ति करते हैं। महान्यायवादी का चयन सामान्यतः ऐसे वरिष्ठ अधिवक्ता या विधिवेत्ता में से किया जाता है जिन्हें संवैधानिक, प्रशासनिक तथा सार्वजनिक विधि का व्यापक ज्ञान और अनुभव हो।

(ख) योग्यता (Qualifications)

संविधान के अनुच्छेद 76 के अनुसार महान्यायवादी बनने के लिए वही योग्यताएँ आवश्यक हैं जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बनने के लिए निर्धारित हैं। ये योग्यताएँ संविधान केअनुच्छेद 124(3)में वर्णित हैं—

1. व्यक्तिभारत का नागरिकहोना चाहिए।

2. वह किसी उच्च न्यायालय (या एक से अधिक उच्च न्यायालयों) मेंलगातार कम-से-कम पाँच वर्ष तक न्यायाधीशरहा हो; अथवा

3. किसी उच्च न्यायालय (या एक से अधिक उच्च न्यायालयों) मेंलगातार कम-से-कम दस वर्ष तक अधिवक्तारहा हो; अथवा

4. राष्ट्रपति की राय में वहएक प्रतिष्ठित विधिवेत्ता (Distinguished Jurist)हो।

इन योग्यताओं का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि महान्यायवादी उच्च स्तर की विधिक विशेषज्ञता, संवैधानिक समझ तथा न्यायिक अनुभव रखने वाला व्यक्ति हो, जिससे वह केंद्र सरकार को जटिल संवैधानिक एवं विधिक विषयों पर प्रभावी परामर्श प्रदान कर सके।

मुख्य बिंदु

• महान्यायवादी की नियुक्तिराष्ट्रपतिद्वारा की जाती है।

• नियुक्ति का संवैधानिक आधारअनुच्छेद 76(1)है।

• महान्यायवादी के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान योग्यता आवश्यक है।

• नियुक्त व्यक्ति भारत का नागरिक तथा विधि के क्षेत्र में उच्च अनुभव एवं प्रतिष्ठा वाला होना चाहिए।

• व्यवहार में प्रायः वरिष्ठ अधिवक्ता या संवैधानिक विधि विशेषज्ञ को इस पद पर नियुक्त किया जाता है।

13.3.3 कार्यकाल एवं पदत्याग

भारत के महान्यायवादी (Attorney General of India) का कार्यकाल एवं पदत्याग अन्य संवैधानिक पदों की तुलना में विशिष्ट है। संविधान में महान्यायवादी के कार्यकाल की कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं की गई है। वे राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त (During the Pleasure of the

President) अपने पद पर बने रहते हैं। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकार को आवश्यकता के अनुसार सर्वोच्च स्तर पर विधिक परामर्श उपलब्ध होता रहे तथा पद पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया जा सके।

(क) कार्यकाल

भारत के संविधान केअनुच्छेद 76(4) के अनुसार महान्यायवादी राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं। इसका अर्थ है कि उनका कार्यकाल किसी निश्चित अवधि, जैसे पाँच वर्ष या छह वर्ष, के लिए निर्धारित नहीं है।

व्यवहार में महान्यायवादी सामान्यतः उस समय तक अपने पद पर बने रहते हैं जब तक—

• राष्ट्रपति का उन पर विश्वास बना रहता है;

• केंद्र सरकार उन्हें अपने विधिक सलाहकार के रूप में बनाए रखना चाहती है; अथवा

• वे स्वयं पद से त्यागपत्र नहीं दे देते।

नई सरकार के गठन के बाद प्रायः महान्यायवादी अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को सौंप देते हैं ताकि नई सरकार अपनी पसंद के विधि विशेषज्ञ को इस पद पर नियुक्त कर सके। यद्यपि यह कोई संवैधानिक अनिवार्यता नहीं है, बल्कि एक स्थापित संवैधानिक परंपरा (Constitutional Convention) है।

(ख) पदत्याग (Resignation)

संविधान में महान्यायवादी के त्यागपत्र की विस्तृत प्रक्रिया का उल्लेख नहीं किया गया है। यदि महान्यायवादी अपने पद से त्यागपत्र देना चाहते हैं, तो वे अपनात्यागपत्र राष्ट्रपति को संबोधितकरते हैं। राष्ट्रपति द्वारा त्यागपत्र स्वीकार किए जाने के पश्चात उनका पद रिक्त हो जाता है।

महान्यायवादी निम्न परिस्थितियों में पद छोड़ सकते हैं—

- स्वेच्छा से त्यागपत्र देकर;
- राष्ट्रपति द्वारा पद से हटाए जाने पर (प्रसादपर्यन्त सिद्धांत के अंतर्गत);
- मृत्यु की स्थिति में।

(ग) कार्यकाल से संबंधित प्रमुख विशेषताएँ

1. महान्यायवादी के लिए संविधान में कोईनिश्चित कार्यकालनिर्धारित नहीं है।

2. वेराष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्तपद पर बने रहते हैं।

3. राष्ट्रपति किसी भी समय उन्हें पद से हटा सकते हैं।

4. महान्यायवादी किसी भी समय राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर पद छोड़ सकते हैं।

5. नई सरकार के गठन के पश्चात त्यागपत्र देना एकसंवैधानिक परंपराहै, संवैधानिक बाध्यता नहीं।

पारिश्रमिक

संविधान महान्यायवादी के वेतन का निर्धारण नहीं करता।अनुच्छेद 76(4)के अनुसार राष्ट्रपति उनके पारिश्रमिक का निर्धारण करते हैं। महान्यायवादी पूर्णकालिक सरकारी कर्मचारी नहीं होते; वे निजी वकालत भी कर सकते हैं, किन्तु सरकार के विरुद्ध किसी मामले में उपस्थित नहीं हो सकते तथा ऐसे मामलों में निजी पक्ष का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते जिनमें हितों का टकराव (Conflict of Interest) हो।

मुख्य बिंदु

• महान्यायवादी का कार्यकाल निश्चित नहीं होता।

• वे राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं।

• त्यागपत्र राष्ट्रपति को दिया जाता है।

• राष्ट्रपति किसी भी समय उन्हें पद से हटा सकते हैं।

• नई सरकार बनने पर त्यागपत्र देना संवैधानिक परंपरा है।

• उनका पारिश्रमिक राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित किया जाता है।

13.3.4 **शक्तियाँ एवं कार्य**

भारत के महान्यायवादी (Attorney General of India) भारत सरकार के सर्वोच्च विधिक अधिकारी (Chief Legal Advisor) हैं। वे केंद्र सरकार को संवैधानिक, विधिक एवं नीतिगत मामलों में परामर्श प्रदान करते हैं तथा सर्वोच्च न्यायालय एवं अन्य न्यायालयों में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि महान्यायवादी मंत्रिपरिषद् के सदस्य नहीं होते, फिर भी शासन के

विधिक पक्ष को सुदृढ़ बनाने में उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। उनकी शक्तियाँ एवं कार्य मुख्यतःसंविधान के अनुच्छेद 76तथा विभिन्न विधिक परंपराओं एवं सरकारी नियमों से निर्धारित होते हैं।

(क) भारत सरकार को विधिक परामर्श देना

महान्यायवादी का प्रमुख कार्य भारत सरकार को उन सभी विधिक एवं संवैधानिक विषयों पर सलाह देना है जिन्हें राष्ट्रपति अथवा केंद्र सरकार उनके समक्ष प्रस्तुत करती है। वे विधेयकों, अध्यादेशों, अंतरराष्ट्रीय संधियों, संवैधानिक संशोधनों तथा अन्य जटिल विधिक प्रश्नों पर अपनी विशेषज्ञ राय देते हैं।

(ख) न्यायालयों में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करना

महान्यायवादी सर्वोच्च न्यायालय में भारत सरकार की ओर से महत्वपूर्ण मामलों में पैरवी करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे उच्च न्यायालयों तथा अन्य न्यायाधिकरणों में भी केंद्र सरकार का पक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं। विशेष रूप से संवैधानिक व्याख्या, संघ–राज्य विवाद, मौलिक अधिकारों तथा राष्ट्रीय महत्व के मामलों में उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

(ग) राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए कर्तव्यों का निर्वहन

संविधान के अनुच्छेद 76(2) के अनुसार राष्ट्रपति समय-समय पर महान्यायवादी को अतिरिक्त विधिक अथवा संवैधानिक दायित्व सौंप सकते हैं। महान्यायवादी इन दायित्वों का निर्वहन संविधान तथा विधि के अनुरूप करते हैं।

(घ) संसद एवं उसकी समितियों को विधिक सहायता

महान्यायवादी संसद के किसी भी सदन तथा उसकी समितियों में विधिक विषयों पर अपना मत प्रस्तुत कर सकते हैं। वे विधेयकों के विधिक पहलुओं को स्पष्ट करने तथा जटिल संवैधानिक प्रश्नों पर सरकार की ओर से स्पष्टीकरण देने में सहायता करते हैं।

(ङ) संवैधानिक मामलों में सरकार का मार्गदर्शन

जब सरकार के समक्ष संविधान की व्याख्या, संघ–राज्य संबंध, मौलिक अधिकारों, विधायी अधिकारों अथवा अन्य संवैधानिक प्रश्न उत्पन्न होते हैं, तब महान्यायवादी सरकार को उपयुक्त विधिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

(च) अन्य विधिक दायित्वों का निर्वहन

महान्यायवादी विभिन्न मंत्रालयों, विभागों तथा सार्वजनिक निकायों को विधिक सलाह देते हैं। वे राष्ट्रीय महत्व के मामलों में सरकार की विधिक रणनीति तैयार करने तथा न्यायिक निर्णयों के प्रभाव का विश्लेषण करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

शक्तियाँ एवं कार्य : संक्षेप में

- भारत सरकार के मुख्य विधिक सलाहकार के रूप में कार्य करना।
- राष्ट्रपति एवं केंद्र सरकार को विधिक एवं संवैधानिक परामर्श देना।
- सर्वोच्च न्यायालय एवं अन्य न्यायालयों में सरकार का प्रतिनिधित्व करना।
- राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए दायित्वों का निर्वहन करना।
- संसद एवं संसदीय समितियों को विधिक सहायता प्रदान करना।
- संवैधानिक विवादों एवं जटिल विधिक मामलों में सरकार का मार्गदर्शन करना।

13.3.5 **अधिकार, विशेषाधिकार एवं सीमाएँ**

महान्यायवादी को अपने संवैधानिक दायित्वों के प्रभावी निर्वहन हेतु कुछ विशेष अधिकार एवं विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं। साथ ही, उनके पद की निष्पक्षता एवं गरिमा बनाए रखने के लिए कुछ संवैधानिक तथा व्यावसायिक सीमाएँ भी निर्धारित की गई हैं।

(क) अधिकार

1. संसद में भाग लेने का अधिकार

संविधान केअनुच्छेद 88के अनुसार महान्यायवादी को संसद के दोनों सदनों तथा उनकी समितियों की कार्यवाही में भाग लेने और अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार है। हालांकि, उन्हें मतदान (Vote) का अधिकार प्राप्त नहीं है।

2. न्यायालयों में उपस्थित होने का अधिकार

महान्यायवादी को भारत के सभी न्यायालयों में भारत सरकार की ओर से उपस्थित होने तथा सरकार का पक्ष रखने का अधिकार प्राप्त है।

3. सरकारी अभिलेखों एवं सूचनाओं तक पहुँच

अपने विधिक दायित्वों के निर्वहन के लिए महान्यायवादी आवश्यक सरकारी अभिलेखों, दस्तावेजों एवं सूचनाओं का अवलोकन कर सकते हैं।

(ख) **विशेषाधिकार**

1. भारत सरकार के सर्वोच्च विधिक अधिकारी के रूप में विशेष सम्मान एवं प्रोटोकॉल प्राप्त होता है।
2. संसद की कार्यवाही में भाग लेकर विधिक विषयों पर अपना विशेषज्ञ मत प्रस्तुत कर सकते हैं।
3. राष्ट्रीय महत्व के संवैधानिक एवं विधिक मामलों में सरकार के प्रमुख सलाहकार होते हैं।
4. राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक एवं अन्य सुविधाएँ प्राप्त करते हैं।

(ग) सीमाएँ

महान्यायवादी पर कुछ महत्वपूर्ण सीमाएँ लागू होती हैं, जिनका उद्देश्य हितों के टकराव (Conflict of Interest) को रोकना तथा पद की निष्पक्षता बनाए रखना है—

1. वेभारत सरकार के विरुद्ध किसी मामले में वकालत नहीं कर सकते।
2. भारत सरकार की अनुमति के बिना किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त की ओर से उपस्थित नहीं हो सकते।
3. ऐसे मामलों में निजी पक्ष का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते जिनमें भारत सरकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित जुड़ा हो।
4. वे संसद के सदस्य नहीं होते और इसलिए मतदान का अधिकार नहीं रखते।
5. वे मंत्रिपरिषद् के सदस्य नहीं होते; अतः सरकारी नीतियों के निर्माण में उनका योगदान मुख्यतःविधिक परामर्शतक सीमित रहता है।
6. उन्हें प्राप्त गोपनीय सूचनाओं का दुरुपयोग नहीं किया जा सकता तथा पेशेवर गोपनीयता का पालन करना आवश्यक होता है।

मुख्य बिंदु

- महान्यायवादी भारत सरकार के सर्वोच्च विधिक अधिकारी हैं।
- वे सरकार को विधिक एवं संवैधानिक परामर्श देते हैं।
- सर्वोच्च न्यायालय सहित सभी न्यायालयों में सरकार का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं।
- उन्हें संसद की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है, परंतु मतदान का अधिकार नहीं है।
- वे सरकार के विरुद्ध वकालत नहीं कर सकते तथा हितों के टकराव वाले मामलों से दूर रहते हैं।

13.4 राज्य के महाधिवक्ता

भारतीय संविधान ने संघीय शासन व्यवस्था के अनुरूप केंद्र तथा राज्यों के लिए पृथक-पृथक विधिक अधिकारियों की व्यवस्था की है। जिस प्रकार केंद्र स्तर पर भारत के महान्यायवादी (Attorney General of India) भारत सरकार के सर्वोच्च विधिक अधिकारी होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक राज्य मेंराज्य का महाधिवक्ता (Advocate General)राज्य सरकार का सर्वोच्च विधिक अधिकारी होता है। इस पद की व्यवस्था संविधान केअनुच्छेद 165के अंतर्गत की गई है।

महाधिवक्ता राज्य सरकार को विधिक एवं संवैधानिक विषयों पर परामर्श प्रदान करता है तथा उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय एवं अन्य न्यायिक मंचों पर राज्य सरकार का प्रतिनिधित्व करता है। वह राज्य सरकार द्वारा बनाए जाने वाले विधेयकों, अध्यादेशों, नियमों एवं नीतियों की संवैधानिक वैधता का परीक्षण करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त, राज्यपाल द्वारा सौंपे गए विधिक दायित्वों का निर्वहन करना तथा राज्य सरकार को जटिल विधिक मामलों में उचित सलाह देना भी उसका प्रमुख दायित्व है।

महाधिवक्ता राज्य सरकार और न्यायपालिका के मध्य एक महत्वपूर्ण संवैधानिक कड़ी के रूप में कार्य करता है। यद्यपि वह राज्य सरकार का विधिक सलाहकार होता है, फिर भी उससे अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कर्तव्यों का निर्वहन निष्पक्षता, विधिक दक्षता तथा संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप करे। राज्य प्रशासन में विधि के शासन (Rule of Law) को सुनिश्चित करने तथा शासन के निर्णयों को संवैधानिक कसौटी पर परखने में महाधिवक्ता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है।

13.4.1 संवैधानिक आधार

राज्य के महाधिवक्ता का पद भारतीय संविधान केअनुच्छेद 165के अंतर्गत स्थापित किया गया है। यह एक संवैधानिक पद है, जिसके माध्यम से प्रत्येक राज्य को एक सर्वोच्च विधिक अधिकारी प्रदान किया गया है। महाधिवक्ता राज्य सरकार को विधिक एवं संवैधानिक मामलों में परामर्श देता है तथा राज्य सरकार की ओर से न्यायालयों में उसका प्रतिनिधित्व करता है।

संविधान केअनुच्छेद 165(1)के अनुसार प्रत्येक राज्य का राज्यपाल ऐसे व्यक्ति को महाधिवक्ता नियुक्त करेगा, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने की योग्यता रखता हो। इसी अनुच्छेद के अनुसार महाधिवक्ता राज्य सरकार को विधिक विषयों पर सलाह देता है तथा राज्यपाल द्वारा सौंपे गए अन्य कार्यों का निर्वहन करता है।

इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 177के अनुसार महाधिवक्ता को राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन तथा उसकी समितियों की कार्यवाही में भाग लेने और अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार प्राप्त है, किन्तु उन्हें मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं होता।

3.4.2 नियुक्ति एवं योग्यता

राज्य के महाधिवक्ता की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। यद्यपि संविधान नियुक्ति की विस्तृत प्रक्रिया का उल्लेख नहीं करता, परन्तु व्यवहार में राज्यपाल मुख्यमंत्री एवं मंत्रिपरिषद् की सलाह पर नियुक्ति करते हैं।

महाधिवक्ता बनने के लिए वही योग्यताएँ आवश्यक हैं, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिए संविधान केअनुच्छेद 217(2)में निर्धारित हैं।

इन योग्यताओं में शामिल हैं-

• भारत का नागरिक होना।

• भारत के किसी न्यायिक पद पर कम-से-कम दस वर्ष तक कार्य किया हो; अथवा

• किसी उच्च न्यायालय (या एक से अधिक उच्च न्यायालयों) में लगातार कम-से-कम दस वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

सामान्यतः इस पद पर संवैधानिक एवं प्रशासनिक विधि के अनुभवी वरिष्ठ अधिवक्ता की नियुक्ति की जाती है।

13.4.3 कार्यकाल एवं पदत्याग

संविधान में महाधिवक्ता के लिए कोई निश्चित कार्यकाल निर्धारित नहीं किया गया है।अनुच्छेद 165(3)के अनुसार वेराज्यपाल के प्रसादपर्यन्त (During the Pleasure of the Governor)अपने पद पर बने रहते हैं। महाधिवक्ता किसी भी समय राज्यपाल को संबोधित कर अपना त्यागपत्र दे सकते हैं। राज्यपाल भी उन्हें किसी भी समय पद से हटा सकते हैं। नई राज्य सरकार के गठन के बाद महाधिवक्ता द्वारा त्यागपत्र देना एक संवैधानिक परंपरा है, यद्यपि यह संवैधानिक बाध्यता नहीं है। महाधिवक्ता का पारिश्रमिक राज्यपाल द्वारा निर्धारित किया जाता है।

13.4.4 शक्तियाँ एवं कार्य

राज्य के महाधिवक्ता राज्य सरकार के प्रमुख विधिक सलाहकार होते हैं। उनके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

• राज्य सरकार को विधिक एवं संवैधानिक विषयों पर परामर्श देना।

• उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय तथा अन्य न्यायालयों में राज्य सरकार का प्रतिनिधित्व करना।

• राज्यपाल द्वारा सौंपे गए विधिक दायित्वों का निर्वहन करना।
• राज्य सरकार के विधेयकों, अध्यादेशों एवं नियमों की संवैधानिक वैधता पर सलाह देना।
• विभिन्न विभागों एवं मंत्रालयों को विधिक राय प्रदान करना।
• राज्य के महत्वपूर्ण संवैधानिक एवं प्रशासनिक मामलों में सरकार का मार्गदर्शन करना।
• न्यायालयों में राज्य के हितों की रक्षा करना।

इस प्रकार महाधिवक्ता राज्य शासन के विधिक संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

13.4.5 अधिकार, विशेषाधिकार एवं सीमाएँ

महाधिवक्ता को अपने संवैधानिक दायित्वों के निर्वहन के लिए कुछ अधिकार एवं विशेषाधिकार प्राप्त हैं।

अधिकार एवं विशेषाधिकार

• राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों तथा उनकी समितियों की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार (अनुच्छेद 177)।
• राज्य के सभी न्यायालयों में राज्य सरकार की ओर से उपस्थित होने का अधिकार।
• राज्य सरकार के आवश्यक अभिलेखों एवं दस्तावेजों का अध्ययन करने का अधिकार।
• राज्य सरकार के सर्वोच्च विधिक सलाहकार के रूप में कार्य करने का अधिकार।

सीमाएँ

• राज्य सरकार के विरुद्ध किसी मामले में वकालत नहीं कर सकते।
• हितों के टकराव वाले मामलों में निजी पक्ष का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते।
• विधानमंडल की कार्यवाही में मतदान नहीं कर सकते।
• मंत्री या मंत्रिपरिषद् के सदस्य नहीं होते।
• अपने पद से संबंधित गोपनीय सूचनाओं का दुरुपयोग नहीं कर सकते।

13.4.6 भारत के महान्यायवादी एवं राज्य के महाधिवक्ता में अंतर

आधार	**भारत के महान्यायवादी**	**राज्य के महाधिवक्ता**
संवैधानिक आधार	अनुच्छेद 76	अनुच्छेद 165
नियुक्ति	राष्ट्रपति द्वारा	राज्यपाल द्वारा

आधार	**भारत के महान्यायवादी**	**राज्य के महाधिवक्ता**
कार्यक्षेत्र	संपूर्ण भारत (केंद्र सरकार)	संबंधित राज्य
विधिक सलाह	भारत सरकार को	राज्य सरकार को
न्यायालयों में प्रतिनिधित्व	केंद्र सरकार की ओर से	राज्य सरकार की ओर से
विधानमंडल में भागीदारी	संसद में भाग ले सकते हैं (अनुच्छेद 88)	राज्य विधानमंडल में भाग ले सकते हैं (अनुच्छेद 177)
मतदान का अधिकार	नहीं	नहीं
कार्यकाल	राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त	राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त
पारिश्रमिक	राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित	राज्यपाल द्वारा निर्धारित

समानताएँ

• दोनों संवैधानिक पद हैं।

• दोनों अपने-अपने स्तर पर सरकार के सर्वोच्च विधिक सलाहकार हैं।

• दोनों को विधानमंडल की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है, परन्तु मतदान का अधिकार नहीं है।

• दोनों का कार्यकाल निश्चित नहीं होता तथा वे प्रसादपर्यन्त सिद्धांत के अधीन कार्य करते हैं।

• दोनों सरकार की ओर से न्यायालयों में प्रतिनिधित्व करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत के महान्यायवादी का संवैधानिक आधार किस अनुच्छेद में दिया गया है?
2. राज्य के महाधिवक्ता का प्रावधान संविधान के किस अनुच्छेद में किया गया है?
3. भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति कौन करता है?
4. राज्य के महाधिवक्ता की नियुक्ति किसके द्वारा की जाती है?
5. महान्यायवादी को संसद की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार किस अनुच्छेद के अंतर्गत प्राप्त है?
6. राज्य के महाधिवक्ता को राज्य विधानमंडल की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार किस अनुच्छेद के अंतर्गत प्राप्त है?
7. महान्यायवादी किस सरकार के सर्वोच्च विधिक अधिकारी होते हैं?
8. महाधिवक्ता किस सरकार के सर्वोच्च विधिक अधिकारी होते हैं?
9. क्या महान्यायवादी संसद में मतदान कर सकते हैं?
10. क्या महाधिवक्ता राज्य विधानमंडल में मतदान कर सकते हैं?

13.6 सारांश

इस इकाई में भारतीय संविधान द्वारा स्थापित दो महत्वपूर्ण संवैधानिक विधि अधिकारियों—भारत के महान्यायवादी तथा राज्य के महाधिवक्ता- का विस्तृत अध्ययन किया गया। संविधान केअनुच्छेद 76के अंतर्गत भारत के महान्यायवादी तथाअनुच्छेद 165के अंतर्गत राज्य के महाधिवक्ता के पद का प्रावधान किया गया है। महान्यायवादी केंद्र सरकार के तथा महाधिवक्ता राज्य सरकार के सर्वोच्च विधिक सलाहकार होते हैं। इनका प्रमुख दायित्व सरकार को संवैधानिक एवं विधिक विषयों पर परामर्श देना तथा न्यायालयों में सरकार का प्रतिनिधित्व करना है।

इकाई में महान्यायवादी के संवैधानिक आधार, नियुक्ति, योग्यता, कार्यकाल, शक्तियों, कार्यों, अधिकारों, विशेषाधिकारों एवं सीमाओं का अध्ययन किया गया। महान्यायवादी की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा ऐसे व्यक्ति की जाती है जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बनने की योग्यता रखता हो। उसका कार्यकाल निश्चित नहीं होता तथा वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर बना रहता है। उसे संसद की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है, किन्तु मतदान का अधिकार नहीं होता। वह भारत सरकार का सर्वोच्च विधिक अधिकारी होने के नाते सरकार को विधिक परामर्श देता है, न्यायालयों में उसका पक्ष प्रस्तुत करता है तथा संवैधानिक विषयों पर मार्गदर्शन प्रदान करता है।

इसी प्रकार राज्य के महाधिवक्ता के संबंध में यह स्पष्ट किया गया कि उसकी नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है तथा उसके लिए उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने की योग्यता आवश्यक होती है। वह राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त पद पर बना रहता है और राज्य सरकार को विधिक एवं संवैधानिक मामलों में परामर्श देता है। महाधिवक्ता को राज्य विधानमंडल की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है, परन्तु मतदान का अधिकार नहीं होता। वह उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय तथा अन्य न्यायिक मंचों पर राज्य सरकार का प्रतिनिधित्व करता है और राज्य की विधिक नीतियों एवं निर्णयों को संवैधानिक कसौटी पर परखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इकाई में महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया, जिससे स्पष्ट होता है कि दोनों संवैधानिक पदों की प्रकृति एवं उद्देश्य समान हैं, किन्तु उनके अधिकार-क्षेत्र, नियुक्ति प्राधिकारी तथा कार्यक्षेत्र में अंतर है। महान्यायवादी केंद्र सरकार से संबंधित विषयों का विधिक प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि महाधिवक्ता राज्य सरकार से संबंधित विषयों का। दोनों ही अपने-अपने स्तर पर सरकार के सर्वोच्च विधिक सलाहकार होते हैं, दोनों का कार्यकाल निश्चित नहीं होता तथा दोनों को विधानमंडल की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है, परंतु मतदान का अधिकार नहीं है।

अंततः यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत के महान्यायवादी और राज्य के महाधिवक्ता भारतीय संघीय शासन व्यवस्था में विधि के शासन (Rule of Law), संवैधानिक सर्वोच्चता, उत्तरदायी शासन तथा न्यायपालिका और कार्यपालिका के मध्य समन्वय बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनकी निष्पक्ष विधिक सलाह एवं प्रभावी प्रतिनिधित्व लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

13.7 शब्दावली

1. **भारत के महान्यायवादी**– भारत सरकार के सर्वोच्च विधिक अधिकारी, जिनका प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 76 में किया गया है।
2. **राज्य के महाधिवक्ता**– राज्य सरकार के सर्वोच्च विधिक अधिकारी, जिनका प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 165 में किया गया है।
3. **विधि का शासन**- ऐसी व्यवस्था जिसमें शासन संविधान एवं कानून के अनुसार संचालित होता है।
4. **संवैधानिक आधार**- संविधान का वह प्रावधान जिसके आधार पर किसी पद या संस्था की स्थापना की जाती है।
5. **विधिक परामर्श**- सरकार को संवैधानिक एवं विधिक विषयों पर विशेषज्ञ राय प्रदान करना।

6. **प्रसादपर्यन्त**- वह व्यवस्था जिसमें पदाधिकारी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी के विश्वास तक पद पर बना रहता है।
7. **प्रतिष्ठित विधिवेत्ता**- विधि के क्षेत्र में विशेष ज्ञान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति।
8. **विधिक प्रतिनिधित्व** – न्यायालय में सरकार की ओर से उसका पक्ष प्रस्तुत करना।
9. **हितों का टकराव**– ऐसी स्थिति जिसमें निजी हित सरकारी दायित्वों को प्रभावित कर सकते हों।
10. **पारिश्रमिक**– पद के बदले प्राप्त वेतन, भत्ते एवं अन्य सुविधाएँ।

13.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. अनुच्छेद 76 2. अनुच्छेद 165 3. राष्ट्रपति 4. राज्यपाल 5. अनुच्छेद 88
6. अनुच्छेद 177 7. भारत सरकार (केंद्र सरकार) 8. राज्य सरकार 9. नहीं 10. नहीं

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान, अनुच्छेद 76 एवं अनुच्छेद 88।
2. Basu, D. D. (2023). Introduction to the Constitution of India. LexisNexis.
3. Jain, M. P. (2022). Indian Constitutional Law. LexisNexis.
4. Kashyap, Subhash C. (2021). Our Constitution. National Book Trust, India.
5. लक्ष्मीकांत, एम. (2024). भारतीय राजव्यवस्था (7वाँ संस्करण). मैकग्रा हिल एजुकेशन.

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के महान्यायवादी के संवैधानिक आधार, नियुक्ति, योग्यता, कार्यकाल, शक्तियों एवं कार्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. राज्य के महाधिवक्ता के संवैधानिक आधार, नियुक्ति, योग्यता, कार्यकाल, शक्तियों एवं कार्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. भारत के महान्यायवादी एवं राज्य के महाधिवक्ता के अधिकार, विशेषाधिकार एवं सीमाओं का समालोचनात्मक विवेचन कीजिए।
4. भारत के महान्यायवादी एवं राज्य के महाधिवक्ता का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
5. भारतीय संघीय शासन व्यवस्था में महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता की भूमिका एवं महत्व का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई -14 सूचना आयोग एवं सतर्कता आयोग

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 सूचना आयोग की संकल्पना एवं आवश्यकता
14.3 सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 : पृष्ठभूमि एवं विकास
14.4 केंद्रीय सूचना आयोग : गठन, संरचना एवं कार्य
14.5 राज्य सूचना आयोग : गठन एवं कार्य
14.6 सूचना आयोग की शक्तियाँ एवं भूमिका
14.7 पारदर्शिता एवं जवाबदेही में सूचना आयोग का महत्व
14.8 सूचना आयोग की चुनौतियाँ
14.9 केंद्रीय सतर्कता आयोग : अवधारणा
14.10 केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना एवं विकास
14.11 सतर्कता आयोग की संरचना
14.12 सतर्कता आयोग के कार्य एवं शक्तियाँ
14.13 भ्रष्टाचार नियंत्रण एवं सुशासन में सतर्कता आयोग की भूमिका
14.14 सूचना आयोग एवं सतर्कता आयोग : तुलनात्मक अध्ययन
14.15 सारांश
14.16 शब्दावली
14.17 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
14.18 संदर्भ ग्रंथ सूची
14.19 निबंधात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

आधुनिक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का मूल आधार जनसहभागिता, विधि का शासन, उत्तरदायित्व, पारदर्शिता तथा प्रशासनिक ईमानदारी है। लोकतंत्र केवल प्रतिनिधियों के निर्वाचन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शासन-प्रशासन किस सीमा तक नागरिकों के प्रति उत्तरदायी, पारदर्शी तथा जनोन्मुख है। वर्तमान समय में सुशासन (Good Governance) की अवधारणा ने विश्वभर में विशेष महत्व प्राप्त किया है, जिसके प्रमुख तत्वों में पारदर्शिता, जवाबदेही, नागरिक सहभागिता, भ्रष्टाचार पर नियंत्रण, प्रभावी प्रशासन तथा सूचना तक नागरिकों की पहुँच सम्मिलित हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सूचना आयोग तथा सतर्कता आयोग जैसी संस्थाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं का निरंतर विकास हुआ, परन्तु प्रशासनिक गोपनीयता, लालफीताशाही, भ्रष्टाचार तथा सूचना तक सीमित पहुँच जैसी समस्याएँ समय-समय पर शासन व्यवस्था के समक्ष चुनौती के रूप में उभरती रहीं। लंबे समय तक सरकारी अभिलेखों एवं निर्णयों पर गोपनीयता का वर्चस्व बना रहा, जिसके कारण नागरिकों की प्रशासनिक निर्णय-प्रक्रिया में प्रभावी भागीदारी सीमित रही। दूसरी ओर, सार्वजनिक जीवन में बढ़ते भ्रष्टाचार तथा प्रशासनिक अनियमितताओं ने शासन की विश्वसनीयता को भी प्रभावित किया। इन परिस्थितियों में शासन को अधिक पारदर्शी, उत्तरदायी तथा नैतिक बनाने के लिए संस्थागत सुधारों की आवश्यकता अनुभव की गई।

इसी पृष्ठभूमि में सूचना के अधिकार की अवधारणा ने लोकतांत्रिक अधिकार के रूप में विकास किया। सूचना तक पहुँच को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अभिन्न अंग माना गया और अंततः सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के माध्यम से प्रत्येक नागरिक को सार्वजनिक प्राधिकरणों से सूचना प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार प्रदान किया गया। इस अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए केंद्रीय सूचना आयोग तथा राज्य सूचना आयोगों की स्थापना की गई। ये आयोग न केवल सूचना उपलब्ध कराने की प्रक्रिया को सुनिश्चित करते हैं, बल्कि सूचना के अधिकार के उल्लंघन से संबंधित अपीलों एवं शिकायतों का निस्तारण करते हुए प्रशासन में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व को भी सुदृढ़ बनाते हैं। सूचना आयोगों की कार्यप्रणाली ने शासन में खुलापन तथा नागरिकों के विश्वास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

दूसरी ओर, भ्रष्टाचार प्रशासनिक दक्षता, आर्थिक विकास तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के समक्ष एक गंभीर चुनौती है। भ्रष्टाचार के कारण सार्वजनिक संसाधनों का दुरुपयोग, निर्णय-प्रक्रिया में पक्षपात, विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में बाधा तथा नागरिकों के विश्वास में कमी उत्पन्न होती है। इसलिए स्वतंत्र भारत में समय-समय पर विभिन्न समितियों एवं आयोगों ने भ्रष्टाचार-निरोधी तंत्र को सुदृढ़ बनाने की अनुशंसा की। इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप केंद्रीय सतर्कता आयोग का गठन किया गया, जिसे आगे चलकर वैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। यह आयोग केंद्र सरकार के विभागों, सार्वजनिक उपक्रमों तथा अन्य संस्थाओं में सतर्कता प्रशासन को सुदृढ़ करने, भ्रष्टाचार संबंधी मामलों की निगरानी करने तथा निवारक एवं दंडात्मक सतर्कता उपायों के संबंध में परामर्श देने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

सूचना आयोग और सतर्कता आयोग, यद्यपि अपने स्वरूप एवं अधिकार-क्षेत्र की दृष्टि से भिन्न संस्थाएँ हैं, तथापि दोनों का अंतिम उद्देश्य लोकतांत्रिक शासन को अधिक प्रभावी, पारदर्शी, उत्तरदायी तथा भ्रष्टाचार-मुक्त बनाना है। सूचना आयोग नागरिकों के सूचना के अधिकार की रक्षा करते हुए शासन में खुलापन एवं जनसहभागिता को प्रोत्साहित करता है, जबकि सतर्कता आयोग प्रशासनिक नैतिकता, सत्यनिष्ठा तथा भ्रष्टाचार-नियंत्रण के माध्यम से सुशासन को सुदृढ़ बनाता है। इस प्रकार दोनों संस्थाएँ लोकतांत्रिक प्रशासन की पूरक संस्थाओं के रूप में कार्य करती हैं।

प्रस्तुत इकाई में सूचना आयोग एवं सतर्कता आयोग के संगठनात्मक, विधिक तथा कार्यात्मक स्वरूप का समग्र अध्ययन किया गया है। इसमें सूचना आयोग की अवधारणा, सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की पृष्ठभूमि, केंद्रीय एवं राज्य सूचना आयोगों की संरचना, शक्तियाँ एवं कार्य, पारदर्शिता एवं जवाबदेही में उनकी भूमिका तथा समकालीन चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना, विकास, संरचना, शक्तियों एवं कार्यों के साथ-साथ भ्रष्टाचार नियंत्रण एवं सुशासन में उसकी भूमिका का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अंत में सूचना आयोग एवं सतर्कता आयोग का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में दोनों संस्थाओं की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता का मूल्यांकन किया गया है।

यह इकाई विद्यार्थियों को न केवल भारतीय प्रशासनिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली का सम्यक् ज्ञान प्रदान करेगी, बल्कि लोकतांत्रिक शासन, नागरिक अधिकारों, प्रशासनिक उत्तरदायित्व तथा सुशासन की समकालीन अवधारणाओं को समझने में भी सहायक सिद्ध होगी। साथ ही यह सामग्री विश्वविद्यालयकी परीक्षाओं, शोधार्थियों तथा लोक सेवा आयोग एवं अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं की दृष्टि से भी समान रूप से उपयोगी होगी।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

1. सूचना आयोग तथा केंद्रीय सतर्कता आयोग की अवधारणा, ऐतिहासिक विकास, उद्देश्य, वैधानिक स्वरूप एवं लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में उनकी आवश्यकता को समझ सकेंगे।
2. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 तथा केंद्रीय एवं राज्य सूचना आयोग एवं केंद्रीय सतर्कता आयोग की संरचना, गठन, नियुक्ति प्रक्रिया, शक्तियों, कार्यों एवं कार्यप्रणाली का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. सूचना आयोग एवं केंद्रीय सतर्कता आयोग की पारदर्शिता, प्रशासनिक जवाबदेही, भ्रष्टाचार नियंत्रण, प्रशासनिक नैतिकता तथा सुशासन को सुदृढ़ बनाने में भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।
4. सूचना आयोग एवं केंद्रीय सतर्कता आयोग के उद्देश्य, कार्यक्षेत्र, अधिकारों, कार्यप्रणाली तथा प्रशासनिक महत्व का तुलनात्मक एवं समालोचनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
5. सूचना आयोग एवं केंद्रीय सतर्कता आयोग के समक्ष विद्यमान चुनौतियों, सीमाओं तथा समकालीन प्रशासनिक सुधारों एवं लोकतांत्रिक शासन के संदर्भ में उनकी प्रभावशीलता एवं प्रासंगिकता का विवेचन कर सकेंगे।

14.2 सूचना आयोग की संकल्पना एवं आवश्यकता

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में शासन की वैधता केवल चुनावों के माध्यम से सरकार के गठन तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह इस बात पर भी निर्भर करती है कि शासन-प्रशासन किस सीमा तक नागरिकों के प्रति उत्तरदायी, पारदर्शी तथा जनोन्मुख है। लोकतंत्र में नागरिकों को शासन से संबंधित सूचनाओं तक पहुँच प्राप्त होना उनकी प्रभावी भागीदारी तथा अधिकारों की रक्षा के लिए अनिवार्य माना जाता है। इसी कारण आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में**सूचना के अधिकार**को सुशासन का एक महत्वपूर्ण आधार माना गया है। इस अधिकार के प्रभावी क्रियान्वयन एवं संरक्षण के लिए सूचना आयोग की स्थापना की गई।

सूचना आयोग एक स्वतंत्र वैधानिक एवं अर्ध-न्यायिक संस्था है, जिसका गठन सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अंतर्गत किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य नागरिकों के सूचना प्राप्त करने के अधिकार की रक्षा करना, लोक प्राधिकारियों द्वारा अधिनियम के प्रावधानों का पालन सुनिश्चित करना तथा सूचना से संबंधित विवादों का निष्पक्ष एवं प्रभावी समाधान करना है। जब किसी नागरिक को लोक प्राधिकारी द्वारा सूचना देने से मना कर दिया जाता है, निर्धारित समय-सीमा में

सूचना उपलब्ध नहीं कराई जाती अथवा अपूर्ण, भ्रामक या गलत सूचना प्रदान की जाती है, तब सूचना आयोग अपीलीय एवं शिकायत निवारण संस्था के रूप में हस्तक्षेप करता है।

सूचना आयोग की अवधारणा इस सिद्धांत पर आधारित है कि सरकारी सूचना जनता की संपत्ति है तथा शासन में गोपनीयता अपवाद (Exception) होनी चाहिए, सामान्य नियम **नहीं।**लोकतांत्रिक शासन में सूचना तक नागरिकों की पहुँच प्रशासनिक पारदर्शिता, उत्तरदायित्व तथा जनविश्वास को सुदृढ़ करती है। इसी कारण सूचना आयोग को शासन और नागरिकों के मध्य एक महत्वपूर्ण संस्थागत सेतु माना जाता है।

सूचना आयोग की आवश्यकता आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था की जटिलता तथा शासन में बढ़ती पारदर्शिता की अपेक्षाओं के कारण और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन में लंबे समय तक गोपनीयता की प्रवृत्ति बनी रही, जिसके कारण नागरिकों के लिए सरकारी निर्णयों, योजनाओं तथा प्रशासनिक प्रक्रियाओं की जानकारी प्राप्त करना कठिन था। इससे प्रशासनिक उत्तरदायित्व कमजोर हुआ तथा भ्रष्टाचार एवं अनियमितताओं को बढ़ावा मिला। इन परिस्थितियों में ऐसी स्वतंत्र संस्था की आवश्यकता अनुभव की गई, जो नागरिकों के सूचना संबंधी अधिकारों की रक्षा करने के साथ-साथ प्रशासन को अधिक उत्तरदायी बनाए।

सूचना आयोग की आवश्यकता का एक प्रमुख कारण शासन में पारदर्शिता स्थापित करना है। पारदर्शिता से प्रशासनिक निर्णयों एवं कार्यों में खुलापन आता है तथा नागरिकों को यह जानने का अवसर मिलता है कि सार्वजनिक संसाधनों का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है। इससे शासन के प्रति जनता का विश्वास बढ़ता है तथा लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूती मिलती है।

सूचना आयोग की स्थापना का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रशासनिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना है। जब लोक सेवकों को यह ज्ञात होता है कि उनके निर्णयों एवं कार्यों की जानकारी नागरिक प्राप्त कर सकते हैं, तब वे अधिक सावधानी, निष्पक्षता तथा उत्तरदायित्व के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं। परिणामस्वरूप प्रशासनिक कार्यप्रणाली अधिक प्रभावी एवं जनोन्मुख बनती है।

सूचना आयोगभ्रष्टाचार नियंत्रणमें भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सूचना की उपलब्धता सार्वजनिक व्यय, सरकारी योजनाओं, निविदाओं, नियुक्तियों तथा विकास कार्यक्रमों में पारदर्शिता सुनिश्चित करती है, जिससे अनियमितताओं एवं भ्रष्टाचार की संभावनाओं में कमी आती है। नागरिक सूचना प्राप्त कर प्रशासनिक कार्यों की निगरानी कर सकते हैं तथा आवश्यक होने पर संबंधित अधिकारियों को उत्तरदायी बना सकते हैं।

इसके अतिरिक्त सूचना आयोग नागरिकों के वैधानिक अधिकारों के संरक्षणका भी महत्वपूर्ण माध्यम है। यह सुनिश्चित करता है कि किसी भी नागरिक को बिना वैधानिक आधार के सूचना से वंचित न किया जाए तथा प्रत्येक व्यक्ति को अधिनियम के अनुरूप न्याय प्राप्त हो। साथ ही यह संस्था शासन एवं नागरिकों के मध्य विश्वास, सहभागिता तथा संवाद को भी सुदृढ़ करती है।

इस प्रकार सूचना आयोग केवल सूचना उपलब्ध कराने वाली संस्था नहीं है, बल्कि यह लोकतांत्रिक शासन में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, नागरिक सहभागिता, सुशासन तथा विधि के शासन को सुदृढ़ करने वाला एक महत्वपूर्ण संस्थागत तंत्र है। सूचना के अधिकार की प्रभावी सुरक्षा तथा लोकतांत्रिक प्रशासन की सफलता में इसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है।

14.3 सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 : पृष्ठभूमि एवं विकास

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में नागरिकों की प्रभावी भागीदारी तभी संभव है जब उन्हें शासन-प्रशासन से संबंधित सूचनाओं तक समयबद्ध एवं सहज पहुँच प्राप्त हो। सूचना तक पहुँच नागरिकों को शासन की कार्यप्रणाली को समझने, सार्वजनिक नीतियों का मूल्यांकन करने तथा सरकार को उत्तरदायी बनाने का अवसर प्रदान करती है। इसी कारण आधुनिक लोकतंत्रों में सूचना के अधिकार को सुशासन (Good Governance) तथा उत्तरदायी प्रशासन का आधार माना जाता है। भारत में भी सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 का निर्माण एक दीर्घ सामाजिक संघर्ष, न्यायिक व्याख्याओं, प्रशासनिक सुधारों तथा जन आंदोलनों का परिणाम है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था पर औपनिवेशिक शासन की गोपनीयता (Official Secrecy) की परंपरा का गहरा प्रभाव बना रहा। सरकारी अभिलेखों एवं निर्णयों को सामान्यतः गोपनीय माना जाता था तथा नागरिकों के लिए सरकारी सूचनाएँ प्राप्त करना अत्यंत कठिन था।**शासकीय गोपनीयता अधिनियम, 1923 (Official Secrets Act, 1923)**ने इस गोपनीयता को कानूनी संरक्षण प्रदान किया। परिणामस्वरूप शासन में पारदर्शिता का अभाव रहा तथा नागरिकों की प्रशासनिक निर्णयों तक पहुँच सीमित बनी रही।

समय के साथ लोकतांत्रिक शासन की अवधारणा विकसित हुई और यह अनुभव किया गया कि लोकतंत्र केवल चुनावों तक सीमित नहीं है, बल्कि नागरिकों को शासन संबंधी सूचनाएँ उपलब्ध कराना भी राज्य का दायित्व है। भारतीय संविधान के**अनुच्छेद 19(1)(क)**के अंतर्गत प्रदत्त**वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता**की व्यापक व्याख्या करते हुए उच्चतम न्यायालय ने अनेक निर्णयों में यह स्पष्ट किया कि**"जानने का अधिकार (Right to Know)"**अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

का अभिन्न अंग है। इस न्यायिक दृष्टिकोण ने सूचना के अधिकार की संवैधानिक आधारशिला को मजबूत किया।

सूचना के अधिकार की स्थापना में न्यायपालिका की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही।**State of Uttar Pradesh v. Raj Narain**में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता को शासन संबंधी जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है क्योंकि सरकार अंततः जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। इसके पश्चात**S.P. Gupta v. Union of India**में न्यायालय ने शासन में खुलेपन (Open Government) को लोकतंत्र की आवश्यक शर्त माना तथा सरकारी गोपनीयता के स्थान पर पारदर्शिता को प्राथमिकता देने पर बल दिया। इन निर्णयों ने सूचना के अधिकार के विकास को महत्वपूर्ण दिशा प्रदान की।

1990 के दशक में सूचना के अधिकार को जन आंदोलन का स्वरूप प्राप्त हुआ। विशेष रूप सेमज़दूर किसान शक्ति संगठन (MKSS) ने राजस्थान में मजदूरों के वेतन, विकास कार्यों तथा सरकारी व्यय से संबंधित अभिलेखों को सार्वजनिक करने की मांग करते हुए व्यापक अभियान चलाया। इस आंदोलन ने यह सिद्ध किया कि सूचना तक पहुँच केवल लोकतांत्रिक अधिकार ही नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, पारदर्शिता तथा भ्रष्टाचार-नियंत्रण का प्रभावी साधन भी है। इस जनदबाव के परिणामस्वरूप सूचना के अधिकार की मांग राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक रूप से स्वीकार की जाने लगी।

प्रशासनिक सुधारों से संबंधित विभिन्न समितियों एवं आयोगों ने भी सूचना के अधिकार की आवश्यकता पर बल दिया।**प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग**तथा बाद में**द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग**ने शासन में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व एवं नागरिक सहभागिता को सुदृढ़ करने के लिए सूचना तक नागरिकों की पहुँच को आवश्यक बताया। इन अनुशंसाओं ने सूचना संबंधी कानून के निर्माण के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया।

राष्ट्रीय स्तर पर कानून बनने से पूर्व अनेक राज्यों ने सूचना के अधिकार से संबंधित अपने-अपने अधिनियम बनाए।तमिलनाडुने 1997 में, गोवाने 1997 में, राजस्थान, दिल्लीतथामहाराष्ट्रसहित कई राज्यों ने सूचना संबंधी कानून लागू किए। इन राज्य स्तरीय अनुभवों ने राष्ट्रीय कानून के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण आधार प्रदान किया।

वर्ष 2002 में केंद्र सरकार ने **Freedom of Information Act, 2002**पारित किया, किंतु इसकी अनेक व्यावहारिक सीमाओं के कारण इसे प्रभावी रूप से लागू नहीं किया जा सका। इसमें सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत कमजोर थी तथा नागरिकों के अधिकारों की पर्याप्त सुरक्षा

का अभाव था। परिणामस्वरूप एक अधिक व्यापक, प्रभावी एवं नागरिक-अनुकूल कानून की आवश्यकता अनुभव की गई।

इन्हीं परिस्थितियों में भारतीय संसद ने**सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (Right to Information Act, 2005)**पारित किया। इस अधिनियम को**15 जून, 2005**को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई तथा**12 अक्टूबर, 2005**से इसे संपूर्ण भारत (उस समय जम्मू-कश्मीर को छोड़कर) में लागू किया गया। इस अधिनियम ने प्रत्येक भारतीय नागरिक को लोक प्राधिकारियों से सूचना प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार प्रदान किया तथा सूचना उपलब्ध कराने के लिए स्पष्ट समय-सीमा, अपीलीय व्यवस्था तथा स्वतंत्र सूचना आयोगों की स्थापना का प्रावधान किया।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 ने भारतीय प्रशासनिक संस्कृति में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया। इस अधिनियम ने गोपनीयता-आधारित प्रशासन के स्थान पर पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व पर आधारित प्रशासनिक व्यवस्था को प्रोत्साहित किया। इसके माध्यम से सरकारी विभागों पर अभिलेखों के सुव्यवस्थित रख-रखाव, स्वप्रेरित सूचना प्रकटीकरण (Proactive Disclosure), लोक सूचना अधिकारियों की नियुक्ति तथा समयबद्ध सूचना उपलब्ध कराने का वैधानिक दायित्व निर्धारित किया गया।

वर्ष 2019 में अधिनियम में संशोधन करते हुए**सूचना का अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2019**पारित किया गया। इस संशोधन के माध्यम से केंद्रीय एवं राज्य सूचना आयुक्तों के कार्यकाल तथा सेवा-शर्तों से संबंधित कुछ प्रावधानों में परिवर्तन किया गया। इन संशोधनों को लेकर प्रशासनिक दक्षता एवं सूचना आयोगों की स्वतंत्रता के संबंध में व्यापक सार्वजनिक एवं अकादमिक विमर्श भी हुआ।

इस प्रकार सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 का विकास एक क्रमिक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें न्यायपालिका, नागरिक समाज, जन आंदोलनों, प्रशासनिक सुधार आयोगों तथा लोकतांत्रिक मूल्यों ने समान रूप से महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह अधिनियम भारतीय लोकतंत्र में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, नागरिक सहभागिता तथा सुशासन को सुदृढ़ करने वाला एक मील का पत्थर सिद्ध हुआहै।

14.4 केंद्रीय सूचना आयोग : गठन, संरचना एवं कार्य

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रभावी क्रियान्वयन तथा नागरिकों के सूचना प्राप्त करने के अधिकार की रक्षा के उद्देश्य से**केंद्रीय सूचना आयोग (Central Information Commission-CIC)**की स्थापना की गई। यह एक स्वतंत्र वैधानिक एवं अर्ध-न्यायिक संस्था है,

जिसका गठन अधिनियम की धारा 12 के अंतर्गत किया गया है। आयोग का प्रमुख दायित्व केंद्र सरकार के अधीन आने वाले लोक प्राधिकारियों द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम के प्रावधानों का पालन सुनिश्चित करना तथा सूचना संबंधी अपीलों एवं शिकायतों का निष्पक्ष निस्तारण करना है।

14.4.1 केंद्रीय सूचना आयोग का गठन

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 12 के अनुसार केंद्र सरकार राजपत्र (Gazette) में अधिसूचना जारी कर केंद्रीय सूचना आयोग की स्थापना करती है। आयोग का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है, जबकि आवश्यकता होने पर केंद्र सरकार की पूर्व स्वीकृति से देश के अन्य स्थानों पर भी इसके कार्यालय स्थापित किए जा सकते हैं।

आयोग एक स्वतंत्र संस्था के रूप में कार्य करता है तथा अपने वैधानिक दायित्वों के निर्वहन में किसी अन्य प्रशासनिक प्राधिकारी के नियंत्रण में नहीं होता। इसका उद्देश्य सूचना के अधिकार से संबंधित मामलों का निष्पक्ष एवं प्रभावी निस्तारण करना तथा प्रशासन में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व को बढ़ावा देना है।

14.4.2 केंद्रीय सूचना आयोग की संरचना

केंद्रीय सूचना आयोग में—

एक मुख्य सूचना आयुक्त तथा आवश्यकतानुसार अधिकतमदस सूचना आयुक्त नियुक्त किए जा सकते हैं।

आयोग की संरचना ऐसी बनाई गई है कि विभिन्न विषयों एवं प्रशासनिक क्षेत्रों के विशेषज्ञ व्यक्तियों का अनुभव आयोग के कार्यों में उपयोग किया जा सके।

मुख्य सूचना आयुक्त तथा सूचना आयुक्त ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं जिन्हें विधि, प्रशासन, प्रबंधन, पत्रकारिता, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, सामाजिक सेवा, जनसंचार, शासन अथवा लोक प्रशासन जैसे क्षेत्रों का व्यापक ज्ञान एवं अनुभव हो।

14.4.3 नियुक्ति प्रक्रिया

मुख्य सूचना आयुक्त तथा सूचना आयुक्तों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति यह नियुक्ति एक चयन समिति की अनुशंसा पर करते हैं।

चयन समिति में निम्नलिखित सदस्य होते हैं—

1. प्रधानमंत्री – अध्यक्ष
2. लोकसभा में विपक्ष के नेता (या सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता)
3. प्रधानमंत्री द्वारा नामित एक केंद्रीय मंत्रिमंडल का मंत्री

यह व्यवस्था आयोग की नियुक्तियों में निष्पक्षता एवं संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती है।

14.4.4 कार्यकाल एवं सेवा-शर्तें

सूचना का अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2019 के अनुसार मुख्य सूचना आयुक्त एवं सूचना आयुक्तों का कार्यकाल तथा सेवा-शर्तें केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित नियमों के अनुसार निर्धारित की जाती हैं।

वे अपने पद पर रहते हुए किसी अन्य लाभ के पद (Office of Profit) पर आसीन नहीं हो सकते तथा उन्हें अपने दायित्वों का निष्पक्ष एवं स्वतंत्र रूप से निर्वहन करना होता है।

14.4.5 केंद्रीय सूचना आयोग के कार्य

केंद्रीय सूचना आयोग सूचना का अधिकार अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु अनेक महत्वपूर्ण कार्य करता है, जिनमें प्रमुख हैं—

(1) द्वितीय अपीलों का निस्तारण

यदि किसी आवेदक को प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के निर्णय से संतोष नहीं होता अथवा निर्धारित समय में निर्णय प्राप्त नहीं होता, तो वह केंद्रीय सूचना आयोग के समक्ष द्वितीय अपील प्रस्तुत कर सकता है। आयोग मामले की सुनवाई कर अंतिम निर्णय देता है।

(2) शिकायतों की सुनवाई

यदि किसी नागरिक को सूचना आवेदन स्वीकार करने से मना किया जाता है, लोक सूचना अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया हो, समय पर सूचना उपलब्ध न कराई जाए अथवा अनुचित शुल्क की मांग की जाए, तो आयोग शिकायत की सुनवाई करता है।

(3) जाँच करना

आयोग को सूचना संबंधी मामलों में आवश्यक जाँच करने तथा अभिलेखों का निरीक्षण करने का अधिकार प्राप्त है। कोई भी लोक प्राधिकारी आयोग से अभिलेख छिपा नहीं सकता।

(4) निर्देश जारी करना

आयोग संबंधित लोक प्राधिकारी को सूचना उपलब्ध कराने, अभिलेखों के समुचित रख-रखाव, लोक सूचना अधिकारी की नियुक्ति अथवा अधिनियम के पालन हेतु आवश्यक निर्देश जारी कर सकता है।

(5) दण्ड अधिरोपित करना

यदि लोक सूचना अधिकारी बिना उचित कारण सूचना देने से इंकार करता है, अनावश्यक विलंब करता है अथवा जानबूझकर गलत या भ्रामक सूचना देता है, तो आयोग अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार आर्थिक दण्ड अधिरोपित कर सकता है।

(6) क्षतिपूर्ति प्रदान करना

यदि सूचना न मिलने के कारण किसी आवेदक को हानि हुई हो, तो आयोग संबंधित लोक प्राधिकारी को क्षतिपूर्ति प्रदान करने का निर्देश दे सकता है।

(7) वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना

केंद्रीय सूचना आयोग प्रतिवर्ष सूचना का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन संबंधी अपनी वार्षिक रिपोर्ट केंद्र सरकार को प्रस्तुत करता है, जिसे संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाता है।

14.5 राज्य सूचना आयोग : गठन एवं कार्य

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 केवल केंद्र सरकार तक सीमित नहीं है, बल्कि राज्यों के लोक प्राधिकारियों पर भी समान रूप से लागू होता है। इसलिए प्रत्येक राज्य में सूचना के अधिकार के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए राज्य सूचना आयोग की स्थापना का प्रावधान किया गया है। यह आयोग राज्य सरकार के अधीन आने वाले विभागों, निगमों, स्थानीय निकायों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं से संबंधित सूचना विवादों का निस्तारण करता है।

14.5.1 राज्य सूचना आयोग का गठन

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 15 के अनुसार प्रत्येक राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना जारी कर राज्य सूचना आयोग की स्थापना करती है। आयोग का मुख्यालय राज्य सरकार द्वारा निर्धारित स्थान पर स्थापित किया जाता है तथा आवश्यकता के अनुसार अन्य क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित किए जा सकते हैं।

राज्य सूचना आयोग स्वतंत्र एवं निष्पक्ष संस्था के रूप में कार्य करता है तथा राज्य स्तर पर सूचना के अधिकार की रक्षा करता है।

14.5.2 राज्य सूचना आयोग की संरचना

राज्य सूचना आयोग में—

- एक राज्य मुख्य सूचना आयुक्त तथा
- आवश्यकतानुसार अधिकतम दस राज्य सूचना आयुक्त नियुक्त किए जा सकते हैं।

इनकी नियुक्ति ऐसे व्यक्तियों में से की जाती है जिन्हें लोक प्रशासन, विधि, पत्रकारिता, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, प्रबंधन, सामाजिक सेवा अथवा शासन के क्षेत्र में व्यापक अनुभव प्राप्त हो।

14.5.3 नियुक्ति प्रक्रिया

राज्य मुख्य सूचना आयुक्त एवं राज्य सूचना आयुक्तों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है।
इसके लिए गठित चयन समिति में निम्न सदस्य होते हैं—

1. मुख्यमंत्री – अध्यक्ष
2. विधानसभा में विपक्ष के नेता
3. मुख्यमंत्री द्वारा नामित मंत्रिपरिषद का एक मंत्री

14.5.4 राज्य सूचना आयोग के कार्य

राज्य सूचना आयोग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

(1) द्वितीय अपीलों का निस्तारण

राज्य के लोक प्राधिकारियों से संबंधित मामलों में प्रथम अपील के पश्चात उत्पन्न द्वितीय अपीलों का अंतिम निर्णय देना।

(2) शिकायतों की सुनवाई

सूचना उपलब्ध न कराए जाने, आवेदन स्वीकार न करने, अनुचित शुल्क वसूलने अथवा अन्य शिकायतों की सुनवाई करना।

(3) जाँच एवं निरीक्षण

आवश्यक होने पर संबंधित विभागों के अभिलेखों का निरीक्षण करना तथा सूचना से जुड़े मामलों की जाँच करना।

(4) सूचना उपलब्ध कराने के निर्देश देना

राज्य के लोक प्राधिकारियों को अधिनियम के अनुरूप सूचना उपलब्ध कराने तथा अभिलेखों के समुचित प्रबंधन के निर्देश देना।

(5) दण्ड एवं अनुशासनात्मक कार्रवाई की संस्तुति

जहाँ आवश्यक हो, लोक सूचना अधिकारी पर आर्थिक दण्ड अधिरोपित करना तथा संबंधित प्राधिकारी को अनुशासनात्मक कार्रवाई की संस्तुति करना।

(6) वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना

राज्य सूचना आयोग प्रतिवर्ष अपनी वार्षिक रिपोर्ट राज्य सरकार को प्रस्तुत करता है, जिसे राज्य विधानमंडल के समक्ष रखा जाता है।

(7) सूचना के अधिकार को प्रोत्साहित करना

राज्य स्तर पर सूचना के अधिकार के प्रति जन-जागरूकता बढ़ाना, लोक प्राधिकारियों को अधिनियम के पालन के लिए प्रेरित करना तथा प्रशासनिक पारदर्शिता को सुदृढ़ बनाना।

4.6 सूचना आयोग की शक्तियाँ एवं भूमिका

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अंतर्गत सूचना आयोग को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, ताकि वह अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित कर सके तथा नागरिकों के सूचना प्राप्त करने के अधिकार की रक्षा कर सके। सूचना आयोग एक स्वतंत्र एवं अर्ध-न्यायिक संस्था के रूप में कार्य करता है, जिसे अपीलों एवं शिकायतों का निस्तारण करने, लोक प्राधिकारियों को आवश्यक निर्देश देने तथा अधिनियम के उल्लंघन की स्थिति में दण्डात्मक कार्रवाई करने का अधिकार प्राप्त है। इन शक्तियों का उद्देश्य प्रशासनिक पारदर्शिता, उत्तरदायित्व तथा सुशासन को सुदृढ़ बनाना है।

सूचना आयोग की प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) शिकायतों की जाँच करने की शक्ति

यदि किसी नागरिक को सूचना आवेदन प्रस्तुत करने से रोका जाता है, सूचना देने से मना किया जाता है, निर्धारित समय में सूचना उपलब्ध नहीं कराई जाती अथवा अनुचित शुल्क की मांग की जाती है, तो सूचना आयोग शिकायत प्राप्त कर उसकी जाँच कर सकता है।

(2) अपीलों का निस्तारण करने की शक्ति

सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत प्रथम अपील के पश्चात उत्पन्न द्वितीय अपीलों का अंतिम निर्णय सूचना आयोग द्वारा किया जाता है। आयोग मामले के तथ्यों का परीक्षण कर न्यायोचित निर्णय देता है।

(3) सिविल न्यायालय जैसी शक्तियाँ

जाँच के दौरान सूचना आयोग को सिविल न्यायालय के समान कुछ शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। वह किसी व्यक्ति को उपस्थित होने के लिए समन जारी कर सकता है, शपथ पर साक्ष्य ले सकता है, दस्तावेजों को प्रस्तुत करने का निर्देश दे सकता है तथा अभिलेखों का निरीक्षण कर सकता है।

(4) अभिलेखों के निरीक्षण की शक्ति

आयोग किसी भी लोक प्राधिकारी के अभिलेखों का निरीक्षण कर सकता है। कोई भी लोक प्राधिकारी आयोग से अभिलेखों को छिपाने का अधिकार नहीं रखता, यदि वे अधिनियम के अंतर्गत परीक्षण हेतु आवश्यक हों।

(5) सूचना उपलब्ध कराने के निर्देश देने की शक्ति

यदि आयोग यह पाता है कि सूचना अनुचित रूप से रोकी गई है, तो वह संबंधित लोक प्राधिकारी को निर्धारित अवधि के भीतर सूचना उपलब्ध कराने का निर्देश दे सकता है।

(6) दण्ड अधिरोपित करने की शक्ति

यदि लोक सूचना अधिकारी बिना उचित कारण सूचना देने से इंकार करता है, निर्धारित समय-सीमा का पालन नहीं करता, जानबूझकर गलत अथवा भ्रामक सूचना देता है या सूचना नष्ट करता है, तो आयोग अधिनियम के अनुसार उस पर आर्थिक दण्ड अधिरोपित कर सकता है।

(7) अनुशासनात्मक कार्रवाई की संस्तुति

गंभीर मामलों में सूचना आयोग संबंधित विभाग को दोषी लोक सूचना अधिकारी के विरुद्ध विभागीय अनुशासनात्मक कार्रवाई करने की संस्तुति भी कर सकता है।

(8) क्षतिपूर्ति प्रदान करने की शक्ति

यदि सूचना न मिलने या विलंब से मिलने के कारण किसी नागरिक को हानि हुई हो, तो आयोग लोक प्राधिकारी को उचित क्षतिपूर्ति प्रदान करने का निर्देश दे सकता है।

सूचना आयोग की भूमिका

सूचना आयोग केवल अपीलीय संस्था नहीं है, बल्कि लोकतांत्रिक शासन में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व स्थापित करने वाला महत्वपूर्ण संस्थागत तंत्र भी है। इसकी भूमिका बहुआयामी है।

- नागरिकों के सूचना प्राप्त करने के अधिकार का संरक्षण करना।

- सूचना का अधिकार अधिनियम का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करना।
- लोक प्राधिकारियों को अधिनियम के पालन हेतु आवश्यक निर्देश देना।
- प्रशासन में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व की संस्कृति विकसित करना।
- भ्रष्टाचार एवं प्रशासनिक अनियमितताओं पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित करना।
- सूचना संबंधी विवादों का निष्पक्ष एवं समयबद्ध निस्तारण करना।
- नागरिकों एवं शासन के मध्य विश्वास तथा जनसहभागिता को सुदृढ़ बनाना।
- सुशासन एवं लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रोत्साहित करना।

14.7 पारदर्शिता एवं जवाबदेही में सूचना आयोग का महत्व

आधुनिक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में पारदर्शिता और जवाबदेही सुशासन के दो प्रमुख आधार हैं। सूचना आयोग इन दोनों सिद्धांतों को व्यवहार में लागू करने वाली प्रमुख संस्थाओं में से एक है। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रभावी क्रियान्वयन के माध्यम से सूचना आयोग ने शासन-प्रशासन को अधिक खुला, उत्तरदायी तथा नागरिक-केंद्रित बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सूचना आयोग के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है—

(1) प्रशासनिक पारदर्शिता को बढ़ावा

सूचना आयोग लोक प्राधिकारियों को नागरिकों के समक्ष आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध कराने के लिए बाध्य करता है। इससे सरकारी कार्यों एवं निर्णयों में खुलापन आता है।

(2) जवाबदेही सुनिश्चित करना

जब प्रशासनिक निर्णय सार्वजनिक समीक्षा के अधीन होते हैं, तब अधिकारी अधिक उत्तरदायित्व के साथ कार्य करते हैं। सूचना आयोग इस उत्तरदायित्व को संस्थागत रूप प्रदान करता है।

(3) भ्रष्टाचार पर नियंत्रण

सूचना की उपलब्धता से सरकारी योजनाओं, वित्तीय व्यय एवं प्रशासनिक निर्णयों की निगरानी संभव होती है। इससे भ्रष्टाचार एवं अनियमितताओं की संभावना कम होती है।

(4) नागरिक सहभागिता को प्रोत्साहन

सूचना प्राप्त होने पर नागरिक शासन संबंधी विषयों में अधिक सक्रिय भागीदारी कर सकते हैं तथा प्रशासन की कार्यप्रणाली का मूल्यांकन कर सकते हैं।

(5) सुशासन को सुदृढ़ करना

सूचना आयोग पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, विधि के शासन तथा जनसहभागिता को प्रोत्साहित कर सुशासन की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(6) लोकतांत्रिक अधिकारों का संरक्षण

सूचना का अधिकार नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकारों का महत्वपूर्ण अंग है। सूचना आयोग इस अधिकार की प्रभावी रक्षा करता है तथा नागरिकों को न्याय प्रदान करता है।

(7) जनविश्वास में वृद्धि

पारदर्शी एवं उत्तरदायी प्रशासन से शासन के प्रति जनता का विश्वास बढ़ता है। सूचना आयोग नागरिकों एवं सरकार के मध्य विश्वास को मजबूत करता है।

(8) प्रशासनिक सुधारों को प्रोत्साहन

आयोग के निर्णयों एवं निर्देशों के परिणामस्वरूप अभिलेख प्रबंधन, सूचना के स्वप्रेरित प्रकटीकरण तथा प्रशासनिक प्रक्रियाओं में निरंतर सुधार होता है।

14.8 सूचना आयोग की चुनौतियाँ

यद्यपि सूचना आयोग ने सूचना के अधिकार अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन में उल्लेखनीय योगदान दिया है, फिर भी इसके समक्ष अनेक व्यावहारिक एवं संस्थागत चुनौतियाँ विद्यमान हैं। इन चुनौतियों के कारण आयोग की कार्यकुशलता तथा अधिनियम की प्रभावशीलता प्रभावित होती है।

(1) अपीलों एवं शिकायतों का बढ़ता लंबित भार

सूचना आयोगों में प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में अपीलें एवं शिकायतें प्राप्त होती हैं। पर्याप्त संख्या में आयुक्तों की नियुक्ति न होने के कारण अनेक मामले लंबे समय तक लंबित रहते हैं।

(2) रिक्त पदों की समस्या

मुख्य सूचना आयुक्त एवं सूचना आयुक्तों के पद समय पर नहीं भरे जाने से आयोगों की कार्यक्षमता प्रभावित होती है तथा मामलों के निस्तारण में विलंब होता है।

(3) अधिनियम के प्रति जागरूकता का अभाव

ग्रामीण क्षेत्रों तथा वंचित वर्गों में सूचना के अधिकार एवं आयोग की भूमिका के प्रति पर्याप्त जागरूकता का अभाव है, जिससे नागरिक इस अधिकार का प्रभावी उपयोग नहीं कर पाते।

(4) प्रशासनिक गोपनीयता की प्रवृत्ति

अनेक लोक प्राधिकारी अभी भी गोपनीयता की पारंपरिक प्रशासनिक संस्कृति से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाए हैं, जिसके कारण सूचना उपलब्ध कराने में अनावश्यक विलंब अथवा अनिच्छा दिखाई देती है।

(5) अभिलेख प्रबंधन की कमजोरी

अनेक विभागों में अभिलेखों का डिजिटलीकरण एवं वैज्ञानिक प्रबंधन पर्याप्त नहीं है। परिणामस्वरूप सूचना खोजने एवं उपलब्ध कराने में कठिनाई होती है।

(6) आदेशों के प्रभावी अनुपालन की समस्या

सूचना आयोग के आदेश जारी होने के बाद भी कुछ मामलों में उनका समयबद्ध एवं पूर्ण अनुपालन नहीं हो पाता, जिससे आयोग की प्रभावशीलता प्रभावित होती है।

(7) तकनीकी एवं आधारभूत संसाधनों का अभाव

कई राज्यों में सूचना आयोगों के पास पर्याप्त मानव संसाधन, आधुनिक तकनीकी सुविधाएँ तथा डिजिटल अवसंरचना उपलब्ध नहीं है।

(8) स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता से संबंधित प्रश्न

समय-समय पर नियुक्ति प्रक्रिया, सेवा-शर्तों तथा संस्थागत स्वायत्तता से जुड़े विषयों पर सार्वजनिक एवं शैक्षणिक स्तर पर बहस होती रही है। आयोग की निष्पक्षता एवं प्रभावशीलता बनाए रखने के लिए इसकी संस्थागत स्वतंत्रता अत्यंत आवश्यक मानी जाती है।

इन चुनौतियों के बावजूद सूचना आयोग भारतीय लोकतंत्र में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, नागरिक अधिकारों की रक्षा तथा सुशासन को सुदृढ़ करने वाली एक अत्यंत महत्वपूर्ण संस्था बना हुआ है। इसकी प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए समयबद्ध नियुक्तियाँ, डिजिटल अभिलेख प्रबंधन, जन-जागरूकता, पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता तथा आयोग के आदेशों के प्रभावी अनुपालन को सुनिश्चित करना आवश्यक है।

14.9 केंद्रीय सतर्कता आयोग : अवधारणा

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में प्रशासनिक दक्षता, ईमानदारी, निष्पक्षता तथा उत्तरदायित्व सुशासन के मूल आधार हैं। यदि प्रशासनिक तंत्र भ्रष्टाचार, पक्षपात, शक्ति के दुरुपयोग तथा अनियमितताओं से प्रभावित हो जाए, तो शासन की विश्वसनीयता एवं प्रभावशीलता दोनों कमजोर हो जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों में प्रशासनिक नैतिकता एवं सत्यनिष्ठा (Integrity) को बनाए रखने तथा भ्रष्टाचार पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने के लिए एक स्वतंत्र एवं सक्षम सतर्कता तंत्र की आवश्यकता होती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए**केंद्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission—CVC)**की स्थापना की गई।

केंद्रीय सतर्कता आयोगभारत सरकार का एक**स्वतंत्र वैधानिक सतर्कता संस्थान**है, जिसका प्रमुख उद्देश्य केंद्र सरकार के मंत्रालयों, विभागों, सार्वजनिक उपक्रमों, वित्तीय संस्थानों तथा अन्य केंद्रीय संगठनों में भ्रष्टाचार की रोकथाम, प्रशासनिक सत्यनिष्ठा को सुदृढ़ करना तथा सतर्कता प्रशासन (Vigilance Administration) को प्रभावी बनाना है। यह आयोग केंद्र सरकार के विभिन्न विभागों में सतर्कता संबंधी नीतियों का मार्गदर्शन करता है तथा भ्रष्टाचार-निरोधी उपायों के प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

' **सतर्कता (Vigilance)**' का सामान्य अर्थ है—किसी संगठन या प्रशासनिक व्यवस्था में अनियमितताओं, भ्रष्टाचार, शक्ति के दुरुपयोग, कर्तव्य में लापरवाही तथा वित्तीय या प्रशासनिक कदाचार के प्रति निरंतर सजग एवं सचेत रहना तथा उन्हें रोकने के लिए आवश्यक उपाय करना। प्रशासनिक संदर्भ में सतर्कता का उद्देश्य केवल दोषियों के विरुद्ध कार्रवाई करना नहीं है, बल्कि ऐसी व्यवस्थाओं का विकास करना भी है जिनसे भ्रष्टाचार एवं अनियमितताओं की संभावना न्यूनतम हो जाए।

केंद्रीय सतर्कता आयोग की अवधारणा इस सिद्धांत पर आधारित है कि भ्रष्टाचार केवल आर्थिक अपराध नहीं, बल्कि सुशासन, विधि के शासन, प्रशासनिक निष्पक्षता तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए गंभीर चुनौती है।इसलिए भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए केवल दंडात्मक व्यवस्था

पर्याप्त नहीं होती, बल्कि एक ऐसी स्वतंत्र संस्था की आवश्यकता होती है जो निवारक (Preventive), सुधारात्मक (Corrective) तथा परामर्शात्मक (Advisory) दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रशासन में सत्यनिष्ठा की संस्कृति को विकसित करे।

केंद्रीय सतर्कता आयोग का कार्य केवल भ्रष्टाचार के मामलों की निगरानी तक सीमित नहीं है। यह विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों में सतर्कता व्यवस्था का समन्वय करता है, सतर्कता संबंधी नीतियों के निर्माण में मार्गदर्शन प्रदान करता है, विभागीय सतर्कता तंत्र की कार्यप्रणाली की समीक्षा करता है तथा भ्रष्टाचार-निरोधी उपायों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक सुझाव देता है। इसके अतिरिक्त आयोग भ्रष्टाचार संबंधी मामलों की जाँच करने वाली एजेंसियों के कार्यों की निगरानी भी करता है तथा प्रशासनिक प्रक्रियाओं में सुधार की अनुशंसा करता है।

केंद्रीय सतर्कता आयोग की अवधारणा का आधार निवारक सतर्कता (Preventive Vigilance)है। इसका आशय ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था विकसित करना है जिसमें भ्रष्टाचार की संभावनाएँ पहले से ही कम कर दी जाएँ। इसके लिए कार्यप्रणालियों को सरल बनाना, निर्णय प्रक्रिया में पारदर्शिता लाना, वित्तीय अनुशासन को सुदृढ़ करना, अभिलेखों का समुचित प्रबंधन करना तथा अधिकारियों में नैतिक मूल्यों एवं उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना आवश्यक माना जाता है। इस प्रकार आयोग भ्रष्टाचार होने के बाद कार्रवाई करने के साथ-साथ भ्रष्टाचार की रोकथाम पर भी समान रूप से बल देता है।

वर्तमान समय में ई-गवर्नेंस, डिजिटल प्रशासन, सार्वजनिक खरीद (Public Procurement), वित्तीय प्रबंधन तथा सार्वजनिक सेवा वितरण जैसे क्षेत्रों में पारदर्शिता सुनिश्चित करने में भी केंद्रीय सतर्कता आयोग की भूमिका निरंतर विस्तृत हुई है। आयोग समय-समय पर विभिन्न मंत्रालयों एवं सार्वजनिक संस्थानों को दिशा-निर्देश जारी करता है, जिससे प्रशासनिक प्रक्रियाएँ अधिक पारदर्शी, उत्तरदायी तथा दक्ष बन सकें।

इस प्रकार केंद्रीय सतर्कता आयोग की अवधारणा केवल भ्रष्टाचार की जाँच तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्रशासनिक नैतिकता, संस्थागत सत्यनिष्ठा, पारदर्शिता, जवाबदेही तथा सुशासन को सुदृढ़ करने वाली व्यापक प्रशासनिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। भारतीय प्रशासन में यह संस्था भ्रष्टाचार-निरोध, सतर्कता प्रशासन तथा सार्वजनिक जीवन में ईमानदारी एवं उत्तरदायित्व स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

14.10 केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना एवं विकास

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रशासनिक तंत्र के विस्तार के साथ-साथ भ्रष्टाचार, पद के दुरुपयोग तथा प्रशासनिक अनियमितताओं की समस्या भी बढ़ने लगी। इन परिस्थितियों में यह अनुभव किया गया कि भ्रष्टाचार की रोकथाम तथा प्रशासनिक ईमानदारी को सुदृढ़ बनाने के लिए एक स्वतंत्र सतर्कता संस्था की आवश्यकता है। इसी पृष्ठभूमि में केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना का विचार विकसित हुआ।

वर्ष 1962 में भारत-चीन युद्ध के बाद प्रशासनिक सुधारों तथा भ्रष्टाचार-निरोधी उपायों की समीक्षा के उद्देश्य से भारत सरकार ने के. संथानमकी अध्यक्षता मेंभ्रष्टाचार निवारण समिति (Santhanam Committee on Prevention of Corruption)का गठन किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट (1964) में केंद्र सरकार के अधीन एक स्वतंत्र सतर्कता संस्था की स्थापना की अनुशंसा की, जो प्रशासन में भ्रष्टाचार की रोकथाम, सतर्कता व्यवस्था के समन्वय तथा सरकारी विभागों को आवश्यक परामर्श प्रदान कर सके।

संथानम समिति की अनुशंसाओं के आधार पर भारत सरकार ने11 फरवरी, 1964को एक सरकारी संकल्प (Government Resolution) के माध्यम सेकेंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की। प्रारंभिक अवस्था में यह एक गैर-वैधानिक (Non-Statutory) संस्था थी तथा इसका कार्य केंद्र सरकार के मंत्रालयों, विभागों एवं सार्वजनिक उपक्रमों में सतर्कता प्रशासन को सुदृढ़ करना था।

स्थापना के पश्चात आयोग ने केंद्र सरकार के विभिन्न विभागों में सतर्कता तंत्र के विकास, विभागीय सतर्कता अधिकारियों की नियुक्ति तथा भ्रष्टाचार-निरोधी नीतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि आयोग को परामर्शात्मक संस्था के रूप में स्थापित किया गया था, फिर भी समय के साथ इसकी भूमिका एवं महत्व निरंतर बढ़ता गया।

केंद्रीय सतर्कता आयोग के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ तब आया जब**Vineet Narain v. Union of India**में उच्चतम न्यायालय ने आयोग की स्वतंत्रता एवं प्रभावशीलता को सुदृढ़ करने के लिए महत्वपूर्ण निर्देश दिए। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि भ्रष्टाचार के मामलों की निष्पक्ष जाँच सुनिश्चित करने के लिए केंद्रीय सतर्कता आयोग को अधिक स्वतंत्र एवं सशक्त बनाया जाना आवश्यक है।

उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में वर्ष 1998 में केंद्र सरकार ने अध्यादेश जारी कर केंद्रीय सतर्कता आयोग को वैधानिक स्वरूप प्रदान करने की प्रक्रिया प्रारंभ की। इसके पश्चात संसद ने**केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003**पारित किया। इस अधिनियम के लागू होने के

साथ केंद्रीय सतर्कता आयोग को विधिक (Statutory) दर्जा प्राप्त हुआ तथा इसकी शक्तियों, संरचना एवं कार्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया।

वर्तमान में केंद्रीय सतर्कता आयोग केंद्र सरकार की प्रमुख भ्रष्टाचार-निरोधी संस्था के रूप में कार्य करता है। यह विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, सार्वजनिक उपक्रमों, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों तथा अन्य केंद्रीय संगठनों में सतर्कता प्रशासन की निगरानी करता है तथा प्रशासनिक ईमानदारी, पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

14.11 सतर्कता आयोग की संरचना

केंद्रीय सतर्कता आयोग की संरचना केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 के प्रावधानों के अनुसार निर्धारित की गई है। आयोग की संरचना इस प्रकार बनाई गई है कि वह स्वतंत्र, निष्पक्ष तथा प्रभावी ढंग से अपने दायित्वों का निर्वहन कर सके।

आयोग में निम्नलिखित सदस्य होते हैं—

- **एक केंद्रीय सतर्कता आयुक्त (Central Vigilance Commissioner)** — जो आयोग का अध्यक्ष होता है।
- **अधिकतम दो सतर्कता आयुक्त (Vigilance Commissioners)** — जो आयोग के सदस्य के रूप में कार्य करते हैं।

केंद्रीय सतर्कता आयुक्त तथा सतर्कता आयुक्त ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाते हैं जिन्हें लोक प्रशासन, सतर्कता, पुलिस प्रशासन, वित्त, विधि, बैंकिंग, बीमा, अभियोजन, भ्रष्टाचार-निरोध अथवा प्रशासनिक प्रबंधन के क्षेत्र में व्यापक ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त हो।

नियुक्ति प्रक्रिया

केंद्रीय सतर्कता आयुक्त तथा सतर्कता आयुक्तों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
इनकी नियुक्ति निम्नलिखित चयन समिति की अनुशंसा पर होती है—

1. प्रधानमंत्री — अध्यक्ष
2. केंद्रीय गृह मंत्री — सदस्य
3. लोकसभा में विपक्ष के नेता — सदस्य

यह व्यवस्था आयोग की स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से की गई है।

कार्यकाल

केंद्रीय सतर्कता आयुक्त तथा सतर्कता आयुक्त चार वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, तक पद पर बने रहते हैं। कार्यकाल पूर्ण होने के पश्चात वे पुनर्नियुक्ति के पात्र नहीं होते।

सचिवालय एवं अन्य संगठनात्मक व्यवस्था

आयोग के कार्यों के संचालन हेतु एक सचिवालय स्थापित किया गया है, जिसमें सचिव, अतिरिक्त सचिव, निदेशक, अवर सचिव तथा अन्य प्रशासनिक अधिकारी कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त आयोग के अधीन मुख्य तकनीकी परीक्षक संगठन (Chief Technical Examiner's Organisation), विभागीय जाँच आयुक्त (Departmental Inquiry Commissioners) तथा अन्य तकनीकी एवं प्रशासनिक इकाइयाँ कार्य करती हैं, जो आयोग को उसके दायित्वों के निर्वहन में सहायता प्रदान करती हैं।

14.12 सतर्कता आयोग के कार्य एवं शक्तियाँ

केंद्रीय सतर्कता आयोग का प्रमुख उद्देश्य केंद्र सरकार के अधीन कार्यरत संस्थाओं में भ्रष्टाचार की रोकथाम, प्रशासनिक सत्यनिष्ठा को बढ़ावा देना तथा सतर्कता प्रशासन को प्रभावी बनाना है। आयोग अपने कार्यों का निर्वहन मुख्यतः परामर्शात्मक, समन्वयात्मक, पर्यवेक्षणात्मक तथा निवारक दृष्टिकोण से करता है।

इसके प्रमुख कार्य एवं शक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) सतर्कता प्रशासन का पर्यवेक्षण

आयोग केंद्र सरकार के मंत्रालयों, विभागों, सार्वजनिक उपक्रमों तथा अन्य केंद्रीय संगठनों में सतर्कता प्रशासन की निगरानी एवं पर्यवेक्षण करता है।

(2) भ्रष्टाचार संबंधी मामलों में परामर्श देना

आयोग भ्रष्टाचार एवं प्रशासनिक कदाचार से संबंधित मामलों में केंद्र सरकार तथा विभिन्न विभागों को आवश्यक परामर्श एवं अनुशंसाएँ प्रदान करता है।

(3) जाँच की निगरानी

आयोग भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत मामलों की जाँच की प्रगति की निगरानी करता है तथा आवश्यकतानुसार संबंधित जाँच एजेंसियों को दिशा-निर्देश प्रदान करता है।

(4) केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) के कार्यों का अधीक्षण

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से संबंधित मामलों में आयोगकेंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) द्वारा की जा रही जाँच के अधीक्षण (Superintendence) का कार्य करता है तथा उसकी प्रगति की समीक्षा करता है।

(5) विभागीय सतर्कता व्यवस्था को सुदृढ़ करना

आयोग विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों में मुख्य सतर्कता अधिकारियों (Chief Vigilance Officers) के माध्यम से सतर्कता व्यवस्था का समन्वय करता है तथा उसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए दिशा-निर्देश जारी करता है।

(6) निवारक सतर्कता को प्रोत्साहित करना

आयोग भ्रष्टाचार होने के बाद केवल कार्रवाई करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि ऐसी प्रशासनिक व्यवस्थाओं के विकास पर भी बल देता है जिनसे भ्रष्टाचार की संभावनाएँ कम हों। इसके लिए प्रक्रियाओं के सरलीकरण, ई-गवर्नेंस, पारदर्शिता तथा आंतरिक नियंत्रण प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाता है।

(7) विभागीय कार्यवाहियों की समीक्षा

आयोग भ्रष्टाचार एवं अनुशासनात्मक मामलों में विभागीय कार्यवाहियों की समीक्षा करता है तथा आवश्यकतानुसार संबंधित विभागों को उचित कार्रवाई के संबंध में सलाह देता है।

(8) तकनीकी परीक्षण एवं निरीक्षण

सार्वजनिक निर्माण कार्यों, खरीद प्रक्रियाओं तथा अन्य तकनीकी मामलों में अनियमितताओं की पहचान करने हेतु आयोग अपने तकनीकी विशेषज्ञों के माध्यम से निरीक्षण एवं परीक्षण कराता है।

(9) वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना

आयोग प्रतिवर्ष अपनी कार्यप्रणाली, सतर्कता संबंधी गतिविधियों तथा भ्रष्टाचार-निरोधी उपायों का विवरण सहित वार्षिक प्रतिवेदन केंद्र सरकार को प्रस्तुत करता है, जिसे संसद के समक्ष रखा जाता है।

(10) प्रशासनिक सुधारों का सुझाव देना

आयोग भ्रष्टाचार की संभावनाओं को कम करने तथा प्रशासनिक दक्षता बढ़ाने के उद्देश्य से समय-समय पर नीतिगत सुधारों एवं प्रक्रियात्मक परिवर्तनों के संबंध में सरकार को सुझाव देता है।

इस प्रकार केंद्रीय सतर्कता आयोग केवल भ्रष्टाचार की शिकायतों पर कार्रवाई करने वाली संस्था नहीं है, बल्कि प्रशासनिक नैतिकता, संस्थागत सत्यनिष्ठा, पारदर्शिता तथा उत्तरदायी शासन व्यवस्था को सुदृढ़ करने वाला एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संस्थान है।

14.13 भ्रष्टाचार नियंत्रण एवं सुशासन में सतर्कता आयोग की भूमिका

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार प्रशासनिक दक्षता, आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय तथा जनविश्वास के समक्ष एक गंभीर चुनौती है। भ्रष्टाचार के कारण सार्वजनिक संसाधनों का दुरुपयोग, निर्णय-प्रक्रिया में पक्षपात, प्रशासनिक विलंब तथा शासन की विश्वसनीयता में कमी आती है। ऐसी परिस्थितियों में केंद्रीय सतर्कता आयोग प्रशासनिक ईमानदारी, सत्यनिष्ठा एवं उत्तरदायित्व को सुदृढ़ करने वाली प्रमुख संस्था के रूप में कार्य करता है। आयोग का उद्देश्य केवल भ्रष्टाचार के मामलों की निगरानी करना ही नहीं, बल्कि ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण करना भी है जिसमें भ्रष्टाचार की संभावनाएँ न्यूनतम हों तथा सुशासन के सिद्धांत प्रभावी रूप से लागू किए जा सकें।

भ्रष्टाचार नियंत्रण एवं सुशासन के क्षेत्र में केंद्रीय सतर्कता आयोग की भूमिका निम्नलिखित रूप में स्पष्ट होती है—

(1) भ्रष्टाचार की रोकथाम

सतर्कता आयोग का प्रमुख उद्देश्य सरकारी संस्थानों में भ्रष्टाचार की रोकथाम करना है। आयोग विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, सार्वजनिक उपक्रमों तथा वित्तीय संस्थानों में सतर्कता व्यवस्था को सुदृढ़ बनाकर भ्रष्टाचार की संभावनाओं को कम करने का प्रयास करता है।

(2) प्रशासनिक सत्यनिष्ठा को प्रोत्साहन

आयोग लोकसेवकों में ईमानदारी, निष्पक्षता, नैतिकता तथा कर्तव्यनिष्ठा की भावना विकसित करने पर बल देता है। प्रशासनिक सत्यनिष्ठा सुशासन का आधार है और आयोग इसे संस्थागत रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(3) सतर्कता प्रशासन का सुदृढ़ीकरण

केंद्रीय सतर्कता आयोग विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों में नियुक्त मुख्य सतर्कता अधिकारियों (Chief Vigilance Officers) के माध्यम से सतर्कता तंत्र का समन्वय करता है तथा उसके प्रभावी संचालन के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करता है।

(4) निवारक सतर्कता को बढ़ावा

आयोग केवल भ्रष्टाचार होने के बाद कार्रवाई करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि भ्रष्टाचार की संभावनाओं को पहले से समाप्त करने के लिए प्रशासनिक प्रक्रियाओं के सरलीकरण, आंतरिक नियंत्रण व्यवस्था, ई-गवर्नेंस तथा पारदर्शी कार्यप्रणाली को प्रोत्साहित करता है।

(5) पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व को सुदृढ़ करना

आयोग प्रशासनिक निर्णयों एवं प्रक्रियाओं में पारदर्शिता बढ़ाने के लिए आवश्यक उपायों की अनुशंसा करता है। इससे अधिकारियों की जवाबदेही बढ़ती है तथा सार्वजनिक संस्थाओं में उत्तरदायी प्रशासन की स्थापना होती है।

(6) विभागीय अनुशासन को सुदृढ़ बनाना

भ्रष्टाचार अथवा प्रशासनिक कदाचार से संबंधित मामलों में आयोग संबंधित विभागों को आवश्यक परामर्श देता है तथा अनुशासनात्मक कार्यवाहियों को प्रभावी बनाने में सहयोग करता है।

(7) सार्वजनिक संसाधनों की सुरक्षा

आयोग वित्तीय अनियमितताओं, सार्वजनिक खरीद (Public Procurement) तथा सरकारी परियोजनाओं में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न निवारक उपायों की अनुशंसा करता है, जिससे सार्वजनिक धन के दुरुपयोग पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके।

(8) प्रशासनिक सुधारों को प्रोत्साहन

सतर्कता आयोग समय-समय पर प्रशासनिक प्रक्रियाओं की समीक्षा कर उनमें सुधार संबंधी सुझाव देता है। इससे कार्यप्रणाली सरल, पारदर्शी तथा अधिक प्रभावी बनती है।

(9) जनविश्वास की स्थापना

जब प्रशासन में भ्रष्टाचार कम होता है तथा कार्यप्रणाली पारदर्शी एवं निष्पक्ष होती है, तब नागरिकों का सरकार के प्रति विश्वास बढ़ता है। इस प्रकार आयोग लोकतांत्रिक शासन की विश्वसनीयता को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(10) सुशासन की स्थापना

सुशासन के प्रमुख तत्व—पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, दक्षता, विधि का शासन, नैतिक प्रशासन तथा जनहित—सतर्कता आयोग की कार्यप्रणाली में परिलक्षित होते हैं। आयोग इन सिद्धांतों को व्यवहार में लागू करने का महत्वपूर्ण माध्यम है।

इस प्रकार केंद्रीय सतर्कता आयोग केवल भ्रष्टाचार-निरोधी संस्था नहीं है, बल्कि प्रशासनिक सुधार, नैतिक शासन, संस्थागत पारदर्शिता तथा उत्तरदायी प्रशासन के माध्यम से सुशासन की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

14.14 सूचना आयोग एवं सतर्कता आयोग : तुलनात्मक अध्ययन

भारतीय लोकतांत्रिक प्रशासन में सूचना आयोग तथाकेंद्रीय सतर्कता आयोग दोनों ही महत्वपूर्ण संस्थाएँ हैं। यद्यपि दोनों का उद्देश्य सुशासन को सुदृढ़ करना है, तथापि उनकी स्थापना, कार्यक्षेत्र, शक्तियाँ तथा कार्यप्रणाली एक-दूसरे से भिन्न हैं। सूचना आयोग का मुख्य उद्देश्य नागरिकों के सूचना प्राप्त करने के अधिकार की रक्षा करना तथा शासन में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व स्थापित करना है, जबकि केंद्रीय सतर्कता आयोग का प्रमुख उद्देश्य भ्रष्टाचार की रोकथाम, प्रशासनिक सत्यनिष्ठा तथा सतर्कता व्यवस्था को सुदृढ़ करना है। इस प्रकार दोनों संस्थाएँ भिन्न कार्यक्षेत्रों में कार्य करते हुए भी लोकतांत्रिक शासन के समान उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं।

सूचना आयोग एवं सतर्कता आयोग का तुलनात्मक अध्ययन

आधार	सूचना आयोग	केंद्रीय सतर्कता आयोग
स्थापना का आधार	सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005	केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003
प्रकृति	स्वतंत्र वैधानिक एवं अर्ध-न्यायिक संस्था	स्वतंत्र वैधानिक सतर्कता संस्था
मुख्य उद्देश्य	नागरिकों के सूचना प्राप्त करने के अधिकार की रक्षा एवं पारदर्शिता सुनिश्चित करना	भ्रष्टाचार की रोकथाम तथा सतर्कता प्रशासन को सुदृढ़ करना
कार्यक्षेत्र	सूचना से संबंधित अपीलों एवं शिकायतों का निस्तारण	भ्रष्टाचार, सतर्कता एवं प्रशासनिक कदाचार से संबंधित मामलों में परामर्श एवं पर्यवेक्षण

आधार	**सूचना आयोग**	**केंद्रीय सतर्कता आयोग**
प्रमुख कार्य	सूचना उपलब्ध कराना, अपीलों का निस्तारण, शिकायतों की सुनवाई	सतर्कता व्यवस्था का समन्वय, भ्रष्टाचार-निरोध, निवारक सतर्कता एवं विभागीय परामर्श
लाभार्थी	सभी नागरिक	केंद्र सरकार के मंत्रालय, विभाग, सार्वजनिक उपक्रम एवं अन्य केंद्रीय संस्थाएँ
प्रमुख आधार	सूचना का अधिकार एवं पारदर्शिता	प्रशासनिक नैतिकता, सत्यनिष्ठा एवं भ्रष्टाचार-निरोध
शासन में योगदान	पारदर्शिता, जवाबदेही एवं नागरिक सहभागिता को बढ़ावा	ईमानदार प्रशासन, भ्रष्टाचार नियंत्रण एवं सुशासन को प्रोत्साहन
प्रमुख परिणाम	सूचना तक नागरिकों की पहुँच सुनिश्चित होती है	प्रशासनिक भ्रष्टाचार में कमी तथा संस्थागत सत्यनिष्ठा में वृद्धि होती है

यद्यपि सूचना आयोग एवं केंद्रीय सतर्कता आयोग के कार्य एवं अधिकार-क्षेत्र भिन्न हैं, फिर भी दोनों संस्थाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। सूचना आयोग जहाँ सरकारी कार्यों में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व सुनिश्चित करता है, वहीं केंद्रीय सतर्कता आयोग प्रशासनिक नैतिकता एवं भ्रष्टाचार-निरोध को सुदृढ़ करता है। पारदर्शिता और सतर्कता दोनों मिलकर लोकतांत्रिक शासन में उत्तरदायी, ईमानदार तथा जनोन्मुख प्रशासन की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इस प्रकार दोनों संस्थाएँ भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में सुशासन के प्रमुख स्तंभों के रूप में कार्य करती हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 कब लागू हुआ था?
2. केंद्रीय सूचना आयोग का गठन किस अधिनियम के अंतर्गत किया गया है?
3. केंद्रीय सतर्कता आयोग को वैधानिक दर्जा किस अधिनियम द्वारा प्राप्त हुआ?
4. केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना किस समिति की अनुशंसा पर की गई थी?

14.15 सारांश

इस इकाई में भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की दो महत्वपूर्ण संस्थाओं—सूचना आयोग एवं केंद्रीय सतर्कता आयोग—का विस्तृत अध्ययन किया गया। सर्वप्रथम सूचना आयोग की संकल्पना, आवश्यकता तथा सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास का विवेचन किया गया। इसके पश्चात केंद्रीय एवं राज्य सूचना आयोग के गठन, संरचना, कार्य, शक्तियों तथा पारदर्शिता एवं जवाबदेही स्थापित करने में उनकी भूमिका का अध्ययन किया गया। साथ ही सूचना आयोग के समक्ष विद्यमान प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया।

इकाई के द्वितीय भाग में केंद्रीय सतर्कता आयोग की अवधारणा, स्थापना, ऐतिहासिक विकास, संरचना, कार्य एवं शक्तियों का विस्तृत अध्ययन किया गया। इसके अतिरिक्त भ्रष्टाचार नियंत्रण, प्रशासनिक नैतिकता, सतर्कता प्रशासन तथा सुशासन की स्थापना में केंद्रीय सतर्कता आयोग की भूमिका का विश्लेषण किया गया। अंत में सूचना आयोग एवं केंद्रीय सतर्कता आयोग का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया गया कि दोनों संस्थाएँ भिन्न कार्यक्षेत्रों में कार्य करते हुए भी पारदर्शी, उत्तरदायी एवं भ्रष्टाचार-मुक्त शासन व्यवस्था की स्थापना में एक-दूसरे की पूरक हैं।

14.16 शब्दावली

सूचना का अधिकार (RTI)	नागरिकों को लोक प्राधिकारियों से सूचना प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार।
सूचना आयोग	सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अंतर्गत गठित वैधानिक संस्था, जो सूचना संबंधी अपीलों एवं शिकायतों का निस्तारण करती है।
लोक प्राधिकारी	सरकार, सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय, सार्वजनिक उपक्रम तथा वे संस्थाएँ जो सरकारी नियंत्रण अथवा वित्तीय सहायता प्राप्त करती हैं।
लोक सूचना अधिकारी (PIO)	सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत सूचना उपलब्ध कराने हेतु नियुक्त अधिकारी।
सतर्कता (Vigilance)	भ्रष्टाचार, अनियमितताओं एवं कदाचार की रोकथाम हेतु अपनाई जाने वाली प्रशासनिक व्यवस्था।
केंद्रीय सतर्कता आयोग	केंद्र सरकार का स्वतंत्र वैधानिक सतर्कता निकाय, जो भ्रष्टाचार-निरोध एवं

(CVC)	सतर्कता प्रशासन को सुदृढ़ करता है।
सुशासन(Good Governance)	पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, दक्षता, विधि का शासन तथा जनसहभागिता पर आधारित शासन व्यवस्था।

14.17 अभ्यास पप्रश्नों के उत्तर

1. 12 अक्टूबर, 2005 **2.** सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005

3. केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 **4.** संथानम समिति (1964) की अनुशंसा पर।

14.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत सरकार. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (Right to Information Act, 2005). नई दिल्ली: भारत सरकार.

2. भारत सरकार. केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (Central Vigilance Commission Act, 2003). नई दिल्ली: भारत सरकार.

3. भारत सरकार. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (Second Administrative Reforms Commission). (2007). Ethics in Governance (Fourth Report). नई दिल्ली.

4. National Informatics Centre. RTI ऑनलाइन पोर्टल उपयोगकर्ता मार्गदर्शिका एवं दिशानिर्देश।

5. Basu, D. D. Introduction to the Constitution of India. LexisNexis, नवीनतम संस्करण.

6. Jain, M. P., & Jain, S. N. Principles of Administrative Law. LexisNexis, नवीनतम संस्करण.

7. Avasthi, A., & Avasthi, Maheshwari. Public Administration. Lakshmi Narain Agarwal, नवीनतम संस्करण.

8. उत्तराखण्ड सरकार. उत्तराखण्ड सूचना आयोग की वार्षिक रिपोर्टें एवं अधिसूचनाएँ।

14.19 निबंधात्मक प्रश्न

1.सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की पृष्ठभूमि एवं विकास का विस्तृत वर्णन कीजिए।

2.केंद्रीय सूचना आयोग के गठन, संरचना, शक्तियों एवं कार्यों का समालोचनात्मक विवेचन कीजिए।

3.केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना, संरचना, कार्य एवं शक्तियों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

4.सूचना आयोग एवं केंद्रीय सतर्कता आयोग का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए सुशासन में उनकी भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।